CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर विज्ञान

सिद्ध विद्या

डॉ. वाई. डी. गहराना

नासिकाओं की इड़ा-पिंगला प्राणधाराओं का
प्राचीन प्रामाणिक एवम् वैज्ञानिक विवेचन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रत्न पुस्तक भण्डार
"मिन हाउस"
२७१, माईतीघर
काठमाडौं, नेपाल
फोन : ४-२४०८४०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर विज्ञान

(स्वयं सिद्ध विद्या)

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय, पंच तत्व, पंच प्राण, नाड़ी मंडल, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के सूक्ष्म नाड़ी विवेचन स्वर, मंत्र, स्वर के उपयोग, वशीकरण, गर्भ स्थापन काल ज्ञान, रोगोपचार, भविष्य दर्शन, बीज मंत्र और ध्यान आदि विषयों पर विषद विवेचन

लेखक :

महर्षि यतीन्द्र

क्रियात्मक कुण्डलिनी तंत्र, धर्म तंत्र के अद्भुत प्रश्नोत्तर
कुण्डलिनी तंत्र रहस्य, रेकी (जापानी स्पर्शोपचार)
इन्टरनेशनल एक्युप्रेशर आदि पुस्तकों के लेखक

प्रकाशक

दीप पब्लिकेशन

हॉस्पीटल रोड, आगरा - 282003

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक :
दीप पब्लिकेशन
कंचन मार्केट, अस्पताल रोड,
आगरा - 282 003 (इण्डिया)
दूरभाष : 0562-261220, 311145

लेखक :
महर्षि 'यतीन्द्र'

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण-2007

मूल्य 90/ रुपये

I.S.B.N. 81-87250-04-6

लेजर टाइपसैटिंग :
प्रेम ग्राफिक्स एण्ड प्रिन्टर्स
संजय प्लेस, आगरा - 282 002

चेतावनी :
भारतीय कापीराइट एक्ट के अधीन इस पुस्तक के सभी भाषाओं में सर्वाधिकार दीप पब्लिकेशन, आगरा - 3 के पास सुरक्षित हैं। अतः कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, अन्दर का मेटर, डिजायन, चित्र व सैटिंग तथा किसी भी अंश को किसी भी भाषा में नकल या तोड़-मरोड़ कर छापने का साहस न करें अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे व हानि के जिम्मेदार होंगे।

—प्रकाशक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशकीय

स्वर विज्ञान 'शिव स्वरोदय' पर आधारित पुस्तक है। यदि आप 'शिव स्वरोदय' को पढ़ें तो आप स्वयं अनुभव करेंगे कि इसके श्लोकों में कुछ अन्य लोगों के द्वारा मिलावट कर दी गई है, अर्थात् मूल श्लोक नहीं हैं, और अनादिकाल से चली आ रही यह विद्या आज भी स्पष्ट नहीं हो पा रही। प्रस्तुत पुस्तक 'शिव स्वरोदय' के मूल सूत्रों पर आधारित होकर भी 'शिव स्वरोदय' नहीं है। आशा है स्वर विज्ञान पढ़ने के पश्चात् पाठकों की सामान्य शिकायत ''कोई भी ग्रन्थ स्पष्ट नहीं है'' समाप्त हो सकेगी। 'स्वरोदय विज्ञान' का मूल आधार शरीर की सूक्ष्म नाड़ियाँ, पंच तत्व तथा पंच प्राण हैं जिनके विषय में लेखक ने बड़ी सहज और सामान्य भाषा में स्पष्टीकरण दिये हैं।

महर्षि 'यतीन्द्र' नाड़ियों, प्राणों आदि के विशद वर्णनों से युक्त पुस्तकें ''क्रियात्मक कुण्डलिनी तंत्र'' तथा ''कुण्डलिनी तंत्र रहस्य'' पहले ही लिख चुके हैं। नाड़ी तत्व तथा प्राण सम्बन्धी विवेचन उनकी अपनी क्रियात्मक निधि हैं अतः उनकी लेखनी से उद्भूत 'स्वर विज्ञान' के विवरण स्वयं सिद्ध होना स्वाभाविक है।

— प्रकाशक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धरनि टरै गिरिवर टरै ध्रुव टरै सुन मीत।

वचन स्वरोदय ना टरै कहे दास रणजीत।।

रणजीत दास कृत स्वरोदय ज्ञान में कहा गया है कि धरती सुमेरु पर्वत ध्रुवतारा भले ही अपने स्थान से हिल जाय परन्तु स्वरोदय ज्ञान के आधार पर निकले वचन टलते नहीं हैं।

× × × × × ×

स्वामी चिदानंद जी महाराज ने कहा है—

सुर विचार कारज करत सफल होय तत्काल।

तत्व ज्ञान एहना कहिन चमत्कार चित्त भाल।।

जो व्यक्ति स्वर का विचार करके कार्य करता है उसे तत्काल ही सफलता प्राप्त होती है। स्वर के तत्व ज्ञान का चमत्कार अपने जीवन में अनुभव करके देखें।

× × × × × ×

स्वरोदय ज्ञान के विषय में एक महात्मा जी ने लिखा है कि जो व्यक्ति स्वर के आधार पर अपने कार्य करना चाहता है उसके लिए तिथि, वार, नक्षत्र, करण योग, दिशाशूल, लक्षण, पात, होरा, दग्ध, तिथि, मूल, विष्टि काल, कुलिका, लग्न, व्यतिपात, शुक्रास्त, चौघड़िया, यमघट आदि ज्योतिष के कुयोगों का कोई विचार नहीं किया जाता। ऐसे स्वरोदय ज्ञान का सदैव चिन्तन मनन करते रहें, कहा भी है—

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रह देवताः।

नं च विष्टिव्यतीपातो वैघृत्याद्यास्तथैव च।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपनी बात

युज धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा योग शब्द निषपन्न होता है युज नाम से दो धातु है, एक समाधि-अर्थक और दूसरी संयोग-अर्थक। समाधि अर्थक युज धातु से निषप़न्न अर्थ में समाधि और ध्यान, दोनों ही गर्भित हो जाते हैं। हठयोग स्थूल और सूक्ष्म शरीर को एक ही भाव में गुंफित मानता है। क्रियात्मक रूप में भी हम यही देखते है कि एक का प्रभाव दूसरे पर पूरा बना रहता है। इसलिये स्थूल शरीर को अपने अ़धीन कर सूक्ष्म शरीर क़ो अधीन करने का प्रयत्न किया जाता है। योग निष्णात आचार्य कहते है कि अंतः प्रकृति और वाह्य प्रकृति में सामंजस्य ही योग साधना है। योग के सम्बन्ध में लोगो में भ्रांतियाँ है कि यह एक अगम्य साधना है और योगी जोगी सन्यासी वैरागी आदि तक ही यह सीमित है। स्वार्थ साधने वाले सांसारिक वस्तुओं अथवा ख्याति को चाहने वाले तथा लोगों के भ्रम और व्युद-ग्राह पर आजीविका कमाने वालों ने ऐसे खोटे विचारों का खूब प्रचार किया है। ऐसे लोग सामान्य व्यक्ति को धोखे में डालकर भोले भाले लोगों को बहुत ठगते हैं। योग ज्ञान प्रत्येक गृहस्थ, विद्यार्थी, व्यवसायी, वृद्ध तथा बच्चों के लिये कितना लाभ प्रद है यह मैं अपनी पूर्व प्रकाशित अन्य पुस्तकों में दे चुका हूँ, यहाँ पुनरावृत्ति उचित नहीं है।

महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में लिखा है—

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि योग के आठ अंग हैं। इसी अष्टांग योग की बात ज्ञानार्णव में जैनाचार्य शुभचंद्र तथा योग शास्त्र में जैनाचार्य हेम चंद्र ने की है। हठयोग वाले योग को सात अंगों में विभक्त करते हैं,यथा -षटकर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, समाधि। इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को चौथे स्थान पर माना है और हठ योगियों ने पाँचवे स्थान पर, परन्तु अंतः कारण को स्थिर और निर्मल बनाने में उपयोगी होने के कारण आत्मा को मोक्ष के लिये अग्रसर करने वाले मुमुक्षु प्राणायाम को प्रथम सोपान मानते हैं। वास्तव में प्राणायाम मोक्ष के साधन रुप ध्यान और समाधि के लिये अंतः करण् की स्थिरता और निर्मलता के लिये अंशतः उपयोगी सिद्ध होता है। यूँ प्रणायाम की साधना से अनेक प्रकार की सिद्धियों निधियों तथा लब्धियों की प्राप्ति भी होती है, चमत्कारों की योग्यता भी आती है परन्तु वे सब पतन के कारण बन जाते हैं।

यह प्राणायाम ही स्वरोदय साधना है। स्वरोदय का स्पष्ट अर्थ 'नासिका द्वारा निकलने वाली श्वास की गति का बोध' है।

स्वरोदय ज्ञान पवित्र और आत्मा का कल्याण करने वाला है। अनेक स्थलो में उल्लेख है कि श्री भद्रबाहु स्वामी चौदह विद्या को अन्तर्मुहूर्त में पर्यालोचन करने के लिये प्राणायाम की साधना करते थे। पहले यति लोग, जिन्हे पंजाब में पुज, राजस्थान में गुर्रा सा एवं गुजरात सौराष्ट्र में गोर जी कहते हैं इस विद्या के धुरंधर हुआ करते थे। ज्योतिष भी स्वरोदय ज्ञान के बिना लंगड़ी हो जाती है। चूँकि स्वरोदय ज्ञानी नाक पर हाथ रखकर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निकलती हुई श्वास की गति के आधार पर समस्त प्रकार के प्रश्नों का समाधान करने में समर्थ हो जाता है। कुछ जैन योगियों ने हठयोग का निषेध इसी लिये किया है चूँकि स्वर ज्ञान लाभालाभ, तेजी मंदी वृष्टि, अना वृष्टि, सहयोग-वियोग, मित्रता-शत्रुता, युद्ध मुकदमे की जय-पराजय, वर्षफल, गर्भ में पुत्र-पुत्री, परदेश गमन में सफलता-असफलता, कार्य की सिद्धि-असिद्धि आदि नाना प्रकार की गुत्थियों को सुलझाने में सहयोगी होने के कारण साधक को सांसरिक प्रपंच में घसीट लाता है, लोग उसे घेरते हैं और वह अपनी साधना नहीं कर पाता है परन्तु चित्त वृत्ति निरोध के लिये प्राणायाम अति आवश्यक होने के कारण परम योगि राज आनंदधन जी, उपाध्याय यशोविलय जी, चिदानंद जी, दादा जिन दत्त सूरि आदि अनेक जैन मुनि पुंगवों ने स्वर विज्ञान के उपयोग की प्रशंसा की है और अपने ग्रन्थों में स्पष्ट किया है। ज्योतिष, रमल शास्त्र आदि से भी काल ज्ञान होता है परन्तु स्वरोदय ज्ञान अत्यंत सहज विद्या है। मात्र नासिका पर अगुँली रख कर स्वर की गति से शुभ, अशुभ, काल, आदि का जानना शरीर के रोग आरोग्य के बारे में जानना आदि कितनी ही ऐसी बातें है जिन्हे बता कर पूर्व काल के योगीश्वरों ने समाज को चमत्कृत किया हैं।

स्वरोदय ज्ञान के विषय में कहा गया है कि स्थिर चित्त एकांत में बैठकर शुभ भाव पूर्वक सद्‌गुरूदेव का स्मरण कर नाक में से निकलती हुई श्वास का अनुभव कर के स्वर को परखें। इसके पश्चात 'स्वर विज्ञान' में बतलाई हुई विधि से बोध पाकर न्याय युक्त कार्य करें। ऐसा करने से स्वर ज्ञान सिद्ध हो सकेगा। इस ज्ञान का उपयोग निंदित कार्यों में करने से विपरीत तथा अनिष्ट कारी परिणाम आता है, इस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखें।

स्वर विज्ञान में तत्वों के बारे में विशेष रूप से जोर दिया गया है। यदि यह कहा जाय कि तत्व के जाने बिना स्वर ज्ञान व्यर्थ है तो अत्युक्ति न होगी। तत्वों के विषय में विभिन्न सरल विधियों को संग्रहीत किया गया हैं। इस विषय पर जो ग्रंथ प्राप्य हैं उनमें इस कठिन विषय को अति संक्षेप में वर्णन किया गया है, और आज कल इस विधा को भली प्रकार जानने वाले और दूसरों को सिखाने की रुचि रखने वाले योगी पुरूष देखने में नहीं आते। आज स्थिति यह है कि स्वरोदय ज्ञान का अभ्यास शशश्रंगवत हो गया है। जीवन संबधी अनेक प्रश्नों का निर्णय जानने के लिये समझदार व्यक्ति स्वतः थोड़े से अभ्यास द्वारा स्वर ज्ञान का लाभ प्राप्त कर सकता है और अर्ध विद्‌गध ज्योतिषियों के चंगुल मे फंसने से छुटकारा पा सकता है अन्यथा लोग विभिन्न देवी देवताओं के चक्र में उलझ कर समय तथा धन का अपव्यय कर के भी सुख शांति पाने के स्थान पर कष्टों में घिरते जाते हैं और अंत में श्रद्धा भ्रष्ट होकर मार्ग च्युत हो कष्टों से त्रस्त जीवन व्यतीत करने पर बाध्य होते हैं।

आशा है अनेक भव्य जीव स्वर ज्ञान के क्रियात्मक सिद्धान्तों के प्रयोगात्मक उपयोग से सम्यक्तत्व को समझ कर काय कलेशों और बहुत से संकटो से छुटकारा पाकर आध्यात्मक के मार्ग पर निर्द्वन्द होकर संसार सागर का आनंद लेते हुए आगे बढ़ेंगे।

मेरी शुभकामानाएँ उनके साथ हैं, धन्यवाद।

—महर्षि 'यतीन्द्र'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय-सूची

प्रकाशकीय	(iii)
अपनी बात	(v)
अध्याय 1	
स्वरविज्ञान	1
स्वर ऊर्जा	3
अध्याय 2	
शिष्य के लक्षण	6
नैतिकता	6
मानवता	14
सेवा-भाव	17
अध्याय 3	
तत्व एवं जगद उत्पत्ति	22
अध्याय 4	
तत्व दर्शन	29
तत्व और स्वर	29
तत्व चार्ट	32
तत्वों पर ध्यान	33
अध्याय 5	
पंच कोश मय शरीर	38
अध्याय 6	
प्राणायाम बनाम स्वर साधना	46
श्वास और प्राण	50
नाड़ियाँ और पंच प्राण	51
प्राकृतिक उत्तोलन	53
प्राण साधना	55
अध्याय 7	
नाड़ियाँ और कुंडलिनी शक्ति	60
कुंडलिनी ऊर्जा	65
कुंडलिनी को जागरण	68
अध्याय 8	
स्वर और मन की शक्ति	73
तालबृद्ध स्वर शक्ति	73
स्वर उपयोग	74

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुभाशुभ स्वर	74
विपरीत स्वर	75
मानव मन	76
मन का साथ	78
मन वश में करना	81
अध्याय 9	
एकाग्रचित्त कैसे हों	88
अध्याय 10	
स्वास्थ्य और योग	109
स्वर चिकित्सा	115
उपवास	117
अध्याय 11	
स्वर शक्ति और रोगोपचार	120
मंत्रित श्वास	120
रोग निवारक क्रियाएँ	120
श्वास प्रभावी बनाना	122
स्वर और मार्जन	122
मार्जन (Pass)	123
स्वर और स्पर्श चिकित्सा	125
स्वर और मंत्राक्षर	128
अध्याय 12	
स्वर और ज्योतिष	135
तत्व और भविष्य	139
संवत्सर भविष्य दर्शन	140
गमनागमन भविष्य	142
वर्षा संबंधी भविष्य	142
उपज भविष्य	143
छिपी वस्तु बताना	143
गर्भ संबंधी भविष्य	143
रोग संबंधी भविष्य	145
अध्याय 13	
वशीकरण	147
अध्याय 14	
मृत्यु और उससे बचाव	150
अध्याय 15	
तत्व उपचार ऊर्जा	156

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

1 स्वरविज्ञान

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरेगांधर्वमुत्तमम्।
स्वरे च सर्व त्रैलोक्यं स्वरमात्म स्वरूपकम्।।

सभी वेद और शास्त्र आदि स्वर ही हैं। उत्तम गांधर्व विद्या अर्थात् संगीत भी 'स्वर' ही है। संपूर्ण संसार अर्थात् त्रिलोकी भी स्वर है और स्वर ही आत्मस्वरूप है।

स्वरहीनश्चय दैवज्ञो नाथहीनं यथा गृहम्।
शास्त्रहीनं यथावक्त्रं शिरोहीनं.च यद्वपुः।।

स्वरहीन दैवज्ञ (ज्योतिषी) भी स्वामीविहीन घर के समान है और शास्त्रविहीन वक्ता भी सिरविहीन शरीर के समान अच्छा नहीं लगता।

आर्यावर्त प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक विद्या की पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ है। इस पावन भू-धरा पर अनेकों महापुरुष इस विद्या के पारगामी हो चुके हैं और अपनी लब्धियों, सिद्धियों, निधियों के चमत्कारों से नास्तिक लोगों पर भी आत्मा के अस्तित्व की गहरी छाप डालते रहे हैं। ऐसे लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से पुनर्जन्म का अनुभव कराने वाले प्रमाण देकर अन्य मानवों को पुनर्जन्म के विषय में श्रद्धा उत्पन्न कराई है। कुछ लोगों ने योगबल से भूत, भविष्य और वर्तमान से संबंधित विप्रकृष्ट दूर वस्तु का संशय दूर कर आत्मा की ज्ञान आदि अनंत शक्तियों का बोध कराया है। ऐसे अनेक रत्न पुरुषों की धारक मातृभूमि आज जड़ विद्या के उपासकों के प्रभाव से शोचनीय स्थिति में आ चुकी है। अध्यात्म विद्या का प्रचार शून्यवत होता जा रहा है। लगता है वह दिन दूर नहीं जब व्यक्ति आत्मभान को भुलाकर अनाचार के गर्त में जा पड़ेगा। आज की स्थिति इतनी भयावह है कि यदि **आज के वर्तमान दूषित वातावरण में भी यदि योगी महात्मा लोग अध्यात्म विद्या के रहस्यों के प्रति अपने मुख पर पट्टी बाँधे रहेंगे और केवल अपने झूठे सम्मान के लिए वही बातें कहेंगे, जो जनता को पसंद हों और महात्मा जी को सम्मान मिले, तो जड़वाद का साम्राज्य छा जाना अवश्यंभावी है।** आज बाह्य और अभ्यंतर व्याधियों और उपाधियों से सारा विश्व आक्रांत है। जब हम धर्म की बात करते हैं तो **''वसुधैव कुटुम्बकम''** वाली बात सामने होती है। धर्म कोई इतनी छोटी बात नहीं है, जिसे फिकरों में संप्रदायों में बाँट दिया जाय। **''धारयते इति धर्मः''** अर्थात् जिसे व्यक्ति मात्र धारण करता है, वह धर्म है। संपूर्ण विश्व का नृवंश नाक से श्वास लेता है वह धर्म है, मुख से भी श्वास ले सकता है, परंतु वह अधर्म है, भोजन का पाचन होने के बाद व्यक्ति मात्र गुदा द्वार से विष्टा निष्कासित करता है। इस कार्य को मुख मार्ग से भी किया जा सकता है, जो 'बागी कर्म' कहलाता है—पचे हुए भोजन के फोक को नीचे से अपान वायु खींचकर या मुख में गज क्रिया के समान अँगूठा डालकर मुख के मार्ग से निकाल फेंकते हैं, फिर शौच जाने की आवश्यकता नहीं रहती और पेट का भार हलका हो जाने से 'ध्यान' ठीक प्रकार होता है। ऐसा बहुत से पेटू

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगी करते हैं, परंतु ऐसा बागी कर्म भी अधर्म की श्रेणी में आता है। तात्पर्य यह है कि शरीर संबंधी सभी ऐसी क्रियाएँ, जो प्राकृतिक रूप में आयु, बल, पौरुष में वृद्धि करें 'धर्म' के अंतर्गत आती हैं। यह तो हुई शरीर संबंधी बात; अब शरीर का आधार आत्मा है। यदि आत्मा न रहे, तो वह शरीर भी शव हो जाता है, इसलिए जो क्रियाएँ आत्मिक शक्ति में वृद्धि करती हैं, वे भी 'धर्म' की श्रेणी में आ जाती हैं। आध्यात्मिक आधि-व्याधि के निदान खोजें, तो अंत में जन्म, मरणादि के कारण 'कर्म बंधनों' पर गाड़ी रुक जाती है। प्रतीत होता है कि कर्म बंधनों के कारण ही जगत् में सब प्राणी मानसिक, कायिक, वाचिक, आध्यात्मिक, दैविक, आधिभौतिक आदि दुःखों को न चाहते हुए भी सहन करने को विवश हैं। इन आध्यात्मिक रोगों के निदान, उपचार और बचे रहने के उपायों के लिए, अपूर्व शांति प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न संप्रदायों के धर्म गुरुओं, आचार्यों, तीर्थंकरों, ऋषि-मुनियों आदि ने देशकाल परिस्थिति के आधार पर अपनी योग्यता और बुद्धि के बल पर बहुत से सैद्धांतिक और क्रियात्मक निर्देश बताये हैं।

'धर्मार्थकाममोक्षाणां' की बात श्रुति करती है और चार पुरुषार्थों को महत्व देती है—

धर्म अर्थ अरु काम शिव साधन जग में चार।
व्यवहारे व्यवहार लख, निहचे निज गुण धार।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और शिव अर्थात् मोक्ष यह चार पुरुषार्थ हैं, जिनके अर्थ संसारी लोग अपने व्यवहार के आधार पर लगाते हैं और अंतर्दृष्टि महात्मा इन के गुणों का अर्थ लगाते हैं। महात्मा चिदानंद जी ने जैनाचार्यों के आधार पर **'वत्थु सहावो धम्मो'** मानकर धर्म शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है—

मूरख कुल आचार को जानत धर्म सदीव।
वस्तु सुभाव धर्म सुधी, कहत अनुभवी जीव।।

अर्थात् अज्ञानी लोग धर्म का अर्थ कुल-आचार लगाते हैं, किंतु बुद्धिमान् अनुभवी लोग धर्म का अर्थ 'वस्तु स्वभाव' लगाते हैं।

इसी प्रकार 'अर्थ' शब्द के विषय में उनकी टिप्पणी है—

खेह खजाना को अर्थ कहत अज्ञानी जीव।
कहत द्रव्य दरसाव को, अर्थ सुज्ञानी भीव।।

अर्थात् अज्ञानी लोग धन-दौलत को अर्थ कहते हैं, परंतु ज्ञानी पुरुष द्रव्य के स्वरूप के समझने को अर्थ कहते हैं।

काम के विषय में संत चिदानंद जी कहते हैं—

दम्पत्ति रवि क्रीड़ा प्रत्ये, कहत दुर्मति 'काम'।
काम चित्त-अभिलाष को कहत सुमति गुणधाम।।

अर्थात् अज्ञानी लोग विषय सेवन (रति क्रीड़ा) को काम कहते हैं, किंतु ज्ञानी लोग चित्त की अभिलाषा को काम (कामना) कहते हैं।

इसी प्रकार मोक्ष के विषय में उनका कहना है—

स्वर्ग लोक को कहत शिव जो आगम दृगहीन।
बंध अभाव अचल गति भाषत नित परवीन।।

अर्थात् अज्ञानी लोग स्वर्ग लोक को 'शिव' कहते हैं, परंतु ज्ञानी लोग कर्म बंधन से मुक्त हो जाने से स्थिर गति अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से छूट जाने की स्थिति अर्थात् मोक्ष को शिव कहते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन सदुपदेशों को संक्षेप में हम कह सकते हैं कि **'हम लोग धर्म के अर्थ को समझकर ऐसे काम करें कि मोक्ष प्राप्त हो'**—मोक्ष का सीधा संबंध आत्मा से है। आत्मा को ब्रह्म भी कहा जाता है। इसलिए ब्रह्म ज्ञान के अनुसार आचरण करना अर्थात् ब्रह्म-आचरण या ब्रह्मचर्य ही प्रधान पुरुषार्थ शेष रह जाता है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा को कर्म बंधनों आदि से मुक्त कराने के लिए मंत्रों द्वारा ग्रहों की शक्ति का उपयोग किया जाता है, जिसके लिए ध्यान धारणा आदि क्रियाएँ की जाती हैं, जिनके लिए अपेक्षाकृत अधिक मानसिक श्रम वांछित होता है। मस्तिष्क को शक्ति ओज से प्राप्त होती है, जो वीर्य से निर्मित होता है इसलिए आध्यात्मिक साधना में उतरने वाले को क्रियात्मक रूप में वीर्य संचय करना पड़ता है। इसलिए बहुत से लोग 'ब्रह्मचर्य' शब्द का व्यावहारिक अर्थ 'वीर्य संचय' मानते हैं।

स्वर ऊर्जा

स्वर ऊर्जा शक्ति एवं सामर्थ्य के प्रतीक रूप में 'प्राण' मानी जाती है। दो व्यक्तियों के भार, आकार आदि में इतना अंतर नहीं मिलेगा, जितना कि उनकी सामाजिक शक्ति के बीच इस आंतरिक शक्ति के अंतर को व्यक्ति की विद्या, अनुभव, चतुराई, साहस, लगन, जीवनी शक्ति, शौर्य, पुष्टि, पराक्रम, पुरुषार्थ, ओज, महानता आदि में समझा जा सकता है। ऐसे ऊर्जावान् व्यक्ति सभी के मन को ऐसे भाते हैं कि उनके पास से हटने को मन नहीं करता।

स्वर ऊर्जा वाणी में मुखरित होती है, जो सुनने वाले की मानसिक दीवारें हिला देती है। इंकलाब की आवाज कठोर शासकों के दिल हिला देती है। स्वर शक्ति की ऊर्जा ही युद्ध में जा रहे सेनानी के लिए ढाल का कार्य करती है और पराक्रम के लिए उत्साहित करती है। कोई भी असंभव कार्य संभव कर पाना प्राणवानों का ही कार्य है। आपने देखा होगा कि हाथी जैसे शरीरवाला व्यक्ति भी कभी-कभी पराधीन और परमुखापेक्षी बन जाता है, यह सब स्वर ऊर्जा के अनुपात का कमाल होता है। किसी प्राणवान् व्यक्ति को देखकर कमजोर प्राण शक्ति वाले भुनते हैं और स्वयं अपने दुर्भाग्य का रोना रोते रहते हैं। प्राण ऊर्जा द्वारा ही श्रद्धा, निष्ठा, दृढ़ता, एकाग्रता और आध्यात्मिक भावना प्राप्त होती है और प्राण ऊर्जा मिलती है श्वास की क्रिया से श्वास के मार्ग हैं नासारंध्र, जो स्थिति के आधार पर दाहिने स्वर अथवा बाएँ स्वर के नाम से जाने जाते हैं।

ईश्वर (यदि आप मानते हैं तो) अपनी ओर से न किसी को बंधन देता है न मुक्ति। हम स्वयं अपनी स्थिति के आधार पर अपने लिए नरक या स्वर्ग का निर्माण कर लेते हैं। ऊर्जावान् व्यक्ति ही आत्मलाभ कर पाते हैं इसलिए ऊर्जा संचय के लिए योग शास्त्र में अधिक बल दिया जाता है आसन और प्राणायाम की महिमा से संपूर्ण योगशास्त्र भरा पड़ा है। यूँ आलसियों ने अपने पैर वहाँ भी भरपूर गड़ा रखे हैं। वे कहते हैं कि हम तो केवल ध्यान योग करते हैं और ध्यान द्वारा सब कुछ पा लेते हैं, आसन प्राणायाम की हमें आवश्यकता नहीं। वे नहीं जानते कि वे कितना बड़ा अनर्थ कर रहे हैं—वे बिना नींव का महल बना रहे हैं, जो अपनी ऊँचाई पर पहुँचने से पूर्व ही धराशायी हो जाना है।

दीर्घ जीवन, उत्तम स्वास्थ्य, चैतन्यता, स्फूर्ति, उत्साह, क्रियाशीलता, कष्ट, सहिष्णुता, बुद्धि की सूक्ष्मता, सुंदरता, मोहकता आदि बहुत-सी विशेषताएँ प्राण ऊर्जा रूपी फुलझड़ी की छोटी-छोटी चिनगारियाँ हैं। निस्तेज व्यक्ति अपने घरवालों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों, मित्रों तक को प्रभावित नहीं कर पाते, फिर ईश्वर को क्या प्रभावित करेंगे ? तेजस्वी बनने के लिए प्रथम आवश्यकता 'प्राणवायु' की है, जो स्वर ऊर्जा के द्वारा तेज उत्पन्न करती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर साधना श्वास को खींचने, अंदर रोकने और बाहर फेंकने की एक विशेष क्रिया पद्धति है। सामान्य श्वासप्रश्वास क्रिया में वायु के साथ प्राण ऊर्जा शरीर में ऐसे ही आती और जाती है; जैसे सड़क पर यात्री चलते रहते हैं। परंतु स्वर साधना के समय जो श्वासप्रश्वास चलते हैं, उनमें प्राण ऊर्जा को शरीर के कोश-कोश तक पहुँचाकर स्थापित किया जाता है और चयापचय की क्रिया से उत्पन्न मल को शरीर के कोशों से बाहर फेंक दिया जाता है।

भारतीय दर्शनशास्त्र शरीर को पंच कोशों से निर्मित मानता है—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनंदमय कोश और तब इनके अंदर आत्मा का निवास अर्थात् आत्मशुद्धि के लिए इन कोशों को पार करना आवश्यक है। वैसे यह व्यवस्थाएँ बड़ी सहज भाषा में इस प्रकार समझी जा सकती हैं—व्यक्ति की प्रथम आवश्यकता भोजन है बच्चा, अबोध शिशु खाने के लिए मुँह फाड़ता है (कोई सिखाता नहीं है उसे), उसके पश्चात् शक्ति संचय की आवश्यकता शरीर को होती है, जिसे हम प्राण ऊर्जा कहते हैं। जब अन्न और प्राण भली प्रकार स्थिर हो लेते हैं, तब सोचविचार, भावनाएँ तथा मानने वाली बातें अपना स्थान लेती हैं, तब वह पिता, माता, भाई, बहन आदि मानने लगता है। उसके पश्चात् उसमें समझ आती है और वह विश्लेषणात्मक अध्ययनों में रुचि लेकर प्रत्येक वस्तु को जानने समझने में लग जाता है। इस प्रकार मनोमय तथा विज्ञानमय कोश को पार करने के पश्चात् व्यक्ति सब कुछ समझकर आनंदपूर्ण जीवन व्यतीत करने लग जाता है। जीवन का जो भाग ठीक से समझ में नहीं आता उस ओर का आनंद जीव को नहीं मिल पाता। जो आत्मा के आनंद को समझ लेता है, वह ब्रह्मानंद की मस्ती में पूरा जीवन व्यतीत कर देता है और अंत में मोक्ष लाभ प्राप्त करता है। उसके जीवन में करणीय कुछ शेष न रह जाने के कारण वह अपना सर्वस्व परमार्थ में लगा देता है।

ऐसे परमानंदपूर्ण जीवन को पाने की कुंजी है स्वर साधना। योगशास्त्र सूर्य के केंद्र को प्राण कोश कहता है। यह सूर्य केंद्र अथवा सूर्य चक्र पाश्चात्य वैज्ञानिकों के लिए भी अध्ययन का विषय बना है और उन्होंने इस सूर्य ग्रंथि को बहुत से सूक्ष्म तंतुओं का केंद्र स्वीकार किया है यह सूर्य ग्रंथि अथवा सोलर प्लेक्सस आमाशय के ऊपर हृदय के नीचे मेरुदंड के दोनों ओर स्थित है, जो कि श्वेत और भूरी गद्दी जैसा है। वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर की आंतरिक अवस्था तथा क्रियाविधि पर इसका विशेष प्रभाव होता है। योगशास्त्र के आधार पर यहाँ से मानवी विद्युत् का प्रवाह संपूर्ण शरीर में होता है। प्राण ऊर्जा का यही स्थान है।

स्वरसाधना द्वारा सूर्य चक्र की हलकी-हलकी मालिश होती है, जो उसमें एक विशेष प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न करती है और उसकी क्रियाशीलता में वृद्धि करती है। प्राणायाम से फेफड़े फूलते हैं और सूर्य चक्र की परिधि को स्पर्श करते हैं। इस स्पर्श के कारण भी सूर्य चक्र में उत्तेजना बढ़ती है और संबंधित सभी अंग प्रत्यंगों में जीवन तथा बल का संचार होने लगता है, जिससे शारीरिक और मानसिक उन्नति के द्वार खुलते हैं। मेरुदंड के दाहिनी तथा बायीं ओर नाड़ी गुच्छों की दो शृंखलाएँ चलती हैं। यह सभी गुच्छक आपस में संबंधित हैं और इन्हीं में सिर, कंठ, वक्ष, उदर आदि के नाड़ी गुच्छक भी सम्मिलित हो जाते हैं। मेरुदंड के दोनों ओर चलने वाली नाड़ी रज्जू इड़ा और पिंगला नाम से योगशास्त्र में जानी जाती हैं। स्वर साधना में इन्हीं नाड़ियों को विधि अनुसार अधिक सक्षम बनाकर तत्संबंधी सहानुभावी क्रिया उत्पन्न कर आनंदमय स्थिति प्राप्त की जाती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राचीनकाल से अध्यात्म वेत्ता स्वरसाधना के महत्व और लाभों को आवश्यकतानुसार जनसाधारण को समझाते रहे हैं। महापुरुष ईसा मसीह एक ऊँचे पर्वत पर चढ़कर शिष्यों सहित ईश्वर प्रार्थना करते थे। कहा जाता है कि श्वास क्रिया तथा स्वच्छ प्राण वायु सेवन की यह अति उत्तम विधि थी। बौद्ध धर्म में 'जज़न' नामक प्राणायाम की परंपरा रही है। ज्ञातव्य है कि जापानी पुरोहित हकुइन जेशी ने स्वरसाधना का बहुत प्रचार किया था। यूनान का दार्शनिक प्लेटो तो स्वरसाधना सिद्ध था ही। स्वरसाधना द्वारा लोग अपने तथा दूसरों के रोगों का उपचार करने में भी समर्थ हो जाते हैं। "स्वरचिकित्सा" स्वयं में एक अलग विज्ञान है। उपयोग तथा लाभ के आधार पर श्वास लेने की बहुत प्रकार की विधियाँ विभिन्न प्रकार के प्राणायामों के नाम से योग साधकों में प्रचलित हैं। प्राणायाम अर्थात् स्वरसाधना से शरीर की सूक्ष्म क्रियापद्धति की व्यवस्था में ऐसे विज्ञान सम्मत परिवर्तन आते हैं, जिनके कारण रक्त संचार, नाड़ी संचालन, वायु निस्सरण, पाचन क्रिया, स्नायविक दृढ़ता एवं मानसिक विकास के स्पष्ट लक्षण प्रकट होने लगते हैं। व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक बलशील, उत्साही, परिश्रमी, स्वस्थ एवं प्रसन्न दिखाई देने लगता है। जब हम स्वरसाधना के इन लाभों को अध्यात्म की दृष्टि से देखते हैं, तो चित्त की एकाग्रता, स्थिरता, संयमशीलता आदि आवश्यक गुणों की स्वतः ही अभिवृद्धि पाकर अनुभव करते हैं कि आत्मोन्नति के लिए स्वरसाधना एक आवश्यक क्रिया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

2 शिष्य के लक्षण

शिष्य के लक्षणों के विषय में स्वरोदयशास्त्र का मानना है कि—

शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरु भक्त्यैकमानसे।
दृढ़ चित्ते कृतज्ञे चदेयं चैव स्वरोदयम्।।

विद्यार्थी का हृदय शांत, शुद्ध और पूर्णतः गुरु भक्त होना चाहिए। इस स्वरोदयशास्त्र का ज्ञान उसे ही दें, जो सदाचारी, दृढ़चित्त और कृतज्ञ हो।

दुष्टे च दुर्जने क्रुद्धे नास्तिके गुरुतल्पगे।
हीन सत्वे दुराचारे स्वर ज्ञानं न दीयते।।

दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक, गुरु पत्नी पर कुदृष्टि रखने वाले हीन, सत्व, दुराचारी व्यक्ति को कभी स्वर ज्ञान न दें।

नैतिकता

नैतिकता वह ज़ीवन-व्यवस्था है, जिसके सहारे मानव मंदिर का सफल निर्माण होता है। नैतिक शक्ति मानव जीवन के विकास की जड़ है। नैतिक जीवन जितना बलवान् और पवित्र होगा, उसी परिमाण में व्यक्ति का विकास होता है। नैतिक निर्बलता व्यक्ति के विकास के लिए सबसे बड़ा अड़ंगा है। समाज या राष्ट्र व्यक्तियों की नैतिक शक्ति पर ही पनपता है, अतः जिस देश में व्यक्तियों का नैतिक स्तर गिर जाता है, वह देश निर्बल हो जाता है। आज भारत में चारों ओर नैतिक शक्ति की गिरावट का स्पष्ट दर्शन होता है। देश में और देश के नेतृत्व में यदि सर्वव्यापी चिंता का कोई विषय है, तो वह है—आज के भारत की सर्वव्यापी नैतिक गिरावट। जीवन के समस्त क्षेत्रों में चाहे वह राजनैतिक हो, सामाजिक हो, आर्थिक हो, धार्मिक हो अथवा शैक्षणिक हो, सबमें नैतिक स्तर गिरा हुआ है। इसका यह अर्थ नहीं कि देश के हर व्यक्ति का नैतिक स्तर गिरा है और समान रूप में गिरा है। देश में ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनका नैतिक स्तर बहुत ऊँचा है और यत्किंचित भी उसमें कमी नहीं है। समाज में ऐसे लोग भी हैं, जिनका नैतिक स्तर बिलकुल गिरा हुआ है। राष्ट्र में उच्च स्तर के व्यक्तियों के होते हुए भी राष्ट्रीय स्तर इसलिए गिरा हुआ दिखाई देता है क्योंकि बहुसंख्यक जनता का स्तर गिरा हुआ है। बहुजन की स्थिति पर ही राष्ट्र की स्थिति निर्भर रहती है और इसीलिए आज संपूर्ण देश में नैतिक पतन का दृश्य दिखाई दे रहा है। ऐसी स्थिति में यदि देश को फिर ऊँचा उठाना है, सभ्य समाज का महान् चट्टान पर नव निर्माण करना है, तो नैतिक शक्ति की बुनियाद पर ही ऐसा हो सकेगा। देश की सबसे प्रमुख समस्या नैतिक समस्या है। उसका निवारण हर व्यक्ति की नैतिक शक्ति जगाने से ही संभव है। अब हमें यह देखना है कि नैतिक शक्ति क्या है, उसे किस प्रकार ज़गाया जा सकता है और उसे किस तरह परिणामकारी बनाया जा सकता है। स्वस्थ मानव का नव निर्माण ही नैतिकता का अंतिम उद्देश्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विश्व में जीवन-निर्माण के साथ जीवित रहने की भावना का निर्माण हुआ। पशु-पक्षियों में यह भावना जीवनव्यापी है। मानव के जीवन में इस भावना में शक्ति के साथ विचारशक्ति ने जन्म लिया। मानव की बाल्यावस्था भावनामय अवस्था है। इसके बाद विचारशक्ति का जन्म होता है और विचारशक्ति का ही उन्नत स्वरूप विवेक शक्ति है। मनुष्य में विवेकशक्ति जितनी बलवान् होगी, उतना ही उसका नैतिक स्तर ऊँचा और प्रभावशाली होगा। विवेक मानव-जीवन की निर्णयात्मक सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। कौन-सा कार्य उचित है और कौन-सा अनुचित इसका निर्णय यही विवेकशक्ति करती है। यह शक्ति फिर विचारों से टकराती है और यदि विचार निम्न श्रेणी के हों, तो विवेक न्याय-अन्याय का दर्शन करते हुए भी निर्बल रह जाता है और मनुष्य अन्याय मार्ग से कार्य करता रहता है उदाहरण के लिए मनुष्य को कई प्रकार के व्यसन रहते हैं। विवेक कहता है कि व्यसन खराब हैं, हानिकारक हैं, पर व्यसन-शक्ति बलवान् रहती है। फलतः मनुष्य व्यसनों को त्याग नहीं सकता। दुनिया की किसी वस्तु को अनाधिकार ले लेना, यह अनुचित विचार है। विवेक कहता है कि यह अनुचित कार्य है, पर उसकी आवाज निर्बल रहती है और मनुष्य अन्याय को जानते हुए भी जीवन में उसका अवलंबन करता है। सारांश यह है कि मनुष्य की विवेकशक्ति जितनी प्रभावी होगी, उतना ही व्यक्ति का नैतिक बल भी प्रभावी होगा। समाज के स्वस्थ नव-निर्माण के लिए सर्वप्रथम इस बात की आवश्यकता है कि मनुष्य की विवेक बुद्धि इतनी बलवान् और जाग्रत हो कि वह अनुचित कार्य के मोह में न फँसे और जो न्याय दिखाई दे उसी मार्ग पर जीवन को निश्चय के साथ अग्रसर कर सकें।

नैतिक शक्ति का मूल स्रोत यद्यपि मानव की अंतस्थ विवेकशक्ति में हैं, पर यह अंतस्थ शक्ति बाह्य स्थिति से प्रभावित हुआ करती है और बाह्य शक्तियाँ इस अंतस्थ शक्ति को अपने अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया करती हैं। ये बाह्य शक्तियाँ हैं—मानव समाज की सामयिक स्थिति और व्यवस्था।

समस्त मानव समाज का यदि अवलोकन किया जाय, तो वहाँ नैतिकता मानव व्यापी दिखाई देगी। इस दृष्टि से नैतिकता ही मानव समाज की सर्वश्रेष्ठ शक्ति है और इसकी बुनियाद पर ही नव मानव का निर्माण होना संभव हो सकता है। नैतिकता यदि विवेक पर आधारित विश्वव्यापी बनेगी, तो वह आत्मशक्ति प्रेरित नैतिकता होगी। उस नैतिकता में निर्भयता रहेगी। वहाँ आत्मप्रेरणा का स्रोत रहेगा और मानव को अपनी जीवनीशक्ति का एक नया अनुभव आयेगा। आज इस प्रकार की विश्वव्यापी नैतिकता की माँग संसार में बढ़ रही है और यद्यपि सर्वत्र राज्य सत्ता और संकुचित धर्म सत्ता की प्रबलता दिखाई देती है, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि आनेवाला युग नैतिकता और विज्ञान शक्ति का युग होगा। नैतिकता के क्षेत्र में दो बातों का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए—

(1) अपने मानवीय अधिकारों के रक्षण की सामर्थ्य और (2) हर कार्य में निर्भय-वृत्ति। समाज में व्यक्ति के सुखों का और सामाजिक सुखों का समन्वय आवश्यक है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के सुख भिन्न-भिन्न होते हैं और जिनके पास अधिक शक्ति है, वे निर्बलों का शोषण करते हैं। निर्बल व्यक्ति शोषण को सहन करता है और जीवित रहता है, यह मानसिक अवस्था नीतियुक्त नहीं। नीति का दर्शन वहाँ होगा, जहाँ व्यक्ति अपने सिद्धांतों एवं अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ होगा और उसके लिए अपनी सारी शक्ति लगा देगा, यहाँ तक कि जीवन समर्पण तक के लिए तत्पर रहेगा, तभी नैतिकता का सही अवलंब व्यक्ति के जीवन में दिखाई देगा। नैतिकता में अपने अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ दूसरों के अधिकारों की रक्षा का भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समावेश होता है। शक्तिशाली असभ्य मनुष्य अपने अधिकारों की तो रक्षा करता है, पर वह निर्बलों का शोषण कर उनके अधिकारों पर आक्रमण करता है। सभ्य नीतिमान व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। अपने अधिकारों की रक्षा और अन्यों के अधिकारों का आदर उसका जीवन लक्ष्य रहेगा। इस लक्ष्य से ही व्यक्ति और समाज के सुखों का समन्वय होकर शांतिमय कल्याणप्रद समाज व्यवस्था स्थापित होगी।

नैतिकता का दूसरा लक्षण है, निर्भयता। धर्म और राजसत्ता से प्रभावित नैतिकता भय प्रेरित हुआ करती है। किंतु स्वप्रेरित नैतिकता पूर्णतः निर्भय होती है और वही स्थायी एवं सच्ची नैतिकता कहलाती है। भय युक्त नैतिकता की आड़ में मनुष्य छिपकर अनुचित कार्य करता है और छिपाने का प्रयत्न करता है। अनुँचित कार्य करने पर वह व्यक्ति असत्य का आश्रय लेता है और जब सारा समाज असत्य की बुनियाद पर नीतिमान बनने का दावा करता है, तब अनीति सर्वव्यापी बन जाती है और समाज निस्सत्व बन जाता है। स्वप्रेरित नीतिमान व्यक्ति प्रथमतः अनुचित कार्य करेगा ही नहीं, पर किसी स्थिति में कर भी डाले, तो उसे वह निर्भयता से स्वीकार कर लेता है। ऐसा करना यद्यपि समाज की दृष्टि से उचित न हो, पर नीति की दृष्टि से अनुचित नहीं होगा। कोई व्यक्ति भावनावश या अन्याय के प्रतिकार में किसी का खून कर डालता है, पर उसकी विवेकशक्ति इतनी बलवान् होती है कि वह थाने में जाकर अपने अपराध को स्वीकार करता है, शासन और धर्म के नाते भले ही उसका कार्य अनुचित हो, परंतु यदि वह निर्भयता से उसे स्वीकार करता है, तो वह व्यक्ति नीतिमान ही कहा जायेगा।

निर्भयता का दर्शन मानव-जीवन की आकांक्षाओं की पूर्ति में भी होता है और वह है कार्य की सफलता के लिए उचित साधनों का प्रयोग। नैतिकता के क्षेत्र में साध्य की अपेक्षा साधनों की शुचिता का अधिक महत्त्व होता है। नीतिमान् व्यक्ति उचित एवं न्यायपूर्ण साधनों का ही अवलंब करता है। किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए वह अनुचित साधन का उपयोग नहीं करता है। ऐसी हालत में उसे निर्भय वृत्ति का परिचय देना ही पड़ता है। अनुचित साधनों का प्रयोग निर्भयता के साथ प्रायः नहीं किया जाता। अतः निर्भयता जीवन के कार्य क्षेत्र में बहुत बड़ी शक्ति है और वह शक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में नीतिमय बनाये रखने में सहायक होती है।

मानव जीवन में अनेक गुणात्मक शक्तियाँ होती हैं; यथा—सत्य, अहिंसा, अक्रोध आदि। इन सारी शक्तियों की जड़ भी निर्भयता में है। जिस व्यक्ति के जीवन में भय है, वह दृढ़तापूर्वक सदा सत्य का पालन नहीं कर सकता, न वह अहिंसा का उपासक हो सकता है, और न क्रोध को ही वश में रख सकता है।

सन्मार्ग के अवलंबन के लिए अनेक गुणों के समन्वय की आवश्यकता है। जीवन की पवित्रता और जीवन की श्रेष्ठता सन्मार्ग पर अवलंबित है। व्यक्ति और समाज दोनों की महानता व्यक्ति के गुण समन्वय पर आधारित है। सारे सद्गुणों की शक्ति का स्रोत निर्भयता है। निर्भयता में से ही अनेक गुणों का प्रवाह स्रवित होता है, जो जीवन-सरिता को सर्वत्र सन्मार्ग में प्रवाहित करता रहता है। देश की आज सर्वाधिक आवश्यकता जीवन के सर्वव्यापी क्षेत्र में सही मार्ग का अवलंबन, उसका निर्भयता के साथ पालन एवं जीवन को सर्वव्यापी ऊँचाई की है। इसी में व्यक्ति के जीवन एवं समाज के विकास तथा शांतिमय सह-अस्तित्व की सफलता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हम परम सौभाग्यशाली हैं कि मानव जीवन जैसा दुर्लभ अवसर हमें प्राप्त हुआ है। यही हमारा अनमोल जीवन कल्मषों में, विषय-वासनाओं में व्यतीत हो रहा हो, तो इसे एक दुर्भाग्य-पूर्ण विडंबना ही कहना चाहिए। एंद्रिक सुख मानव जीवन का साध्य कदापि नहीं है। मात्र पेट और प्रजनन के लिए जीने वाले व्यक्तियों का जीवन तो पशुओं के सदृश है। मानव जीवन की सार्थकता तो इसी में है कि विषय वासनाओं की पंक में न फँसकर, उत्कर्ष का सतत् प्रयास किया जावे।

तृष्णाओं और वासनाओं की अग्नि ऐसी जबरदस्त है कि एक बार प्रज्वलित होने पर फिर कठिनाई से ही शांत होती है। जिस प्रकार आग में घी डालने से वह बढ़ती ही जाती है, उसी प्रकार शारीरिक सुख की इच्छा को परितृप्त करते रहने से इच्छाएँ अभिवर्द्धित होती ही जाती हैं। इच्छाएँ आसक्ति को, आसक्ति क्रोध को, क्रोध विभ्रम को, विभ्रम स्मृति को नष्ट करता है, स्मृति नाश से बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश ही सर्वनाश है।

शरीर रूपी रथ के चंचल घोड़े ये पंच ज्ञानेंद्रियाँ अपने पंच विषयों की ओर उसी वेग से दौड़ती हैं; जैसे ताँगे में जुता हुआ घोड़ा दिन भर काम करके संध्या के समय घर की ओर दौड़ता है। हिरन शब्द के श्रवण मोह में फँसकर प्राण गँवाता है। भ्रमर गंध और रसना के आकर्षण में बंदी बनता है। स्पर्श सुख का आकर्षण मछली और पतंगे को नष्ट ही कर देता है, तो पाँच-पाँच विषयों के आकर्षण में फँसा मनुष्य सतत् उद्विग्नता की अग्नि में झुलसता हुआ अंतस् से कितना दुःखी होगा, यह कल्पनातीत ही है। इन एंद्रिक वासनाओं का संयम न कर सकने वाले मनुष्य कनक, कामिनी और कादंबरी के आकर्षण में फँसकर अपना स्वास्थ्य, समय, धन और आत्मसुख को खोकर नरक की ओर बढ़ते हैं।

यह सोचना कि भोग विलास हमें आंतरिक सुख दे पायेंगे, एक भयंकर भूल है, वासना और तृष्णा का जाल जंजाल बाहर से तो बड़ा मनोहारी लगता है, परंतु जैसे-जैसे व्यक्ति उनके अंदर बैठता है, वह उसे तिल-तिल करके गलाने लगता है। शरीर के भोग ही रोग बनकर उसे ग्रस लेते हैं।

वासनाएँ चोर के समान होती हैं। जिस प्रकार चोर अंधेरा देखकर निर्बल व्यक्ति को लूट ले जाते हैं, उसी प्रकार वासनाएँ भी निर्बल इच्छाशक्ति वाले, निर्बल चरित्र वाले मूढ़ व्यक्तियों पर अपना हमला बोल देती हैं। सुदृढ़ चरित्र वाले आस्था और साहस से युक्त व्यक्तियों से तो वे ऐसे ही डरती हैं जैसे भेड़िये से मेमना डरता है।

जिसके जीवन का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता, उसे कुकामनाएँ शीघ्र ही प्रलोभन देने लगती हैं। यदि हम मानव शरीर प्राप्त करके भी लक्ष्यहीन जीवन व्यतीत करते हैं, तो यह हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। हमें चाहिए कि अपने स्वरूप और कर्तव्य को समझें तथा तदनुरूप कार्य करें।

वस्तुतः आत्मशांति ऐंद्रिय सुखों से नहीं अपितु आत्मिक संपदा बढ़ाने से मिलती है। जैसे-जैसे हम गुणों, कर्म और स्वभाव को उत्कृष्ट बनाते जायेंगे, वैसे-वैसे हमारा अंतःकरण निर्बल बनता जायेगा तथा दृष्टिकोण परिष्कृत होता जायेगा। जैसा हमारा दृष्टिकोण होगा, हम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे और वैसा ही संसार हमें दिखाई पड़ेगा।

परिष्कृत दृष्टिकोण का नाम ही स्वर्ग है। वस्तुतः स्वर्ग किसी स्थान विशेष का नाम नहीं अपितु वह तो अपने ही अंतस् की भावनात्मक सृष्टि है। इस सृष्टि का विस्तार जैसे-जैसे बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे ही व्यक्ति उस कैवल्य सत्ता की महत्ता में समाता हुआ सच्चिदानंद की प्राप्ति में समर्थ होगा, जो उसकी जीवन यात्रा की अंतिम परिणति है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जितना प्रयास दूसरों का आसरा लेने और जिस-तिस का दरवाजा खटखटाने में किया जाता है यदि उतना ही स्वावलंबन पर केंद्रित किया जाय, तो उससे कहीं अधिक मिल जाता है, जो अन्य किन्हीं की सहायता से मिल सकना संभव है।

यों देवताओं की संख्या बहुत है और उनके महत्व माहात्म्य भी बहुत हैं, पर उनकी साधना सर्वदा अभीष्ट फल प्रदान नहीं कर सकती। एक ही देवता ऐसा है, जिसकी साधना का सत्परिणाम असंदिग्ध रूप से प्राप्त होता है, ऐसा शक्तिशाली महादेव है—आत्मदेव। अब तक किसी को भी यह परिवाद नहीं करना पड़ा कि आत्मदेव की पूजा अर्चना से किया गया श्रम निरर्थक चला गया अथवा उसके दरबार से खाली हाथ लौटना पड़ा।

भिक्षा माँगने में दीन-दयनीय बनकर जितना श्रम किया जाता और समय लगाया जाता है, उसकी अपेक्षा कम श्रम और कम समय में कहीं अधिक कमाया जा सकता है। यह तथ्य यदि आँख से ओझल न रहे, तो कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति भिक्षावृत्ति अपनाकर न तो अपना सम्मान गँवाये, न स्तर गिराये और न घाटे में रहे।

आत्मदेव की उपासना का अर्थ है अपने गुण कर्म स्वभाव का परिष्कार। मनुष्य में अकूत शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। उनका जागरण थोड़े ही प्रयास से हो सकता है। शर्त एक ही है कि वैसी उत्कृष्ट अभिलाषा जाग्रत हो और आत्मपरिष्कार के उत्कृष्ट प्रयास में जुट पड़ने की तत्परता सक्रिय की जाय। मनुष्य में इतनी विशेषताएँ बीज रूप में विद्यमान हैं कि उनका जागरण सहज ही प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचा देने में समर्थ हो सकता है। महामानवों के जीवन क्रम में पग-पग पर यही तथ्य जगमगाता ही दीखता है कि उन्होंने अपने गुण, कर्म, स्वभाव को व्यवस्थित एवं परिष्कृत बनाने में उत्कृष्ट प्रयास किया और उसमें तब तक लगे ही रहे जब तक आत्मविजय की तपस्या को पूरी तरह फलदायी न बना लिया।

आलस और प्रमाद वे दुर्गुण हैं, जो मानवी शक्ति का सबसे अधिक क्षरण तथा अपहरण करते हैं। अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित व्यक्ति अपना समय गँवाते रहते हैं फलतः उनका सौभाग्य भी साथ ही गुम हो जाता है। सामने प्रस्तुत कर्म में उदासी—उपेक्षा बरतने वाले, कर्म को भार समझकर उसका बोझ ढोने वाले, पग-पग पर थकते हैं और प्रगति का पथ अपने हाथों नष्ट करते हैं। काम में मनोयोग लगाकर उस माध्यम से कौशल विकसित करना और पुरुषार्थ का आनंद लेना कितना अधिक मंगलमय है इसका रहस्य विरले ही जानते हैं। पुरुषार्थ, श्रमशील और मनस्वी कर्म परायण व्यक्ति आत्मनिर्माण में संलग्न रहकर कुछ ही समय में इतने सुयोग्य एवं सक्षम बन जाते हैं कि अपनी उचित आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति सहज ही में कर सकते हैं।

नेक मनुष्य और चरित्रवान् बनकर रहना इतनी बड़ी उपलब्धि है कि उस प्रामाणिकता के आधार पर दूसरों का स्नेह सद्भाव सहज ही आकर्षित किया जा सकता है। सज्जनता और सरलता की रीति नीति विविध विधि चरम चातुर्य की तुलना में कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध होती है। उद्धत व्यक्ति आतंकवादी उद्दंडता बरतने पर अहंकार की जितनी प्राप्ति करते हैं, उससे असंख्य गुना सम्मान विनयशील एवं सुसंस्कारी व्यक्ति प्राप्त करते हैं। व्यवस्थित रीति-नीति अपनाकर निर्धारित लक्ष्य की ओर अनवरत निष्ठा के साथ चलते रहने वाले अंततः सफल मनोरथ होकर ही रहते हैं।

स्वावलंबन की साधना करने वाले ही अभीप्सित मनोरथ पूर्ण कर सकने का वरदान प्राप्त करते हैं, इस तथ्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही श्रेयस्कर है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिन और रात की तरह मनुष्य जीवन में प्रिय और अप्रिय घटना क्रम आते-जाते रहते हैं। इन उभयपक्षी अनुभूतियों के कारण ही जीवन की शोभा और सार्थकता है। यदि एक ही प्रकार की परिस्थितियाँ सदा बनी रहें, तो यहाँ सब कुछ रूखा और नीरस लगने लगेगा। सदा दिन ही रहे, । कभी रात न हो, सदा मिठाई ही खाने को मिले, कभी नमक के दर्शन न हों, सबकी उम्र एक-सी रहे न कोई छोटा हो न बड़ा, सर्दी या गर्मी की एक ही ऋतु सदा रहे, दूसरी बदले ही नहीं, तो फिर इस संसार की सुंदरता ही नष्ट हो जायगी। सदा प्रिय, अनुकूल और सुखद परिस्थितियाँ बनी रहें, कभी अप्रिय और प्रतिकूल स्थिति न आवे, तो कुशलता, कर्मनिष्ठा और साहसिकता की जरुरत ही न पड़ेगी। लोग आलसी, निकम्मा और नीरस जीवन जीते हुए किसी प्रकार मौत के दिन पूरे किया करेंगे।

अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति के कारण उत्पन्न होने वाली सुविधा असुविधा का उतना महत्व नहीं जितना मानवीय सद्गुणों का। पुरुषार्थ, साहस, धैर्य संतुलन, दूरदर्शिता जैसे सद्गुणों का विकास और परीक्षण प्रतिकूल परिस्थितियों में ही संभव है। यदि सदा अनुकूलता बनी रहे, तो फिर ढर्रे का जीवन जीने वाले लोग गुणों की दृष्टि से पिछड़े ही रहेंगे। इस प्रकार के विकास की उन्हें आवश्यकता ही अनुभव न होगी।

इस प्रकार के अगणित तथ्यों का ध्यान रखते हुए सृष्टि ने इस दुनिया में अनुकूलता -प्रतिकूलता उत्पन्न की है। अनुकूल स्थिति में लाभ उठाकर हम अपने सुविधा साधनों को बढ़ायें और प्रतिकूलता के पत्थर से घिसकर अपनी प्रतिभा पैनी करें, यह उचित है और यही उपयुक्त।

कई व्यक्ति प्रतिकूल स्थिति में मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और वे बेहिसाब दुःखी रहने लगते हैं। एक बार प्रयत्न करने पर कष्ट दूर नहीं हुआ या सफलता नहीं मिली, तो निराश हो बैठते हैं। कई व्यक्ति इससे भी आगे बढ़े-चढ़े होते हैं और बैठे ठाले भविष्य में विपत्ति आने की आशंका करते रहते हैं। प्रस्तुत असुविधा के समाधान का पुरुषार्थ करें, उपाय सोचें, इसकी अपेक्षा वे चिंता, भय, निराशा, आशंका, उद्विग्नता जैसी उलझनें खड़ी करके अपने को उसमें फँसा लेते हैं और स्वनिर्मित एक नई विपत्ति गढ़कर खड़ी कर लेते हैं। इस बौद्धिक अवसाद के खतरे को और उससे उत्पन्न हानियों को हमें समय रहते समझ लेना चाहिए, ताकि उस दल-दल में फँसने की विपत्ति से बचा जा सके।

जर्मन मनोवैज्ञानिकों ने चिंतातुर लोगों से पूछकर उनके कारणों का वर्गीकरण किया है, तो पता चला है कि 40 प्रतिशत समस्याएँ ऐसी थीं, जिनकी केवल आशंका मात्र थी, वे सामने आई ही नहीं। 30 प्रतिशत ऐसी थीं, जो बहुत मामूली थीं। वे कारण थे तो, पर सूझ-बूझ तथा परिस्थितियों ने उन्हें इस प्रकार सुलझा दिया कि समय पर किसी उलझन में नहीं पड़ना पड़ा, 12 प्रतिशत स्वास्थ्य संबंधी थीं। वे उपचार से ठीक हो गईं, न वे असाध्य थीं और न इन्होंने प्राण संकट उत्पन्न किया। 10 प्रतिशत ऐसी थीं, जिनके लिए दौड़ धूप करनी पड़ी, दूसरों का सहारा लेना पड़ा और थोड़ी परेशानी भी सहनी पड़ी। केवल 8 प्रतिशत चिंताएँ ही ऐसी थीं, जिन्हें कुछ वजनदार कहा जा सकता था और जिन्हें पूरी तरह हल न किया जा सका, उनके कारण नुकसान भी उठाना पड़ा।

चिंता ग्रस्त रहने वाले लोग निश्चिंत व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक घाटे में रहते हैं। मनमौजी और मस्त लोगों को नियत समय पर ही समस्या का सामना करना पड़ता है, पर चिंतातुर लोग बहुत पहले से ही मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और हड़बड़ी के कारण अपना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अच्छा भला स्वास्थ्य भी गँवा बैठते हैं। मस्तिष्क जितना अधिक समस्याओं से उलझा हुआ रहेगा, उतना ही वह समस्याएँ सुलझाने में असमर्थ हो जायेगा। क्रोधी, आवेशग्रस्त, उत्तेजित, आक्रोश में भरे हुए दिमाग एक प्रकार से विक्षिप्त जैसे हो जाते हैं। वे एक ही आवेश संचालित दिशा में सोचते हैं। कई तथ्यों पर ध्यान रखते हुए सही निष्कर्ष निकालना उनके काबू से बाहर की बात हो जाती है। चिंता का कारण दूर करना तो दूर, ऐसे लोग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गँवाकर दुहरी हानि उठाते हैं।

मनुष्य के समान न तो कोई बलवान् प्राणी है न निर्बल। बलवान् इसलिए है कि यदि वह सूझबूझ से काम ले, अपनी शक्तियों को ठीक तरह प्रयुक्त करे, अपने मधुर व्यवहार के कारण दूसरों का सद्भाव सहयोग संजोये रहे, तो प्रगति के पथ पर द्रुतगति से आगे बढ़ सकता है। निर्बल इसलिए है कि हड़बड़ी, उतावली और अदूरदर्शिता अपनाये, तो बने काम बिगड़ते चले जायेंगे और सफलता की संभावना असफलता बनकर सामने आ खड़ी होगी। अपनी अप्रामाणिकता और अयोग्यता सिद्ध करके वह अपने को मित्रों से रहित एकाकी बना लेगा। यदि अधीरता प्रकट करके और ओछेपन का परिचय देगा, तो परिस्थितियाँ उसके विपरीत होती चली जायेंगी और अनुभव करेगा कि दुर्भाग्यग्रस्त और दुर्बल मैं ही हूँ।

चिंता और चिता में थोड़ा ही अंतर है। लिपि की दृष्टि से एक बिंदु की न्यूनाधिकता है। चिता मरने के पश्चात् मनुष्य को जलाती है, किंतु चिंता जीवित को ही जलाना आरंभ कर देती है। इस जलन से शरीर का सबसे बहुमूल्य अंग 'मस्तिष्क' झुलसता है और उसके कोमल कण कठोर हो जाते हैं। प्रमाद, दीर्घसूत्रता और निर्णय करने में असमंजस बने रहने की नई व्यथा उठ खड़ी होती है। जलन, गर्मी और खुश्की की बढ़ोतरी से कपाल में आने वाला प्राण वायु विषैला बनता है और वहाँ धुआँ-सा घुमड़ता रहता है। उसकी स्वच्छ और पारदर्शी परतें धूमिल होकर बुद्धिहीनता उत्पन्न करती हैं—ऐसे व्यक्ति स्मरण शक्ति भी खो बैठते हैं और हर घड़ी असहाय, कातर, असफल जैसे दिखते हैं। उन्हें आशा की किरणें कहीं से आती नहीं दिखतीं, चारों ओर अंधेरा ही प्रतीत होता है।

चिंतित दिखने वाला व्यक्ति प्लेटो की दृष्टि में एक आविष्कारक है। अंतर इतना ही है कि वैज्ञानिक आविष्कारक किसी ठोस आधार को पकड़ते और कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं, जबकि चिंतित व्यक्ति काल्पनिक आशंकाएँ रचता और गढ़ता रहता है। वह अपने लिए एक उलझी हुई दुनिया बनाता है और उसी में ताने-बाने बुनता हुआ अपनी क्षमता खोता गँवाता चला जाता है।

अपने आपको असमर्थ, असहाय, अपंग और अनाथ मानने से ही चिंताग्रस्त मनः-स्थिति बनती है। साहसी व्यक्ति कठिनाइयों को अपने पौरुष के लिए एक चुनौती मानता है और खिलाड़ी लोग जिस तरह साहस और उत्साह के साथ गेंद के साथ गुथ जाते हैं, उसी तरह आत्मविश्वासी अपने पुरुषार्थ के बल पर बड़ी दीखने वाली कठिनाइयों को तुच्छ सिद्ध करते हैं।

संगीत शास्त्री हेडेल को लकवा मार गया। दायाँ अंग बेकार हो गया। केवल बायाँ अंग ही दैनिक कृत्यों में सहायता करता था। पैसा पास में रहा नहीं। चिकित्सा तो दूर, पेट भरने का भी प्रबंध नहीं रहा। क्या किया जाय ? उसे एक बात सूझी। सामूहिक गानों की उन दिनों विद्यालयों में बहुत माँग थी। हैडेल ने कुछ सामूहिक गाने रचे और उनकी स्वर लिपियाँ बनाईं। एक महीने में वह पुस्तक तैयार हो गई। उसे लेकर घिसटता हुआ प्रकाशक के पास गया। पुस्तक छपी और उसकी रायल्टी से वह शेष जीवन अर्थ चिंता से मुक्त होकर बिताने में सफल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो गया। दुर्भाग्य का रोना रोने, भीख माँगने या दीनता प्रकट करने की अपेक्षा हेडेल ने यही उचित समझा कि जो शक्ति शेष है, उसे रचनात्मक काम के लिए प्रयुक्त क्यों न करें? कठिनाई से ग्रस्त व्यक्ति भी यदि धैर्य और संतुलन से काम ले, तो उन्हें कोई न कोई रास्ता अवश्य मिल सकता है।

आत्महत्या करने वाले उतावले लोगों में से बहुतों के सामने इतनी बड़ी कठिनाई नहीं होती, जितनी कि वे भावुकता वश अनुभव करते हैं। इसी अवास्तविक कल्पना में उलझे हुए वे लोग तिल का ताड़ बनाकर अपने प्राण खो बैठते हैं।

न्यूयार्क में एक युवक संगीतकार ने इसलिए आत्महत्या कर ली कि वह अपना प्रिय वायलिन गिरवी से छुड़ाने के लिए आवश्यक कमाई न कर सका। परीक्षा में फेल होने वाले विद्यार्थी, प्रेम प्रणय में असफल होने वाले प्रेमी लोग, परिवार में कलह कटुता आ जाने जैसे प्रसंगों पर कितने ही लोग हत्या या आत्महत्या जैसे उद्धत कार्य कर डालते हैं। यह आवेश की स्थिति है। चिंता भी लगभग ऐसी ही भावुकता है, जो निराशा जैसी मंद आत्महत्या के गर्त में धकेलकर व्यक्ति को अपंग बना देती है।

वर्तमान की चिंता करना और हल खोजने में स्थिर चित्त से तन्मय होना उपयुक्त है। भूतकाल को उधेड़ बुन में खोये रहना बेकार है। ऐसा क्यों हुआ, किसने किया, भूल कहाँ रही जैसे प्रश्नों की उखाड़ पछाड़ करते रहने से क्या लाभ? जो बीत गया सो गया, अब वह लौट नहीं सकता। उसके लिए माथापच्ची करना बेकार है। इसी प्रकार भविष्य में क्या कठिनाई आवेगी, किस संकट में होकर गुजरना पड़ेगा जैसी बातें सोचते हुए समय से पूर्व चिंताएँ समेटना बेकार है। अपने लिए वर्तमान ही पर्याप्त है। उसी को देखा-समझा जाय और जो आज की स्थिति में सर्वोत्तम कदम उठाया जा सकता है, उसी के लिए साहस समेटा जाय। वर्तमान पर केंद्रित रहना सीख लिया जाय, तो चिंता करने के लिए न तो अवसर ही मिलेगा और न आवश्यकता ही प्रतीत होगी।

हमें हर घड़ी व्यस्त रहना चाहिए। जार्ज वर्नाडशा कहते थे, दुखी और चिंतित होने के लिए मनुष्य के पास फालतू वक्त होना चाहिए। जिसके पास करने के लिए ढेरों काम पड़ा है, उसे इतनी फुरसत कहाँ होगी कि बेकार बातें सोचे और चिंता और दुःख में डूबे।

इंग्लैड के प्रधानमंत्री बुढापे में भी 18 घंटे काम करते थे। द्वितीय महायुद्ध में उनके सामने बहुत समस्याएँ थीं और चिंता के कारण भी, पर उन्हें कभी किसी ने उद्विग्न नहीं देखा। हर काम को शांति और एकाग्रता के साथ करते थे। उसी मनः स्थिति के कारण वे अपने देश को जीवन मरण की घड़ियों में से उबारकर पार ले गये।

'अप्रिय को कैसे भूलें', पुस्तक के लेखक जानकूपर पोन्स का कथन है—

चिंता और तनाव से बचने का एक ही उपाय है कि अपने लिए सोचने और करने के लिए कार्यक्रम निर्धारित करें और उसी में उत्साह, प्रसन्नता तथा तन्मयता के साथ जुटे रहें।

ओसा जॉन्स ने कहा है—''यदि मैं निरंतर रचनात्मक विचारों और कार्यों में लगने की पद्धति सीख न पाता, तो दूसरों की तरह मुझे भी चिंता में घुल-घुल कर मरना होता।''

दार्शनिक पैरल्कीज कहा करते थे—छोटे आदमी छोटी बातें सोचते हैं और अपने ओछेपन के कारण निराश और व्यथित रहते हैं। परिष्कृत व्यक्तित्व हमेशा सृजन सोचता है और उन साधनों को अपनाता है, जिनके सहारे कठिनाइयों को पार कर सकना संभव हो सके।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जार्ज क्रुकने लिखा है–"कभी मुझे भी चिंताएँ बहुत सताया करती थीं, पर जब मैंने देखा कि वे काल्पनिक ही नहीं अहितकर और अवांछनीय भी हैं, तो मैंने उन्हें दुत्कार दिया और जितना समय चिंता में लगाता था, उतना कुछ महत्त्वपूर्ण काम करने में लगाने लगा।

सुकरात को जहर का प्याला दिया जाने लगा, तो वे मुसकराते हुए उसे पीने लगे। ऐसे अवसर पर भी उन्हें दुःखी न देखकर उपस्थित लोगों ने इसका कारण पूछा, तो उन्होंने यही कहा **'जिसे बदला नहीं जा सकता उसे शांति के साथ सहन करना चाहिए।'**

कठिनाई की घड़ी में अपेक्षाकृत अधिक साहस और अधिक पुरुषार्थ की जरूरत पड़ती है। इन दोनों महान् अवलंबनों को चिंता की आग में जलाकर स्वयं असहाय बन जाने में कुछ बुद्धिमानी की बात नहीं है।

मानवता

मनुष्य से पूछिये कि वह क्या चाहता है? तो वह आपसे कहेगा कि मैं निरंतर सुख पाना चाहता हूँ। अब अगर आप उसे सुख पाने का और दुःख से बचने का रास्ता बता सकें, तो आप में उसे रुचि होगी, वरना नहीं होगी। जिस आंदोलन का संबंध जनता के जीवन की समस्या के साथ नहीं होता, उसमें जनता को दिलचस्पी नहीं होती। बाप अगर अपने छोटे बेटे से कहे कि 'मुझे कुछ काम है जरा-सी लेई बना दे', तो बेटा कहता है, मैं यह सब कैसे कर सकूँगा? लेई बनाना मुझे नहीं आता, परंतु यदि उस लड़के का दोस्त आकर कहे कि 'चलो पतंग बनायें' तो वह लड़का या तो कहीं से गोंद खोजकर लायेगा या लेई बनाना सीख लेगा। उसे पतंग या कनकौवे में दिलचस्पी है, इसीलिए लेई बनाना सीखने में भी है। मनुष्य को जो चाहिए, उस विषय का ज्ञान आप अगर उसे नहीं देंगे, तो उसे उत्कृष्टता के इंजेक्शन देने होंगे। वह जो चाहता है, उसे सिद्ध करने का उपाय जब आप बतलायेंगे, तभी उसकी बुद्धि को गति मिलेगी। उसकी बुद्धि नये विचार करने में प्रवृत्त होगी। कोई कार्यकर्ता अगर इस परिणाम पर पहुँचे कि वह जो परिवर्तन समाज में करना चाहता है, वह किसी आंदोलन से सिद्ध हो सकता है, तो वह उसकी सफलता के लिए अनंत उपाय सोच सकेगा।

हम चाहते हैं कि इस दुनिया में आदमी, आदमी के साथ जीये। आदमी का नाश न हो। मनुष्य जीये, यह हमारा संकल्प है। वह मरने न पाये, यह हमारा प्रयत्न होगा। हम मनुष्य को मरने नहीं देना चाहते, क्योंकि जो जीव का निर्माण नहीं कर सकता, उसे जीव का नाश करने का कतई हक नहीं है। जो दूसरों में जान नहीं पैद्रा कर सकता, उसे किसी की जान लेने का क्या हक है?

आज इस विषय में किसी का मतभेद नहीं है। सभी कहते हैं कि संसार में कभी लड़ाई नहीं होनी चाहिए। यह कोई नहीं कहता कि हमें मनुष्य की हत्या करनी है। उस कहानी के मेमने को खाने वाले भेड़िये ने भी यह नहीं कहा कि 'मैं तुझे खाना चाहता हूँ।' अनेक सच्चे-झठे कारण बतलाकर उसने यह जतलाने की कोशिश की कि 'मैं क्या करूँ, मेरा कोई उपाय नहीं है, इसलिए तुझे खाता हूँ।' हत्या के लिए किसी न किसी बहाने की या समर्थन की जरूरत होती है। इसलिए आज सभी कहते हैं कि हम मनुष्यों का वध करना नहीं चाहते। तब सबाल यह होता है कि क्या हम मनुष्य को बिना मारे सबाल हल कर सकते हैं? हमें ऐसी प्रक्रिया का शोध करना है। यह हमारी सांस्कृतिक समस्या है। हमें समस्या तो हल करनी है और मनुष्य को बचा लेना है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर विज्ञान का किसी वाद से ताल्लुक नहीं है। हमें किसी वाद से मतलब नहीं है। हम वाद के नाप का आदमी नहीं बनाना चाहते। सब वादों को आदमी के नाप के बनाने की कोशिश करेंगे। कोई आदमी तंग आकर टोपी के नाप का सिर बनाने की कोशिश करे, तो हम उसे क्या कहेंगे ? हमारी बुद्धि और वृत्ति संप्रदाय के नाप की नहीं होनी चाहिए। वाद कहता है, 'चाहे आदमी कुचला जाय, लेकिन वाद की स्थापना होनी ही चाहिए' यही सब धर्मवादियों ने आज तक किया है। कुरानवादी ने कहा, "एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार।" वेदवादी ने कहा, "आगे-आगे चार वेद चलेंगे और पीछे-पीछे सुसज्जित धनुष।" ग्रंथ साहबवादी ने कहा, "दोनों हाथ से ग्रंथ साहब सँभालेंगे, लेकिन कमर में पैनी कृपाण होगी।" बाइबिल वादी बोला, "शरीर पर बाइबल और क्रास धारणा करूँगा, लेकिन कंधे पर बंदूक रखूँगा। गिरजे में प्रार्थना करूँगा, लेकिन धर्म युद्ध के लिए बारूद हमेशा सूखी रखूँगा।" जरा सोचिये, जिसकी शरण ली जाती है, वह बड़ा होता है या शरण लेने वाला बड़ा होता है ? साफ है कि शरणागत छोटा होता है और शरण्य बड़ा होता है। जिसकी शरण ली जाती है, उसकी कीमत बढ़ती है। धर्म अगर तलवार की शरण में गया, तो तलवार का रुतबा बढ़ेगा। थैली की शरण में गया, तो थैली की हैसियत बढ़ेगी।

पुराण में हिरण्याक्ष की कथा में इसका संकेत है। हिरण्याक्ष पृथ्वी को लेकर अनंत शून्य में डूब गया। हिरण्याक्ष से मतलब है 'सोने की आँख वाला'। जिसकी आँख सोने की बन गयी, वह संसार को रसातल में ले जाता है। पुराणों में उसे असुर बतलाया है। असुर कोई अलग जीव योनि नहीं है। देव और असुर मौसेरे भाई हैं। असुरों की कोख से भक्त पैदा हुए और भक्तों की कोख से असुर पैदा हुए। हिरण्याक्ष के उपाख्यान का सार यह है कि हमारा तत्व और हमारा धर्म अगर शास्त्र की शरण में जायेंगे या थैली की शरण में जायेंगे, तो वे रसातल को जायेंगे।

स्वरोदय किसी एक वाद या संप्रदाय का नहीं है, सभी वादों और सभी संप्रदायों का है। आज सभी लोगों को वाद की दृष्टि से विचार करने की आदत हो गयी है। उस आदत को छोड़ना उनके लिए नामुमकिन-सा हो रहा है।

यह निराग्रह, निर्विकार बुद्धि का लक्षण नहीं है। इस तरह की संमोहग्रस्त और भयविह्वल वृत्ति के कारण मनुष्य का ध्यान वास्तविक समस्या से हट जाता है और उसके लिए एक विशिष्ट वाद ही समस्या बन जाती है। मनुष्य उसकी आँख से ओझल हो जाता है। वाद पर उसका सारा ध्यान केंद्रित हो जाता है। इसलिए हमें यह प्रतिज्ञाकर लेनी होगी कि हम किसी वाद का समर्थन या विरोध करना अपना कर्तव्य नहीं समझेंगे। हमें अपनी बुद्धि समस्याओं का हल खोजने में लगानी है, वादों का जबाब देने में नहीं। ऐसी प्रतिज्ञा अगर हम नहीं करेंगे, तो मनुष्य से 'वाद' बड़ा हो जायेगा, मानव समाज से संप्रदाय बड़ा हो जायेगा, देवता से देवधर बड़ा हो जायेगा।

आज मनुष्य की प्रतिष्ठा तीन सत्ताओं ने मिट्टी में मिला दी है। एक तख्त, दूसरी तिजोरी और तीसरी इन दोनों की सहेली—तलवार। शस्त्रवाद प्रायः सत्तावाद और संपत्तिवाद का प्रतिहस्तक बनकर आता है। वह उनका सगा भाई और निरंतर साथी मालूम होता है।

जिसके हाथ में सत्ता होती है, उसका किसी पर विश्राम नहीं होता। सबसे बड़ा सत्ताधीश देवों का राजा इंद्र है। उसकी सत्ता में हजारों छिद्र हैं। इसलिए उसके हजार आँखें हैं। जितने छिद्र होंगे, उतनी ही सावधानी की जरूरत होती है। इंद्र देवों का राजा है और वृत्र असुर था। लेकिन वृत्र ज्यादा दिलेरी से और दिलदारी से लड़ा। उसके सामने इंद्र ओछा साबित हुआ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि इंद्र के लिए परममूल्य सत्ता है। उसको सबकी तरफ से संदेह है। तीनों लोकों में उसका कोई मित्र नहीं। उसने सिंहासन पाने के लिए कठोर तपस्या की। दूसरा कोई तपस्या करने लगता है, तो उसे यह अंदेशा हो जाता है कि कहीं यह मेरा सिंहासन न ले ले। तपस्वियों को तपोभ्रष्ट करना उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है। इसका नाम सत्तावादी राजनीति है। सत्ताधारी किसी का भरोसा नहीं कर सकता। वह अपने बाप, भाई और बेटे से भी डरता है। उसका न तो कोई नातेदार है, न दोस्त है और न आत्मीय ही है। वह दूसरों पर विश्वास करके अन्न भी नहीं खा सकता। यह सत्तावादी राजनीति का स्वरूप है। संसार में आज इसी का दौर है। इसलिए मनुष्य, मनुष्य के निकट नहीं आ सकता। इसे मैं तख्त का या सत्ता का तत्वज्ञान कहता हूँ।

तिजोरी भी मनुष्य को मनुष्य से अलग करती है। यदि आपसे कोई पूछे कि ताला किसने खोजा होगा, तो शायद उस आदमी का नाम आप नहीं बतला सकेंगे। लेकिन विचार करने पर आप इतना अवश्य कह देंगे कि जिसने ताला खोजा, वह चोर जरूर रहा होगा। संग्रह पाप है, संचय चोरी है। जो चीज दूसरे की जरूरत की है, लेकिन इस वक्त मुझे जिसकी जरूरत नहीं है, उसे सँभालने के लिए मैं ताला लगाता हूँ। ताला भी ऐसा खोज़ता हूँ, जिसकी एक ही चाबी हो। चाबी जनेऊ में रखता हूँ और जनेऊ धोती में खोंस लेता हूँ। डर यह होता है कि चाबी कहीं परिवार के किसी आदमी के हाथ न लग जाय। सबसे ज्यादा डर बड़े बेटे से होता है, क्योंकि वह पहला हकदार है। राजा को भी सबसे अधिक डर बड़े बेटे से होता है। चोरी हमेशा संग्रह की कोख में से पैदा होती है। सूम का बेटा चोर होता है। अश्वपति राजा ने अपने राज्य का वर्णन करते हुए बड़े गर्व के साथ कहा कि 'मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, क्योंकि कोई कंजूस नहीं है' जब तक संचय और संग्रह रहेगा, तब तक चोरी और भीख भी रहेगी। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो बात तिजोरी के लिए लागू है, वही तलवार के लिए भी लागू है। जिसके मन में पहले तलवार आयी, वह कायर जरूर रहा होगा। तिजोरी लोभ की संतान है और तलवार का जन्म भय से हुआ है। जो दूसरों से बचकर रहना चाहता है अर्थात् दूसरों से डरता है, वही किलेबंदी और हथियार बंदी करता है। आक्रमण सबसे कुशल संरक्षण समझा जाता है। इसलिए जो दूसरों से बचना चाहता है, वह हमेशा दूसरों पर वार करने की ताक में रहता है। क्रूरता और भीरुता, निर्ममता और कायरता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सारे पुराणों में राक्षसों को महान् तपस्वी दिखलाया है। लेकिन प्रखर तपस्या के बाद भी हर एक राक्षस ने भगवान से वरदान क्या माँगा कि मुझे कोई मारने न पाये। इसका मतलब यह हुआ कि उसे सबकी तरफ से आशंका है। वह समझता है कि सब कोई उसे मारने की फिक्र में हैं। जो सबको अपना दुश्मन मानता है, वह खुद सबका दुश्मन होता है।

कोई आपसे आकर कहे कि मेरे बाग में बेले के पौधे लहरा रहे हैं, लेकिन सुगंध कम हो रही है, तो क्या उसकी बात आपको अटपटी नहीं लगेगी ? आप कहेंगे, "तो तुम्हारे फूल असली नहीं होंगे, नकली होंगे। नहीं तो यह कैसे मुमकिन है कि फूलों की संख्या बढ़ती चली जा रही हो और उनकी खुशबू कम होती जाय।" फिर भी जब कोई कहता है कि आदमी बढ़ रहे हैं और आदमियत घट रही है, हम बिना उज्र मान लेते हैं। इसका कारण यह है कि आदमी को आदमी की कद्र नहीं है। आदमी से कहीं अधिक कद्र सत्ता और संपत्ति की है।

यह भी सच है कि आज आदमी एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं। दुनिया सट रही है। अगर हम दो आदमियों को लाल-लाल आँखें किये घूँसे दिखाकर एक-दूसरे की तरफ बढ़ते हुए देखें, तो हम क्या करते हैं ? उन्हें नजदीक आने से रोकते हैं। हम जानते हैं कि ये एक-दूसरे के नजदीक आयेंगे, तो इनकी भिड़ंत होगी। जब तक आदमी, आदमी के नजदीक नहीं आता, तब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक लड़ाई भी नहीं हो सकती। इस विश्व का निर्माण करने वाला भगवान अद्वितीय कलाकार है। उसने ऐसी अनूठी रचना की कि बगैर सान्निध्य के झगड़ा भी नहीं हो सकता। किसी की भाषा हमारी समझ में न आये, तो उसकी गाली भी हम पर असर नहीं करतीं। इसलिए जब हम दो आदमियों का रुख लड़ाई-झगड़े का देखते हैं, तो उन्हें एक-दूसरे के पास नहीं आने देते, बीच-बचाव करने लगते हैं।

यह सच है कि विज्ञान मनुष्यों को शरीर से एक-दूसरों के नजदीक लाया है। लेकिन वह उनकी तबीयत नहीं बदल सका। मन में बैर होने पर अगर मनुष्य नजदीक आता है, तो झगड़े का खतरा बढ़ता है।

मनुष्य अगर मनुष्य को नहीं चाहेगा, तो मानवता का विकास नहीं होगा। आप रेल में बैठे हों एक ही आदमी के सोने के लायक जगह हो, इतने में आपका कोई प्राणप्रिय मित्र आ जाये, तो उसका आना आपको अखरता है। क्योंकि वह आपके आराम में बाधा पहुँचाता है। यह एक तरह की मनोवृति है। उसे हकदार की मनोवृत्ति कहते हैं। यह अधिकार का तत्व कहलाता है। इससे बिल्कुल विपरीत मनोवृत्ति का परिचय आप अपने घर पर देते हैं। वहाँ अगर कुर्सियाँ कम हों और आदमी ज्यादा हों, तो पहले आप दूसरे को जगह देते हैं और आप खुद खड़े रह जाते हैं। क्योंकि आप यजमान हैं, वे अतिथि हैं। वे मेहमान हैं और आप मेजवान है। सभ्यता का यह तकाजा है कि आप उनकी खातिरदारी करें, उनकी पहुनई करें। यह कर्तव्य की मनोवृति है। मनुष्यता का विकास अधिकार के दर्शन से नही, कर्तव्य के दर्शन से होता है। यदि किसी सभ्य मनुष्य को यह निश्चय हो जाय कि दुनिया में भीड़ बेशुमार हो गयी है, तो शराफत यह बतलाती है कि सबसे पहले उसे जगह खाली कर देनी चाहिए।

भगवान ने अर्जुन को जब दिव्य चक्षु दिये, तब यह विश्वरूप का दर्शन कर सका क्रांति के लिए भी एक नयी आँख की जरूरत होती। आँख, नाक, कान तो सबके होते हैं। लेकिन हर एक के देखने के तरीके में फर्क होता है। श्वास तो सभी लेते है, परंतु उसमें भी फर्क होता है–

मुख श्रवण दृग नासिका, सबही के इक ठौर।
कहिबौ सुनिबौ देखिबौ, चतुरन के कुछ और।।

सेवा भाव

संसार के प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई वस्तु रहती है, जिसे देखकर वह दूसरे का उपकार कर सकता है। अन्न, वस्त्र, धन, विधा आदि जिसके पास जो वस्तु अधिक है वह अभावग्रस्त व्यक्ति को कृपापूर्वक देकर उसकी कठिनाइयाँ, कष्टों और दुःखों में सहयोग कर सकता है। अपने पास जो कुछ है वह दूसरे की सुख-सुविधा में बिना किसी विनिमय भावना से लगा देना ही उदारता है। मनुष्य के बड़ा होने, उत्कृष्ट होने का यही प्रमाण है।

'जो कुछ है सो मेरे लिए' यह पशु-प्रवृत्ति है। जानवर अपनी घास किसी को खाते देख लें, तो मरने मारने पर उतारू हो जायँ। मधुमक्खी बहुत शहद इकट्ठा कर लेती है, पर माँगने पर मधुमक्खी उसका एक कण भी नहीं दे सकती। कुत्ते को सबसे बड़ा डर अपने सजातियों से ही रहता है। कितनी ही परिश्रम की कमाई हो, हर छोटे कुत्ते का टुकड़ा बड़े वाला दबोच कर छीन लेता है, यह पशु प्रवृत्तियाँ हैं। 'अपना दो मत, दूसरों का छीन लो' यह पाशविक वृत्ति जहाँ भी रहेगी, वहीं कलह कलेश कटुता का नारकीय वातावरण बना रहेगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्य की स्थिति इससे भिन्न है। उसने बहुत कुछ पाया है, पर तब, जब उसने बहुत कुछ दिया है। आज हमें जितनी सुख-सुविधायें उपलब्ध हैं वह सब उदारतापूर्वक आदान-प्रदान के कारण ही विकसित हुई हैं। गुरु को अन्न वस्त्र देते हैं, बदले में वे विद्या देते हैं। इसमें गुरु शिष्य दोनों की उदारता है। जहाँ ऐसी उदारता है, वहाँ संतोष, स्नेह, आत्मीयता का स्वर्गीय सुख भी है। पिता कमाता है उस कमाई के शतांश से भी कम का उपयोग अपने शरीर के हित में करता है, शेष अपनी धर्म पत्नी, बच्ची, बच्चों, भाइयों, भतीजों को दे डालता है। जहाँ यह उदारता है, वहाँ परस्पर प्रेम होता है, दया होती है, विनम्रता होती है, सौजन्यता, सफलता और स्मृद्धियाँ भी होती हैं।

मनुष्य देने के स्वभाव से ही बड़ा है। यह तो कोई कह ही नहीं सकता कि मेरे पास देने को कुछ नहीं है। जो धन, विद्या, अन्न आदि नहीं दे सकते, वे प्रेम, स्नेह, दया, परोपकार, सन्मार्ग की प्रेरणा, बुराइयों से बचाने के सर्वोत्कृष्ट दान देकर अपनी उदारता व्यक्त कर सकते हैं। इससे समाज का जो हित होगा वह किसी उदारतापूर्वक दी गई भौतिक वस्तु से अधिक मूल्यवान् होगा।

काम कितना ही बड़ा हो, यदि वह केवल अपने अभिमान की रक्षा अथवा दिखावे के लिए ही किया जा रहा है, उसमें उदारता का कोई स्थान नहीं, तो उससे कोई लाभ नहीं। इससे आत्मसंतोष नहीं मिल सकता, जबकि उदारतापूर्वक दिया हुआ छोटा बड़ा, जो कुछ भी हो फलदायी होता है और उससे बड़ा आत्मसुख मिलता है। काम की बड़ाई उसके आकार पर नहीं व्यक्ति की विशाल हृदयता पर है। उदारता जब भावनाओं से संयुक्त होती है, तो उसमें दिव्यता के दर्शन होते हैं। वह बुराई करने वालों की भी भलाई करता है। निंदा करने वालों में भी गुण देखता है। घृणा, द्वेष और हिंसा न करते हुए दया, करुणा, स्नेह और सम्मान देता हुआ अपनी दैवी संपदा का विकास करता है। समाज में संपन्नताओं का विकास इसी तरह हुआ है और व्यक्ति में उत्कृष्टता व परिवर्द्धन इसी तरह होता है।

अनुदार व्यक्तियों को उनका आसुरी अंतःकरण ही असंतुष्ट रखता है जब कि उदार मति वाले मानवता के दिव्यदर्शन का आनंद प्राप्त करते हैं। जिसमें उदारता और हृदय की विशालता का पूर्ण विकास हो गया है वह अपने लिए किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखता वरन् सब पदार्थों में और सबके ऊपर परमात्मा की दया और करुणा देखने को उत्कंठित रहता है। यह सरलता, सज्जनता और मनोवांछित धर्म अपने आप में इतना मधुर और बड़ा सुखकर है कि उसकी क्षणिक अनुभूति जिसे हो जाती है, वह बार-बार उसी ओर भागता है। अपना सर्वस्व विश्वात्मा के उद्धार और विकास में लगा देने के लिए तत्पर होता है। वह किसी व्यक्ति से ईर्ष्या नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि सब चीजें परमात्मा से ओत-प्रोत हैं। वह अच्छे कार्यों का कर्ता व्यक्ति को नहीं परमात्मा को मानता है, जहाँ से वे मूलतः विकसित होते हैं। इससे वह द्वंद्व रहित निर्मल और शांत अंतःकरण की आनंद विभूति प्राप्त करता है। जिन्हें सच्ची उदारता का ज्ञान हो गया, वे अनुभव करते हैं कि सब पार्थिव वस्तुएँ असार हैं। आध्यात्मिकता इसीलिए हमें उदारता का सबक पहले सिखाती है।

दी हुई वस्तु का मोल माँगना पड़ता है, पर जो वस्तु बिना किसी प्राप्ति भावना से केवल औरों के कल्याणार्थ दे दी जाती है। उसका मूल्य माँगना नहीं पड़ता। इसे चाहे ईश्वर विश्वास कहें अथवा विश्व की अंतर्व्यवस्था। दान करने वाला, उदारतापूर्वक अपनी शक्तियों को परोपकार में खर्चने वाला उससे भी अधिक पा लेता है, यदि वह स्थूल रूप से न भी दिखाई दे, तो भी सामाजिक जीवन में जो सच्चा आदर सम्मान, विश्वास, सहानुभूति और आत्मीयता उसे मिलती है, वह किसी प्रत्यक्ष लाभ से कम नहीं होती, शर्त केवल इतनी ही है कि अनुचित कामना पूर्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के रूप में उदारता का प्रदर्शन न किया गया हो। जब प्रदर्शन की उदारता तुरंत और यथेष्ट मूल्य माँगती है, वह उदारता नहीं रह जाती व्यवसाय बन जाती है और उसकी प्रतिष्ठा जाती रहती है।

फूल सब की प्रियता का पात्र है। सब उसे स्नेह करते हैं क्योंकि वह अपनी सुवास का कोई मूल्य नहीं माँगता, पर मधुमक्खी से उतना मीठा मधु पाकर भी उसे कोई नहीं सराहता क्योंकि वह उदारतापूर्वक नहीं देती। देने की भावना अकाम हो, तो वह कर्ता को अपने आप ही विकसित होने योग्य परिस्थितियाँ प्रदान कर देती है।

उदारता का सच्चा स्वरूप वह है, जो हमें अपने कुटुंबों में देखने को मिलता है। परिश्रम कुछ थोड़े से लोग करते हैं, पर उसका लाभ बहुत से लोग उठाते हैं। प्रत्यक्ष में इसमें परिश्रम कर्ता को हानि दिखाई देती है, पर अपने परिजनों की श्रद्धा, आत्मीयता, प्रेम और स्नेह का उसे जो भावनात्मक प्रतिफल मिलता है, वह भौतिक भोग से कहीं अधिक सुखदायी होता है। मनुष्य इसीलिए तो जीता है कि लोग उसे अधिक से अधिक प्रेम करें। अच्छा आदमी कहें, प्रशंसा करें और जब कभी आवश्यकता पड़े, तो सच्ची सहानुभूति व्यक्त करें।

सामाजिक जीवन में भी ऐसी चाह स्वाभाविक है। वह आदान-प्रदान के ही नियम से मिलती है। समाज और संसार भी एक प्रकार का कुटुंब ही है। उसमें अधिक सदस्य हैं इसलिए वहाँ आत्मविकास की परिस्थितियाँ भी बहुत अधिक होतीं हैं। समाज में जो भी विद्या, बुद्धि, धन साधनों की दृष्टि से गये गुजरे हैं, उनकी सहायता करके हम अधिक प्रेम और आत्मीयता का सुख अर्जित कर सकते हैं।

हम भारतीयों की विशिष्टता इसी बात में रही है कि हमने सारे संसार को एक कुटुंब माना है और समान रूप से जनसेवा और सहयोग के कर्तव्य का पालन बिना किसी मूल्य प्राप्ति की भावना से किया है इसीलिए गई गुजरी परिस्थितियों में भी हमारी उत्कृष्टता बनी रही है। हमारे पुरुखों का स्वभाव ही था—दीनदुखियों और अभावग्रस्तों को कुछ देकर उन्हें ऊँचे उठाना। इन परिस्थितियों ने ही इस देश को विशालता के एक सूत्र में बाँधा है। अब तो उसके लिए परिस्थितियाँ भी और अधिक अनुकूल हैं। सही अर्थों में यह युग सेवा और उदारता का युग है। इस युग में मनुष्य को धन साधनों का दान देने की आवश्यकता नहीं, लोगों को प्रेम और आत्मीयता का स्नेह और सौजन्यता का दान देने की जरूरत है। ताकि अविकसित मानवता का क्रम पुनः स्वर्गीय परिस्थितियों की ओर मुड़ चलने और पीड़ित लोगों को भी आत्मविकास का समुचित वातावरण मिल सके।

यह उदारता मनुष्य में विकसित हो, तो इस युग की बुराइयों का अंत हो और उत्कृष्टता का विकास हमें ऊपर उठने की चाह है। हम मानवीय उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहते हैं, तो हमें सबसे उदार बनना चाहिए, अपनी साधन संपत्ति का एक अंश समाज को भी देने के लिए तत्पर होना चाहिए। ऊर्जा को अवसर मिले तो वह चमक के रूप में परणित हो सकती है। गर्मी क्रिया है, चमक उसकी प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया क्रिया के बिना नहीं हो सकती। जहाँ ऊर्जा नहीं है वहाँ चमक की आशा नहीं की जा सकती। यह हो सकता है पदार्थ की अपनी निज की ऊर्जा न हो, वह किसी अन्य से ग्रहण की गई हो, पर चमक संभव तभी हो सकेगी जब अपनी या पराई कमाई हुई या माँगे की ऊर्जा का अस्तित्व मौजूद हो।

जीवन में ऊर्जा का स्रोत है, परिश्रम पुरुषार्थ और साहस। साहसी व्यक्ति चमकते हैं, कीर्तिवान् होते हैं। यशस्वी और तेजस्वी कहलाने का अवसर केवल उन्हीं को मिलता है, जो मनोयोग, अभिरुचि एवं उत्तरदायित्व का समन्वय करके अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं। अधूरे मन से बेगार टालने की तरह उपेक्षापूर्वक यदि कुछ किया जाय, तो उसमें चिंतन की ऊर्जा उत्पन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होगी ही नहीं और जिस प्रकार बिना आग के भोजन नहीं पकता, उसी प्रकार प्रस्तुत कार्य उस सुंदरता एवं सफलता के साथ न हो सकेगा, जिस प्रकार कि हो सकता था। सूर्य की किरणें आतिशी शीशे द्वारा केंद्रित की जायँ, तो देखते-देखते आग प्रकट हो जाती है। मनोयोगपूर्वक किये गये कार्यों में भी ऐसी ही ऊर्जा होती है फलस्वरूप उनकी सफलता ज्योतिर्मय होकर चमकती है। भाग्य से, संयोगवश अथवा अनैतिक उपायों द्वारा किसी को कम श्रम, कम समय और कम मनोयोग में भी कुछ बड़ी सफलता मिल सकती है, पर उन्हें मनस्वी की भूमिका संपादित कर सकने का श्रेय सौभाग्य तो नहीं मिलता।

शरीर एक मणि मुक्तकों की खदान है, जिसे श्रम की कुदाली से खोदा जाता है। कहा जाता है कि जो "खटखटाता है उसके लिए खोला जाता है" पर सुनिश्चित यह है कि जो खोदता है सो पाता है। भूमि को खोदे बिना कुएँ का शीतल जल कौन पीता है ? भूमि को जोते बिना फसल किसने पाई है ? परिश्रमी और पुरुषार्थी ही संपत्तियाँ और विभूतियाँ उपार्जित करते हैं। विविध सफलताएँ उन्हीं के पल्ले बँधती हैं। यही ऊर्जा है, इसी को तप या तेजस् कहते हैं, शरीर एवं मन की तेजस्विता निखारने के लिए ही मनस्वी लोग साहसपूर्वक आगे बढ़ते हैं और तपस्वी की भूमिका का निर्वाह करते हैं।

भौतिक जगत् में भी यही नियम काम करता है। संसार के हर पदार्थ में न्यूनाधिक मात्रा में ऊर्जा मौजूद है, उसे यदि उपयुक्त अवसर मिले, तो यह सुनिश्चित है कि वह चमकीली हो सकती है और न केवल अपने अस्तित्व को आकर्षक बना सकती है वरन् दूसरों को भी उस चमक का लाभ दे सकती है।

ऊर्जा का प्रकाश रूप में बहुत बार रूपांतर होता रहता है और हमें जो चमक दीख पड़ती है, उसमें ऊर्जा रूपी फुलझड़ी का जलना ही प्रधान कारण होता है। पदार्थ किसी विशेष ऊर्जा को अपने भीतर सोखे रहते हैं। उस अवशोषण से प्रभावित परमाणु उत्तेजित होते हैं और उस सोखी हुई ऊर्जा को बाहर फेंककर अपना स्वाभाविक स्थान ग्रहण करना चाहते हैं। इस संघर्ष से वह अवशोषित ऊर्जा जब वापस जाने लगती है, तो वह चमक के रूप में दिखाई देती है। यह आवश्यक नहीं कि वह सारी ऊर्जा ही वापस लौट जाय, यह भी हो सकता है कि कुछ अंश पदार्थ में ही विद्यमान रहे और कुछ वापस जाय। ऐसी दशा में जितना अंश वापस जायेगा उतना ही चमकेगा।

किस पदार्थ की कितनी ऊर्जा, कब, कैसे प्रकाश रूप में परणित होती है, यह पदार्थ की अपनी परिस्थिति और संरचना पर निर्भर है। जिस पदार्थ के कण आलसी और संग्राही होने से बाहरी प्रभाव से प्रभावित न होंगे, वे न उत्तेजित होंगे और न चमकेंगे। ऐसे मंदमति पदार्थों की वजह से ही इस संसार में अंधेरा कायम है। यदि सब पदार्थों में चैतन्यता और ऊष्मा के अवशोषण की शक्ति और उससे प्रभावित होने की क्षमता होती, तो दुनिया का हर पदार्थ चमक रहा होता। फिर रात्रि में भी ऐसा अंधेरा न होता जैसा अब होता है।

चमक पदार्थ का स्वाभाविक गुण नहीं है। अतिरिक्त ऊर्जा पराबेंगनी न्यूकलिक विकरणों से विद्युत् रासायनिक क्रियाओं से अथवा घर्षण जैसे माध्यमों को उपलब्ध होती है। इन संवेदनशील पदार्थों में एक ऊर्जा शोषक 'केंद्र' होता है। उन केंद्रों को यदि हटा दिया जाय, तो फिर जिनमें चमकने का गुण है वे उसे खो बैठेगें। कुछ पदार्थों में एक विशेष गुण होता है कि वे एक बार ऊर्जा प्रभाव ग्रहण कर लेने के बाद पीछे भी बहुत समय तक चमकते रहते हैं। इन उत्तर दीप्ति वाले पदार्थों को 'फॉस्फर' कहते हैं। इस फॉस्फार प्रतिभा को अधिक स्थाई बनाने के लिए वैज्ञानिक क्षेत्र में विशेष प्रयास चल रहे। यो बल्बों का विकसित स्वरूप 'ट्यूब लाइट' से अधिक और सुहावना प्रकाश इस फॉस्फर पद्धति की ही एक उपलब्धि है। साधारण बल्ब तो ताप क्रिया के आधार पर प्रकाशित होते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चमकने के अवसर संसार में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। हर परिस्थिति में मनुष्य को ऊँचा उठने और आगे बढ़ने की संभावना विद्यमान है। आवश्यकता अपनी ग्रहण कर सकने वाली क्षमता की है। ग्रहण करने का उत्साह हो, तो अपने आस-पास में ही पर्याप्त मात्रा में सहायक साधन मिल सकते हैं। पर यदि भीतर उदासीनता, अन्यमनस्कता एवं उपेक्षा हो तो बाहर कुछ भी क्यों न हो वह सब कुछ बंद दरवाजे से टकराकर वापस लौट जायेगा। पदार्थ में यही होता रहता है। ऊर्जा हर पदार्थ में मौजूद है, पर वह प्रतिक्रिया का अवशोषण न कर सकने की क्षमता में निहित होने के कारण अंधेरी स्थिति में पड़ा रहता है और अपने अस्तित्व को चमकदार बनाने के लाभ से वंचित ही रह जाता है।

जिनमें अपनी निज की क्षमता है वह सूर्य की सप्तरंगी असंख्य धाराओं वाली किरणों में से अपने स्वर के अनुकूल सामग्री आकर्षित कर लेते हैं और उससे लाभान्वित होते हैं। चुंबक में अपनी ओर खींचने की शक्ति होती है उसी से आकर्षित होकर लौह कण खिंचते चले आते हैं। मानवी सत्ता में ऊर्जा की पर्याप्त मात्रा भरी पड़ी है। आज का तुच्छ समझा जाने वाला व्यक्ति यदि अपनी अवशोषण क्षमता बढ़ाकर संग्राहक बन जाय, तो फिर उसे वे साधन सहज ही पर्याप्त मात्रा में मिल जायेंगे, जो कल उसे सहज ही प्रकाशवान् बना सकते हैं। यह आकर्षक चुंबकत्व उत्पन्न करना ही जीवन साधना का प्रधान क्रिया कृत्य है।

संदीप्ति का एक उदाहरण है 'टिनोपाल'। साधारण धुले कपड़ों में कुछ पीलापन रहता है। इसका कारण यह है कि वह प्रकाश की नीली जामुनी रंग की किरणों को पी जाता है और पीली किरणें बाहर छोड़ता है। टिनोपाल के रसायन में यह विशेषता है कि जहाँ वह प्रयुक्त होता है, वहाँ सूर्य की अल्ट्रा वायलेट किरणों का अवशोषण होता है और कपड़ों को नीले जामुनी रंग में बदल देता है। इस प्रकार धुले कपड़ों में नीली झलक दिखाई पड़ती है और वे झकझक उजले दिखाई पड़ते हैं।

ऊर्जा का प्रकाश रूप में परिणत करने की विशेषता कतिपय पदार्थों में ही नहीं होती वरन् वह जीवधारियों में भी पाई जाती है। जुगनू, फुंगी, मधुरिका और कितने ही जीव जंतु अपने शरीरगत एंजाइम और ऑक्सीजन की प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा को प्रकाश में बदलते रहते हैं, फलतः वे चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं।

मादा जुगनू जब नर को अपने पास बुलाना चाहती है, तो उसकी यौन उत्तेजना चमक के रूप में परिणत होती है और वह टिम-टिम चमकती है उसके भीतर उस समय रासायनिक लूसीफेरिन एंजाइम और ए. टी. पी. नामक योगिक क्रियाशील होते हैं और उनकी हलचलों से उत्पन्न ऊर्जा प्रकाश बनकर बाहर आती है।

दबाव एवं आघात से उत्पन्न ऊर्जा को पदार्थ पी जाते हैं। अणु विस्फोट का उस क्षेत्र के पदार्थों द्वारा ऊर्जा शोषण कर लिया जाता है। इसकी परख कर यह जाना जा सकता है कि उन्हें कितना दबाव या आघात सहना पड़ा है, इस आधार पर विस्फोट की शक्ति का मूल्यांकन कर लिया जाता है।

दबाव एवं आघात इस संसार में रहेंगे। विखरेपन को केंद्रित करने की दृष्टि से उनकी उपयोगिता एवं आवश्यकता भी है। प्रतिकूलता और अभाव ग्रस्तता हर किसी को खलती है। कठिनाई का स्वागत कौन करता है ? असफलता एवं अवरोधों को कौन चाहता है ? फिर भी वे अनिवार्य रूप से आते हैं, क्योंकि ढीला, पोला और असावधान मनुष्य कभी इस स्थिति में नहीं होता कि वह प्रकृति प्रदत्त अनुदानों को आकर्षित करके अपने भीतर धारण कर सके। आघात और दबाव इच्छा न होते हुए भी आते हैं। डरने या बचने पर भी वे आ ही धमकते हैं। उनसे टकराने के लिए आवश्यक साहस इकट्ठा किये बिना और कोई मार्ग नहीं। अपनी ऊर्जा को चमकाने के लिए व्यक्तित्व को निखारने के लिए यह अरुचिकर होते हुये भी आव्रश्यक तो है ही। प्राणायाम ऊर्जा ग्रहण करने की सरलतम क्रिया है इसीलिए अष्टांगयोग के चतुर्थांग के रूप में प्राणायाम अर्थात् स्वर साधना को महत्व दिया जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

3 तत्व एवं जगद् उत्पत्ति

देव देव महादेव कृपां कृत्वा ममोपरि।
सर्व सिद्धि करं ज्ञानं कथयस्व मम प्रभो।।

सर्वोदय शास्त्र के अनुसार, पार्वती जी ने शिव जी से प्रार्थना की कि प्रभो मेरे ऊपर कृपा करके सर्व सिद्धिदायक ज्ञान को कहिये, और प्रश्न किया—

कथं ब्रह्माण्ड मुत्पन्नं कथं वा परिवर्तते।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्ड निर्णयम्।।

यह ब्रह्मांड कैसे उत्पन्न हुआ और किस प्रकार इसमें परिवर्तन होते हैं और अंत में किस प्रकार इसका विलय होता है ?

तत्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्वेन परिवर्तते।
तत्वे विलीयते देवि तत्वाद्ब्रह्माण्ड निर्णयः।।

इस ब्रह्मांड की उत्पति तत्वों से हुई है और तत्वों से ही इसमें परिवर्तन हुआ करते हैं और उन्हीं में यह विलीन हो जाता है। यही ब्रह्मांड की उत्पत्ति का सिद्धांत है।

पार्वती जी स्वयं कम ज्ञानी नहीं हैं। वे तत्वों के बारे में कुछ विस्तार से जानने के लिए पुनः कहती हैं—

तत्वमेव परं मूलं निश्चितं तत्ववादिभिः।
तत्व स्वरूपम् किम देव ! तत्व मेव प्रकाशय।।

हे देव ! ज्ञानियों ने तत्व को ब्रह्यांड का परम मूल कहा है, आप मुझे उनके स्वरूपादि के बारे में स्पष्ट करें।

आगे शिव जी स्पष्ट करते हैं—

निरंजनो निराकार एको देवो महेश्वरः।
तस्मादाकाशमुत्पन्न माका शद्वायु सम्भवः।।

निरजंन निराकार एक 'महेश्वर' है। उसमें से आकाश की उत्पत्ति हुई और आकाश से वायु संभव हुई। आगे वे बोले—

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वी समुद्भवः।
एतानि पंच तत्वानि विस्तीर्णानि च पंचधा।।

वायु से तेज अर्थात अग्नि की उत्पत्ति हुई और अग्नि से जल (आप) और जल से पृथ्वी का उद्भव हुआ। इस प्रकार यह पाँच तत्व विस्तीर्ण होकर पाँच भागों में फैले हैं। आगे उन्होंने कहा—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ताभ्यां ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्तते।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः।।

इन्हीं से ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई, इन्हीं के कारण ब्रह्मांड में परिवर्तन (स्थिति और विकास) होता है और इन्हीं के कारण उसका विलय होता है, जो विनर्गति के द्वारा इन्हीं में रमण रहता है।

दर्शनशास्त्र कहता है—एक समय था जब यह समस्त दृश्यमान जगत् अपने साक्षी चैतन्य आत्मा के साथ अचेतावस्था में सोया हुआ पड़ा था वह ब्रह्म की रात्रि थी। सवेरा हुआ ब्रह्म ने होश सँभाला। गहरी निद्रा में सोये हुए मनुष्य की जब आँख खुलती है तब सबसे पहले उसे थोड़ा-थोड़ा अपना ज्ञान होता है, अधखुली आँखों से वह यह देखने लगता है कि मैं हूँ और मैंने खूब आनंद की निद्रा ली, इसी प्रकार ब्रह्म को चेतनावस्था आई, उसको अपने अस्तित्व का थोड़ा-सा बोध हुआ, इस अवस्था का नाम महतत्व है।

इस समय ब्रह्म (आत्मा) अकेला ही था, जिस प्रकार सोने वाले मनुष्य की मन-बुद्धि और इंद्रियों की सारी शक्तियाँ निद्रा आते ही सिमटकर उसके अंदर समा जाती हैं, इसी प्रकार महाप्रलय रूपी अहोरात्रि में ब्रह्म की संपूर्ण दिव्यशक्तियाँ उसी के भीतर लय हो गयी थीं। यह उस समय महाप्रलय की अवस्था थी।

सुषुप्ति निद्रा से जगने के समय जैसा जीवों को एक प्रकार का आनंद आया करता है उसी प्रकार ब्रह्म भी उस त्रिगुणातीत अवस्था में कारण, ज्ञान और शुद्ध अहंकार के सहारे आनंद अनुभव कर रहा था। यह ज़गत् की कारण अवस्था 'सत् लोक वा आनंदमय कोश" कहलाती है।

निर्मल निरीह शुद्ध और मुक्त चैतन्य ज्योति पर आनंद का गिलाफ चढ़ गया। सारे जीव भी सचेत हो आनंदमयी सुरा पान करने लगे और उसकी मस्ती में झूमने लगे। ब्रह्मा की उनीदावस्था खत्म हुई, उसकी चैतन्यता बढ़ी, उसके अंदर शुद्ध ज्ञान का विकास होने लगा, इस प्रकार एक ज्ञान का गिलाफ ऊपर और आ गया, ये ही 'विज्ञानमय कोश' कहलाया। अपने स्वभावानुकूल उसने विचारा कि **'यथा पुर्वम कल्पयेत'** कुछ कार्य करना चाहिए। उसने अपनी सोई हुई शक्तियों को एक धक्का दिया और वह दो धार होकर उसके अंदर से फूट निकलीं यह महाशक्तिशालिनी दोनों धारायें बाहर आकर अपना-अपना कार्य करने लगीं। प्राण और अपान की शक्ति की तरह एक धारा बाहर को फैलाव करना चाहती थी और दूसरी अंदर को समेटना चाहती थी। ब्रह्मांड के छिन्न अथवा बिखरे हुए परमाणुओं के ऊपर इन दोनों शक्तियों का प्रयोग आरंभ हुआ। एक फैला रही थी और दूसरी समेट रही थी।

यह ब्रह्म का पहला अवतार हुआ इसी का नाम मच्छावतार है। यहाँ पुरुष और प्रकृति का भोग होता है। चैतन्य अव्यक्त आत्मा अपने बल से इन दोनों धाराओं के द्वारा प्रकृति के परमाणुओं को चलायमान करता रहता है। एक धारा बाहर फेंकती है और दूसरी भीतर को खींचती हैं। इस खींचातानी के कारण ब्रह्मांडीय वस्तुओं के परमाणु गोलाकार बन घूमने लगते हैं। एक-दूसरे से टकराने के कारण उनमें अग्नि उत्पन्न हो जाती है और वह बड़े वेग से घूमते हुए जलती हुई अग्नि की भाँति गर्मी और बहुत अधिक प्रकाश अपने अंदर से फेंकने लगते हैं। इसी का नाम हिरण्यगर्भ अवस्था है। यह सब कारण सृष्टि में होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संभोग के पश्चात् जिस प्रकार तीन मास तक माता के उदर में गर्भ गुप्त रहता है। उसी प्रकार ब्रह्म के तीन मास तक अप्रगट रूप से जगद्जननी महामाया उसे धारण करके अपने समस्त कार्य बंद कर देती है। यह ब्रह्म की द्वितीयावस्था कच्छपावतार कहलाती है। इस समय में प्राकृतिक समस्त पदार्थों के बीज परिपक्व किये जाते हैं और उस अंडे (गोले) की ज्वाला बुझाई जाती है।

ब्रह्म के चौथे महीने में हिरण्यगर्भ की कारण और गुप्त सृष्टि सूक्ष्म रूप धारणकर अपना परिचय देती है, परंतु अभी उसके अंदर ही बिहार करती है। यह ब्रह्म की तृतीयावस्था ही वाराह अवतार है। तीन मास से जो वस्तुएँ गुप्त और छिपी हुई थीं अब फिर थोड़ी-थोड़ी अनुभव में आने लगती हैं और भविष्य के कार्यों का पता देती हैं। यही बाराह भगवान का पृथ्वी लाना है। अज्ञान रूपी हिरण्याक्ष दैत्य को मारना और अंधकार से प्रकाश में लाना, बस इतनी ही लीला इस समय की है। कारण और सूक्ष्म सृष्टि का कार्य ब्रह्मा के नौ मास तक रहता है। उसके पश्चात् समस्त लीलायें प्रकट होकर दर्शन देने लगती हैं। यहाँ से स्थूल सृष्टि का आरंभ होता है। गोला फटता है और एक के अनेक रूप धारण कर लेता है। जिस प्रकार कई जानवरों के एक ही अंडे से अनेक बच्चे निकल पड़ते हैं। उसी प्रकार यह हिरण्यमय गोला फ़टा और उसमें से अनेक प्रकार के जीव जंतु, मनुष्य, पशु पक्षी, जलचर, थलचर, पृथ्वी, चाँद, सितारे इत्यादि लोक-लोकांतर निकलकर दृष्टिगोचर होने लगे और ऊपर कथन की हुई पोजिटिव और निगेटिव शक्तियों के सहारे चक्कर काटने लगे। यह ब्रह्म की चतुर्थ अवस्था नृसिंह अवतार कहलाती है। इस प्रकार सृष्टि सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल बन गई। आगे वेद कहता है—

पुरुष एक था, उस समय वह अक्षर ब्रह्म था। उसने अपने अंदर से अपनी शक्ति निकाली वह महामया रूप से जगद् जननी 'उमा' बनी। अपने स्वभावानुकूल पुरुष में इच्छा आई कि मैं एक से अनेक बनूँ। प्रकृति के संभोग से इसका वह उद्योग करने लगा। इच्छा रूपी बीज को लेकर वह गर्भ धारण करने लगा। इच्छा रूपी बीज को लेकर उसने गर्भ धारण किया। कुछ दिन यह गर्भ गुप्त रहा फिर धीरे-धीरे प्रकट होने लगा। यह ब्रह्म का समष्टि और अव्यक्त रूप है, इसी को हिरण्यगर्भ कहते हैं। माता के गर्भ से संतान बाहर निकलकर प्रकट हुई, जैसे सर्पिणी के एक अंडे से कई सौ बच्चे निकलते हैं और फिर बाहर आकर वह बड़ा रूप धारण कर लेते हैं, इसी प्रकार इस गर्भ ने यह सृष्टि रची और यह मानसिक व सूक्ष्म सृष्टि कहलाई।

ब्रह्म की शक्ति दो धार बनकर निकली। एक धार प्राण दाता और फैलाव करने वाली थी और दूसरी प्राण हर्ता और सिमटाव करने वाली थी। एक धार सुख शांति और जिंदगी दे रही थी और दूसरी दुःख, अशांति और अधर्म फैलाती हुई संहार करना चाहती थी। प्रथम धार शुद्ध 'सत्व' फैलाती हुई संहार करना चाहती थी। प्रथम धार शुद्ध 'सत्व' की थी जो प्राणदाता थी इसलिए उसको 'उमा' कहा गया और दूसरी धार शुद्ध 'तम' की थी जो तम, लय और नाश करता है।

सत् से सतोगुणी सृष्टि और तम से तमोगुणी सृष्टि उत्पन्न हुई। जिन प्राणियों में दैवी संपत्तियाँ और सद्गुण हो उनको प्रकृति की सत् रूपी धार से उत्पन्न हुआ देव समझो और जिनमें असद्गुण, मूढ़ता, अज्ञान और हिंसा इत्यादि आसुरी वृत्तियाँ अधिक हों, उनको असुर समझो।

पुराणों में लिखा है कि यह जगत् कश्यप जी से उत्पन्न हुआ है। उनके दो स्त्रियाँ थीं एक का नाम दिति था और दूसरी का नाम अदिति था। अदिति से देवताओं की उत्पत्ति हुई और दिति के गर्भ से दैत्य, दानव, सर्प, राक्षस, व्याघ्र इत्यादि हिंसक प्राणियों ने जन्म लिया।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह कश्यप और कोई नहीं था परब्रह्म परमात्मा को ही यहाँ कश्यप कहा गया है और प्रकृति की सत रूपी धार को अदिति नाम दिया है। देवता अदिति से उत्पन्न हुए और दैत्य दिति के गर्भ से प्रकट हुए।

महतत्व से देव-दैत्य तक का सृष्टि क्रम संबंधी सामान्य पौराणिक दर्शन ब्रह्मलीन परम संत डॉ० चतुर्भुज सहाय के प्रवचनों से उद्धृत है। इस विषय में वैज्ञानिक खोजों के आधार पर प्राप्य निष्कर्ष थोड़ा-सा लीक से हटकर अपना मंतव्य प्रकट करता है—

प्राग्वेद्काल संस्कृति के विषय को समझने के लिए उस काल की भौगोलिक स्थिति की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। उससे हमें उस काल की परिस्थितियों को समझने में सहायता मिलेगी और घटना चक्र स्पष्ट होते चले जायेंगे। पुरातत्व अनुसंधानों के संदर्भ में आधुनिक वैज्ञानिकों को एक महत्वपूर्ण सूत्र हाथ लगा है। आज से लगभग 20 करोड़ वर्ष पूर्व इस पृथ्वी के बहुत से द्वीप आपस में भू-संश्लिष्ट थे। आज आप श्रीलंका, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि बहुत से द्वीपों को जिस रूप में संसार के नक्शे में देखते हैं इनमें भी स्थलों और क्षेत्रों के नाम तथा इनमें बसने वालों के रहन-सहन भी पुरातन-कालीन नहीं हैं। इन स्थलों के ऊपरी रूप में भी उत्तरोत्तर अंतर आता गया है और आगे भी यह प्रक्रिया निरंतर चल रही है।

डॉ० बेकन ने सन् 1620 में घोषणा की थी कि पृथ्वी का अर्द्ध पश्चिमी भाग यूरोप अफ्रीका से मिला हुआ था। सन् 1668 ई० में डॉ० प्लेसेट की रिपोर्ट से भी यही प्रमाणित हुआ। डॉ० एन्टोनियो श्नाइडर ने दो तीन करोड़ वर्ष पुराने अमरीकी और यूरोपीय पेड़ों के अवशेषों में समानता देखकर कहा कि उस काल से पूर्व अमरीका और यूरोप अवश्य ही संश्लिष्ट रहे होंगे। अमेरिका के प्रोफ़ेसर एफ० वी० टेलर ने 1908 ई० में तथा जर्मन प्रोफ़ेसर वेग्नर ने यह सिद्ध किया कि विश्व के विभिन्न महाद्वीप लगभग 20 करोड़ वर्ष पूर्व भूमि का एक ढेर रहे होंगे। यह अनुमान ब्राजील की तटवर्ती चट्टानों तथा अफ्रीका की चट्टानों की समानता से, उत्तरी अमेरिका के एप्लिशियन पर्वत की नोवा, स्कोशिया के सिरे पर समाप्त होने वाली प्राचीन चट्टानों तथा न्यू फाउंड लैंड, ग्रीन लैंड, पूर्वी आयरलैंड और स्काटलैंड के पर्वतों के चट्टानों की समानता से, उत्तरी अमेरिका के मेरी टाइम तथा पश्चिमी अफ्रीका के तटों की बालू के कणों में पाई जाने वाली समानता से सिद्ध होता है। यदि हम इन भू-भागों के समुद्र के अंदर लगभग एक हजार मीटर नीचे की भूमि के कटावों का मिलान करें, तो उत्तरी अमेरिका यूरोप से, दक्षिणी अमेरिका अफ्रीका से आस्ट्रेलिया बंगाल की खाड़ी से, पूर्वी अफ्रीका पश्चिमी भारत से, दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीका के दक्षिणी पूर्वी भाग से मिला सकते हैं।

आज से तीस करोड़ वर्ष पूर्व पश्चिमी यूरोप और आस्ट्रेलिया उत्तरी भू-मध्य रेखा के समीप थे और संतरण के कारण दोनों ही उत्तर की ओर खिसके। आस्ट्रेलिया चालीस करोड़ वर्ष भूमध्य पूर्व रेखा पर था फिर यह दक्षिणी ध्रुव की ओर खिसका। बाद में लगभग बीस करोड़ वर्ष पूर्व से पुनः यह उत्तर की ओर खिसकता हुआ वर्तमान स्थिति में पहुँचा है। भारत भी सात करोड़ वर्ष में भू-मध्य रेखा के उत्तर की ओर 50° खिसका है वर्तमान में भू-मंडल पर छः महाद्वीप हैं—यूरेशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमरीका, दक्षिणी अमरीका, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी ध्रुव प्रदेश। वनस्पति वेत्ताओं को भी पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में पाये जाने वाले पौधों का अध्ययन करके यही निष्कर्ष लेना पड़ा है।

पशु संसार में भी पृथ्वी के भू-भागों के संश्लिष्ट होने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका में पाये जाने वाले बहुत से प्राणी, जैसे—अमेरिकन चूहा, चिन्चिल्ला,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष प्रकार के लकड़ी में जीवित रहने वाले घोंघे, दीमक के घर में अंडे देने वाली मछली आदि में एक रूपता होना, भू-संश्लेषण को प्रमाणित करता है।

एक विशेष भू-मंडल जो 60 करोड़ वर्ष पुराने प्रांत नाइजीरिया तथा उसके पूर्व में पाया जाता है, एक दो अरब वर्ष पुराना ऐसा भू-भाग है, जो विश्लेषण प्रमाणित करता है। भारत और आस्ट्रेलिया के भी एक साथ विकसित होने के प्रमाण मिलते हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि लगभग 23 करोड़ पचास लाख और अस्सी करोड़ पचास लाख वर्ष के मध्य दोनों महाद्वीपों का चट्टानी विभाजन एवं विकास हुआ है। उत्तरी-पश्चमी आस्ट्रेलिया के पंपो और भारत के सिंह भूमि के कच्चे लोहे की प्राकृतिक खानों में आश्चर्यजनक समानता पाई गई है सतयुगी सभ्यताओं में कई संस्कृतियों का समावेश है। उसमें अत्यंत अविकसित जंगली यूथिल सभ्यता से लेकर सुमेरु सभ्यता और चाक्षुष सभ्यता की बातें भी मिलती हैं, जो कि वैज्ञानिक विकास के शिखर पर मानी जाती है। पाश्चात्य विद्वानों ने सुषा, एलम सप्त, सिंधु आदि प्रदेशों में विभिन्न सभ्यताओं के विकास को मान्यता दी है। इन सभी विकसित जातियों के अव्यवस्थित वर्णन ऋग्वेद, ब्राह्मण पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण आदि विभिन्न ग्रंथों में मिल जाते हैं। पुराणों आदि के अलावा, पर्शिया, अरब, मिस्र अफ्रीका तथा मध्य एशिया आदि के प्राचीन इतिहासों से भी इन जातियों और विकसित सभ्यताओं के साक्ष्य मिल जाते हैं। ईरानी हिब्रू धर्म ग्रंथ भी इस विषय में पुरातत्ववेत्ताओं का अच्छा मार्ग दर्शन करते हैं। कुछ लोगों में सतयुग के बारे में व्यापक भ्रांतियाँ हैं सतयुग में लोग इतने शक्तिवान् होते थे, इतने पवित्र होते थे, इतने देव गुण संपन्न होते थे कि वे ईश्वर कहे जाते थे और अब कलियुग में तो धर्म का आचार ही पड़ गया है, चारों ओर पापी हैं, दुष्ट हैं, बेईमान हैं आदि। वास्तव में प्रत्येक युग में ऐसे ही लोग थे जैसे कलियुग में हैं। यदि सतयुग में दुष्ट और पापी न होते, तो देवासुर संग्राम क्यों होते ? दुर्गा का अवतार क्यों होता ? दशरथ देवताओं के साथ मिलकर क्यों युद्ध करते ? त्रेता युग में राम-रावण का युद्ध क्यों होता ? द्वापर में कंस वध और महाभारत क्यों होती ? यह सब पापियों को समाप्त करने के लिए ही हुआ, तो कलियुग में अभी पापियों की कमी है, क्योंकि न अभी तक कोई दुर्गा आई, न राम आये, न कृष्ण। क्या मैं यह मान लूँ कि सतयुग, त्रेता और द्वापर के अनुपात में कलियुग अभी भी पवित्र और धर्मयुत है। इनमें से एक भी बात नहीं है। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग यह चार नाम उसी प्रकार हैं, जैसे—सोमवार, मंगलवार, बुधवार आदि नाम लेते हैं। इन सप्ताह के सात दिनों में सब दिन एक जैसे हों, तो जो सोमवार को है या हो सकता है, वह मंगलवार को भी हो सकता है। घटना घटित होने में वार, संवत् अथवा युग के नाम का कोई महत्व नहीं होता, प्रत्येक युग में एक जैसी घटनायें, युद्ध विभीषिकायें, प्राकृतिक आपदायें आदि घटित होती रही हैं और घटित होती चली जायेंगी। इसमें तात्विक रूप में कोई विभेद नहीं किया जा सकता।

इस भू-मंडल पर बहुत-सी सभ्यताएँ विकसित हुईं और विनष्ट हुईं। विकास और विनाश का घटनाक्रम लगभग एक-सा ही रहता आया है। जब जब किसी सभ्यता का विनाश होता था, तो बुद्धिवादी मारे जाते थे। उस काल के जंगली अपनी कंदराओं में रहते हुए जीवित बचते थे। वे जंगली अपनी पूर्व विकसित जातियों की कहानियों के साथ-साथ अपनी सभ्यता का विकास करते थे इसलिए प्रत्येक सभ्यता कि पूर्वज क्रियात्मक रूप से नर-वानर से विकसित हुए, परंतु पौराणिक रूप से अपने पूर्वजों की कहानियों में अभूतपूर्व विकसित वैज्ञानिक बने रहे। हमारी आज की सभ्यता की कहानी भी कुछ ऐसी ही रही है। इसीलिए एक मत कहता है कि आज की सभ्यता जंगलों की गुफाओं और कंदराओं से विकसित हुई है और वैज्ञानिक यात्रा में आगे बढ़ती चली जा रही है। दूसरा मत कहता है कि हमारे सतयुग, त्रेता, द्वापर के पूर्वजों का विज्ञान बहुत विकसित था। उसके आगे आज का विज्ञान कुछ भी नहीं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आज भी यदि पृथ्वी पर युद्ध आदि के द्वारा महाविनाश होता है, तो कंदराओं और गुफाओं में रहने वाले आदिवासियों की कोई शाखा जीवित बच पायेगी, शेष सारे संसार के नगर और ग्रामों में कोई नहीं बचेगा। धीरे-धीरे इन नगरों में पानी बहने के नाले और नालियाँ बंद हो जायेंगे। प्रत्येक वर्ष बाढ़ और वर्षा कीचड़ की एक मोटी तह जमा देगी। कुछ सौ वर्षों में नगर और ग्राम सब कीचड़-मिट्टी की तहों में दबे ढ़के रह जायेंगे। उसी अंतराल में आदिवासी कबीले की शेष बची हुई शाखा विकसित होती चली जायेगी। उन आदिवासी विकसित लोगों के पास हमारे ही समान दो प्रकार के मत होंगे, एक कहेगा—हम नर-वानर से मनुष्य बने हैं, दूसरा कहेगा मनुष्य तो हम अब हैं पहले तो देवता थे। इन विकसित आदिवासियों के कोई पुरातत्ववेत्ता जब खुदाई करके हमारे नगरों को निकालेंगे, तो उनसे हमारे विकसित विज्ञान का अनुमान लगायेंगे जैसे—हम मोहन जोदड़ो, हड़प्पा, चान्हू डेरे, विजनौर आदि स्थलों की खुदाई से लगाते हैं।

सतयुग में सप्त सिंधु (आज का पाकिस्तानी क्षेत्र) का अधिपति असुर याजक भृगुवंशी, त्वष्टा का पुत्र वृत्र था, जो दासों का नेता था। वहा बड़ा धर्मात्मा, तेजस्वी और बलवान् था। उसे जय करने के लिए देवताओं के इंद्र ने दसवाँ देवासुर संग्राम छेड़ा, परंतु इस युद्ध में देव लोग हार गये। बाद में धोखे से इंद्र ने वृत्र को मार डाला। वृत्र के पश्चात् नमुचि दास ने युद्ध की बागड़ौर सँभाली, उसने स्त्रियों तक को खड़क लेकर युद्ध में भेजा, परंतु नमुचि मारा गया और देवों ने दास साम्राज्य के दो अयोध्य नगरों को जलाकर दास साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया। यह जले हुए नगर ही मोहनजोदड़ों और हड़प्पा कहे जाते हैं।

सतयुग के ऐतिहासिक दृष्टि से दो भाग किये जा सकते हैं। एक प्रियवृत शाखा काल, जिसमें 35 प्रजापति और 5 मनु हुए, दूसरा उत्तानपाद शाखा काल, जिसमें चाक्षुष मंवतंर में 10 प्रजापति हुए। सांस्कृतिक दृष्टि से 39 वें प्रजापति तक सतयुग का प्राग्वेद काल तथा उसके बाद सतयुग का वेदोदय काल माना जाता है।

आधुनिक इतिहास में पढ़ाया जाता है कि आर्य लोग खानाबदोशों और चरवाहों की भाँति अपने जंगली परिवारों और पशुओं के साथ इधर-उधर भटका करते थे। बाद में लोगों ने पत्थरों के नुकीले हथियार प्रयोग करने प्रारंभ किये। यह सभ्यता 'यूथिल सभ्यता' कहलाई यूथिल सभ्यता से लेकर नव-पाषाण सभ्यता के काल तक का अंतराल ऐतिहासिक दृष्टि से पाषाण-युग कहलाया।

इस युग के अंत तक मनुष्य की बुद्धि बहुत कुछ विकसित हो चुकी थी। ज्यों-ज्यों बुद्धि विकसित होती गई, सभ्यताओं के विकास के स्तर में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। 'चिलियन सभ्यता' के बाद 'मुस्टेरियन सभ्यता' विकसित हुई और उसके पश्चात् ही रेनडियन सभ्यताएँ विकसित हुईं। इतनी सभ्यताएँ निकल जाने के पश्चात् ही मनुष्य नर-वानर से मानवोचित बुद्धि वाला बन पाया था, इसके बाद की सभ्यताएँ ही सभ्यता कहलाने योग्य हुईं।

पुरातत्वान्वेषियों के अनुसार पाषाण युग के पश्चात् धातु युग प्रारंभ हुआ। आधुनिक इतिहासकार ताम्र युग से धातु युग का आरंभ मानते हैं। इसी खोज में वे सप्त सिंधु देश में पहुँचे, जो वर्तमान में पंजाब और पाकिस्तान के क्षेत्र में है। उस क्षेत्र की सरस्वती नदी अब सूख चुकी है। इसलिए अमेरिकन डॉ० डी० टेरा सिंधु प्रदेश को ही पाषाण युग और धातु युग का मिलन काल मानते हैं। सुमेरियन लोगों ने काँस्य युग प्रारंभ किया। पुरातत्ववेत्ताओं का भी यही अनुमान है कि काँस्य युग लाने वाली सुमेरु, खत्ती (हिटाइट) क्रीटन-मिस्त्री आदि जातियों की सभ्यताएँ किसी अज्ञात देश में, ताँबे की सभ्यता के रूप में विकसित हुई थीं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैसोपोटामियाँ के 'उर-फरा-किश' तथा इलाम के 'सुसा' और तपामुख्यान आदि के क्षेत्रों में पुरातत्वान्वेषियों को खुदाई में काँस्य सभ्यता के नीचे बहुत बड़ी बाढ़ द्वारा जमाई हुई चिकनी मिट्टी का चार फुट मोटा स्तर मिला है। उसके नीचे ताम्र सभ्यता के चिह मिले हैं वैज्ञानिकों का विचार है कि यह मिट्टी का स्तर महाप्रलय के कारण बना है, जिसे 'नन्ह' कहा गया है। वैज्ञानिकों का विचार है कि प्रलय से पूर्व प्रोटोइलामाइट ताम्र-युगीन सभ्यता थी, जो प्रलय से पीड़ित हुई। प्रलय पीड़ितों का स्वाभाविक आचरण यही होता है कि कुछ नष्ट हो जाते हैं, कुछ बचकर भाग निकलते हैं। खुदाई में निकली सामग्री के आधार पर उन्होंने निर्णय लिया कि सप्त सिंधु में सरस्वती तट पर विकसित होने वाली आमरी सभ्यता ही प्रोटोइलामाइट सभ्यता थी।

डॉ० भार्गव, डॉ० फ्रेंक फोर्ट तथा डॉ० लेंग्डन आदि पुरातत्व अन्वेषकों के अनुसार बिलोचिस्तान और ईरान होते हुए इलाम तथा मैसोपोटामिया में जाकर बसने वाली जाति ही आर्य थी, जो प्रलय के बाद वहाँ पहुँची। सुमेरु सभ्यता के बाद मिस्र की सभ्यता के उदय के प्रमाण मिलते हैं।

मध्य युग के वैज्ञानिकों और अन्वेषकों के बारे में विचार करें तो—मिलेटस के निवासी एनैक्सिमैडर ने जगत् का मूल तत्व ऐसा भौतिक पदार्थ माना जो जल नहीं है, अपितु रूप रहित तथा अनिश्चित है। इससे जल, अग्नि वायु आदि सीमित पदार्थ उत्पन्न होते हैं और इसी में लीन हो जाते हैं। उनके अनुसार यह पदार्थ परिमाण से परे है क्योंकि ऐसा न मानने पर सृष्टि के रहते यह पदार्थ भी समाप्त हो जाना है जो कि संभव नहीं है। यह अपरिच्छिन्न पदार्थ स्वयं कार्य नहीं हो सकता, यह अनश्वर है तथा इसकी गति शाश्वत है। मिलेटस के ही एक और व्यक्ति एनेक्सिमेनीज थे, जिन्होंने वायु को संसार का मूल तत्व माना। सेमस निवासी पायथागोरस (जिनका काल ईसा पूर्व 580 माना जाता है) सब पदार्थों को अंक मानते थे। पायथागोरियन संस्था यह मानती थी कि शरीर आत्मा का कारावास है। वे लोग द्वैत वादी थे हरेक्लिटस जो ई० पू० 535 के थे। अग्नि को संसार का मूल तत्व मानते थे। उन्होंने आत्मा को भी अग्नि का अंश माना और संवेदी ज्ञान को तर्क से नीचे दर्जे का माना। उनके अनुसार विचार रहित प्रत्यक्ष, प्रच्छन्न सत्य का साक्षात्कार नहीं करा सकता है।

पारमेनिडीज ने परिवर्तनशील तथा अस्थायी संसार के मध्य सतत् तथा स्थायी सत्ता की खोज की और सत् तथा असत् के बीच प्रतिपथ उत्पन्न कर दिया। सत् को निरपेक्ष सत्ता माना और असत् को अवास्तविक और सत्तारहित माना। इस प्रकार असत् का तादात्म्य परिवर्तनशील संसार से किया। संवेदी जगत् अवास्तविक भ्रामक तथा आभासी माना गया और उसका ज्ञान संवेदों द्वारा किया जा सकता है, ऐसा माना गया। सत् सदैव विद्यमान रहने वाला है, जिसका न परिवर्तन होता है न जन्म, यही ऐसा मूल तत्व है, जिसका विभाजन नहीं होता है। यह इंद्रियगम्य नहीं है, चूँकि यह प्रत्यय है, पदार्थ नहीं है। सिसली में जन्मे एम्पडाक्मलीज ने चार गुणात्मक तत्व स्वीकार किये—पृथ्वी, वायु, अग्नि तथा जल; इन्हीं को सबका मूल कारण माना और कहा कि इन तत्वों में प्रेम के कारण मिश्रण होता है।

एनेक्सेगोरस ने मन को तत्व और स्वतः सक्रिय सत्ता माना और कहा कि संसार में संपूर्ण गति तथा जीवन का यही स्वतंत्र स्रोत है। इसे भूत, वर्तमान व भविष्य का ज्ञान रहता है। इसी के कारण संसार में क्रम आता है। डिमॉक्रिटस संसार की सृष्टि का मूल परमाणु को मानते हैं। उन्होंने गति को परमाणुओं का स्वाभाविक लक्षण माना। परमाणु को अजन्मा, अनश्वर तथा अपरिवर्तनशील माना, साथ ही कहा कि परमाणु गतिशील होते हैं और उसका परिमाण विश्व की उत्पत्ति है। परमाणु आकार, क्रम, परिमाण तथा स्थान में पृथक् होते हैं। इन लक्षणों का प्रत्यक्ष स्पर्श द्वारा होता है। स्पर्श के कारण संवेदना होती है। जिसकी अनुभूति उन परमाणुओं से निर्मित प्रत्येक वस्तु में की जा सकती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

4 तत्व दर्शन

स्वीयांगे वहते नाड़ी तन्नाड़ीरोधनं कुरु।
मुखबंधममुचन्वै पवनं जायते युवा।।

अपने शरीर में प्रवाहित स्वर को रोककर नाड़ी को रोक दें और मुख से भी वायु के प्रवाह को रोक दें, तो वृद्ध भी युवा हो सकता है।

मुखनासाक्षिकर्णातानगुलीभिर्निरोधयेत्।
तत्वोदययमितिज्ञेयं षण्मुखीकरणं प्रिये।।

मुख, नाक, आँख और कान में उँगली द्वारा निरोध करलें (अर्थात् कान में अँगूठा, आँखों पर तर्जनी नाक पर मध्यमा, होठों पर अनामिका तथा कनिष्ठिका रखकर नेत्र बंद करलें और श्वास रोक लें) इसे षड्मुखी मुद्रा कहते हैं, इससे तत्वों का ज्ञान प्राप्त होता है।

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणं त्विदम्।
स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित्।।

तत्वों के रूप, उनकी गति, उनका स्वाद, तत्व का मंडल तथा लक्षणादि इसी मुद्रा के द्वारा जाना जाता है। इसका ज्ञान केवल स्वर ज्ञानी ही करता है।

निराशो निष्कलोयोगीन किचिंदपि चिन्तयेत्।
वासना मुन्मनांकृत्वा कालंजयति लीलया।।

निराश तथा निष्कलंक योगी वासनाओं का उन्मूलन करके सब चिंताओं से मुक्त रहते हुए काल को जीत लेता है।

विश्वस्य वेदिकाशक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते।
तत्रस्थं तु मनोयस्य याममात्रं भवेदिह।।

यदि किसी का ध्यान एक प्रहर के लिए भी स्थिर हो जाता है, तो उसके नेत्रों में संसार चक्र को समझने की शक्ति जाग्रत हो जाती है।

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रयमानतः।
शिवेनोक्तं पुरातंत्रे सिद्धस्य गुणगह्वरे।।

ऐसे व्यक्ति की उम्र प्रति दिवस तीन घड़ी (घटी) बढ़ने लगती है। शिव जी ने गहरे गुणों से युक्त सिद्ध तंत्र कहा है।

तत्व और स्वर

"क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच तत्व मिलि बना सरीरा।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आयुर्वेदिक योगवेत्ता प्रायः उक्त बात को दुहराते रहते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि पाँच तत्वों से मिलकर शरीर का निर्माण हुआ है। स्वर योग के आधार पर आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्व का प्रकाश होता है।

नभ से पवन, पवन से पावक तत परकासु।
पावक से पानी लखो मही लखोपुनि तासु।।

स्वर योग में श्वासप्रश्वास पर ध्यान देने के साथ-साथ तत्वों पर भी ध्यान दिया जाता है। ज्ञानार्णव तंत्र में कहा गया है—

अथ मंडलेषु वायोः प्रवेशानः सरणकालमवगम्य।
उपदिशति भुवनवस्तुपु विचेष्टितं सर्वथा सर्वम्।।

अर्थात् (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि) मंडलों में पवन के प्रवेश और निःसरणकाल को निश्चय करके ध्यानी पुरुष जगत् भर के पदार्थों की सर्व चेष्टाओं का वर्णन कर देते हैं।

दोनों स्वरों (सूर्य और चंद्र) में पाँचों तत्व चलते हैं। उनके रंग, परिमाण, आकार, काल, फल आदि को जानकर जब साधक कुछ कहता है, तो वह सत्य होता है।

घोणा वितरणमापूर्य किञ्चिदुष्णं पुरन्दरः।
वहत्यष्टांगुलः स्वस्थः पीत वर्णः शनैः शनैः।। (ज्ञानार्णव)

पृथ्वीमंडल वाली श्वास नासारंध्र को भली प्रकार भरे हुए कुछ उष्णता युक्त आठ अंगुल तक बहता प्रतीत होता है और स्वस्थ चपलता रहित मंद-मंद गति से निःसरित होता है।

जल तत्व युक्त श्वास की गति तीव्र होती है कुछ नीचाई लिए बहती है, शीतल होती है दीप्ति रूप उज्वल होती है और बारह अंगुल तक प्रवाहित होती प्रतीत होती है—

त्वरितः शीतलोऽधस्तात्सितरुक द्वादशांगुलः।
वरुणः पवनस्तज्ज्ञेबर्हने नावसीयते।।

पवन तत्व की श्वास सभी ओर तिरछी बहती है और निरंतर बहती रहती है वर्ण में नीलापन होता है और छः अंगुल तक प्रवाह प्रतीत होता है, ताप में शीतोष्ण रहती है—

तिर्यग्वहत्य विभ्रान्तः पवनाख्यः षडुंगलः।
पवनः कृष्णवर्णोऽसौ उष्णः शीतश्च लक्ष्यतः।।

अग्नि तत्व युक्त श्वास उष्ण तो होती ही है, ऊँचाई की ओर चक्राकार चलती है बाल सूर्य के समान रक्त वर्ण होती है और चार अंगुल तक प्रवाहित होती प्रतीत होती है—

बालार्क सन्निभश्चोर्ध्व सावर्त्तश्चतुरंगुलः।
अत्युष्णो ज्वलनाभिख्यः पवन कीर्तितो बुधैः।।

आकाश तत्व के विषय में कहा है—

नासा संपुट में चले बाहिर नवि परकास।
शून्य अहे आकार तस स्वर युग चलत अकास।।

अर्थात् आकाश तत्व नासारंध्रों में ही चलता प्रतीत होता है, बाहर आया प्रतीत नहीं होता। इस तत्व में दोनों ही स्वर चलते हैं, इस तत्व का आकार शून्य है।

पाँचों तत्वों में पृथ्वी तथा जल तत्व का स्वामी चंद्र है और अग्नि, वायु, तथा आकाश का स्वामी सूर्य हैं।

पृथ्वी तत्व का वर्ण पीला, तपाये हुए स्वर्ण के समान लाली युक्त पीला, जल तत्व का वर्ण चंद्र के समान सफेद, अग्नि तत्व का वर्ण लाल चिंगारी जैसा तथा वायु तत्व का वर्ण नीलाभ हरा-नीला-सा और आकाश तत्व का काला होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्वों का वर्ण देखने के लिए—दोनों अँगूठों से दोनों कान, दोनों मध्यमा उँगली से नासारंध्र, दोनों तर्जनी उँगलियों से आँखें और दोनों अनामिका तथा कनिष्टिका से दोनों होठों को बंद कर लें और फिर एकाग्र चित्त होकर बंद आँखों में ही भ्रकुटी के मध्य में देखें। वहाँ जो रंग दिखाई दे, उस समय वही तत्व जान लें।

एक अन्य विधि भी उपयोग में लाई जा सकती है। छः रंगों की गोलियाँ बना लें—पीली, सफेद, लाल, हरी, काली और एक चितकबरी, फिर इनमें से किसी एक गोली को आँख बंद कर के उठालें। यदि मन में विचारा हुआ और उठाई गई गोली का रंग मिल जावे, तो समझ लें कि तत्व मिलने लगा है।

एक और विधि भी लोग अपनाते हैं—किसी अन्य व्यक्ति से कोई रंग विचार लेने को कहें। जब वह रंग सोचले, तो उस समय नाक के स्वरों में तत्वों को देखें और फिर उस आधार पर उस व्यक्ति द्वारा विचारे हुए रंग को बतायें। यदि विचारा हुआ रंग और आपके द्वारा बताया गया रंग मिल जाय, तो समझ लें कि तत्व ठीक मिलने लगा है।

तत्व देखने के लिए ऋषि-मुनि लोग मूलासन अथवा पद्मासन में बैठकर चित्त को स्थिर करके षण्मुखी मुद्रा द्वारा अभ्यास करते हैं। कुछ दिनों के निरंतर अभ्यास से तत्वों का ज्ञान होने लगता है।

तत्वों के आकार को जानने के लिए निम्न विधि का प्रयोग किया जाता है—

दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वास विनिःक्षिपेत्।
आकारैस्तु विजानीयात् तत्वभेद विचक्षणः।।

दर्पण को अपने होठों के पास लगाकर बलपूर्वक श्वास छोड़ें। ऐसा करने से दर्पण पर श्वास का आकार बनेगा उसके अनुसार तत्व का निर्णय कर लें।

चतुरस्रं चार्ध चन्द्रं त्रिकोणां वर्तुलं स्मृतम्।
बिन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्व लक्षणम्।।

समचौरस (चतुर्भुज) आकार से पृथ्वी तत्व, अर्ध चंद्राकार से जल तत्व, त्रिकोणाकार से अग्नि तत्व, ध्वजा या गोल आकार से वायु तत्व तथा बिंदुओं जैसे आकार से आकाश तत्व निर्णय करें। यदि कोई आकार न बने तब भी आकाश तत्व समझें।

इस प्रकार वर्ण अर्थात् रंग श्वास की गति का प्रमाण, आकार एवं शारीरिक इच्छा को ध्यान में रखते हुए तत्व निर्णय किया जाता है। शारीरिक इच्छाएँ जानने के लिए शरीर की क्रियाओं पर ध्यान दें—

जिस समय तत्व चार अंगुल नासिका से बाहर निकलता है, तो तीखी वस्तु पर चित्त चलता है, प्यास लगती है, यह अग्नि तत्व के लक्षण हैं।

कांति, संगम, अँगड़ाई, आलस्य, भूख और प्यास अग्नि तत्व के परिचायक हैं। रक्त, थूक, वीर्य, स्वेद, चर्बी (स्नेह) जल तत्व के परिचायक हैं। त्वचा, अस्थि, नस नाड़ी रोग तथा मांस पृथ्वी तत्व के परिचायक हैं। शक्ति प्रदर्शन दौड़ना, उठना, चलना, बढ़ना, संकुचित होना, हिलना वायु तत्व के परिचायक हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद आदि वृत्तियाँ आकाश तत्व की परिचायक हैं। एक-एक स्वर में पच्चीस तत्वों का समावेश होता है।

अग्नि तत्व को तमोगुणी, वायु तत्व को रजोगुणी, पृथ्वी तथा जल तत्व को सतोगुणी और आकाश तत्व को स्थिर माना गया है।

पृथ्वी तत्व का स्वामी सूर्य है, जल तत्व का स्वामी राहु है, जो वायु तत्व का भी स्वामी है। अग्नि तत्व का स्वामी मंगल है और आकाश तत्व का स्वामी शनि है। पृथ्वी तत्व का स्वामी बुध भी है और जल तत्व का चंद्र भी, अग्नि तत्व का शुक्र और वायु तत्व का स्वामी गुरु (बृहस्पति) भी माना गया है। अपने-अपने तत्वों में यह ग्रह तथा वार शुभ फल देते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

		आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
	ग्रह	शनि	ग्रह गुरु राहु	ग्रह शुक्र मंगल	ग्रह चंद्र राहु	ग्रह बुध सूर्य
1	तत्व का नाम	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
2	तत्व का रंग (वर्ण)	काला	हरा या नीला	लाल	सफेद	पीला
3	तत्व का गुण	स्थिर	रजो गुण	तमो गुण	सतो गुण	सतो गुण
4	तत्व का समय	10 पल (4 मिनट)	20 पल (8 मिनट)	30 पल (12 मिनट)	40 पल (16 मिनट)	50 पल (20 मिनट)
5	तत्व की चाल का प्रमाण	नासारंध्र के अंदर अंदर	टेढ़ा होकर नाक से 8 अंगुल बाहर आता है।	ऊँचा होकर नाक से 4 अंगुल बाहर आता है।	नीचे होकर नाक से 16 अंगुल बाहर आता है।	नाक के सामने 12 अंगुल बाहर आता है।
6	तत्व का आकार	कोई नहीं ○	ध्वजा समान 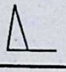	त्रिकोण आकार △	अर्ध चन्द्र	सम चौरस □
7	तत्व का बीज	क्लौं	क्लौं	रौं	पैं	ऐं
8	तत्व का स्वाद (रस)	कड़वे स्वाद की चाह	खट्टी वस्तु की चाह	तीखी वस्तु की चाह	कसैली वस्तु की चाह	मीठी वस्तु की चाह
9	तत्व का स्वभाव (प्रकृति)	स्थिर	चर	तप्त	शीतल	कठोर
10	तत्व का मार्ग (द्वार)	कान	नासारंध्र	नेत्र	लिंग	गुदा
11	तत्व की क्रिया	श्रवण सुनना	घ्राण सूँघना	दृष्टि देखना	काम मैथुन	खाद्य भोजन
12	तत्व का अंग (स्थान	सिर में रहता है	नाभि में रहता है	कंधा में रहता है	पैरा में रहता है	जांघ में रहता है
13	एक तत्व में पाँच तत्वों वाली प्रकृति — म.	मद	सिमटना	आलस	थूक	अस्थि
	चि.	लोभ	चलना, बढ़ना	प्यास	स्वेद चर्बी	त्वचा
	क्रो.	क्रोध	दौड़ना	भूख	रक्त	नख नाड़ी
	का.	काम	उठना, हिलना	संगम, अड़गाई, कांति	मूत्र	मांस
	मो.	मोह	बल करना	नींद	वीर्य	रोम
14	तत्वों की बलिष्ठ दिशा	स्थिर स्थान	उत्तर पूर्व	दक्षिण उत्तर	पश्चिम	पूर्व दक्षिण
15	तत्वों के कार्यों की प्रधानता	कोई काम न करें भजन करें।	उच्चाटन मारण कार्य	क्रूर कार्य वशीकरण	चर कार्य तथा उत्तम कार्य	स्थिर कार्य स्तंभन कार्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

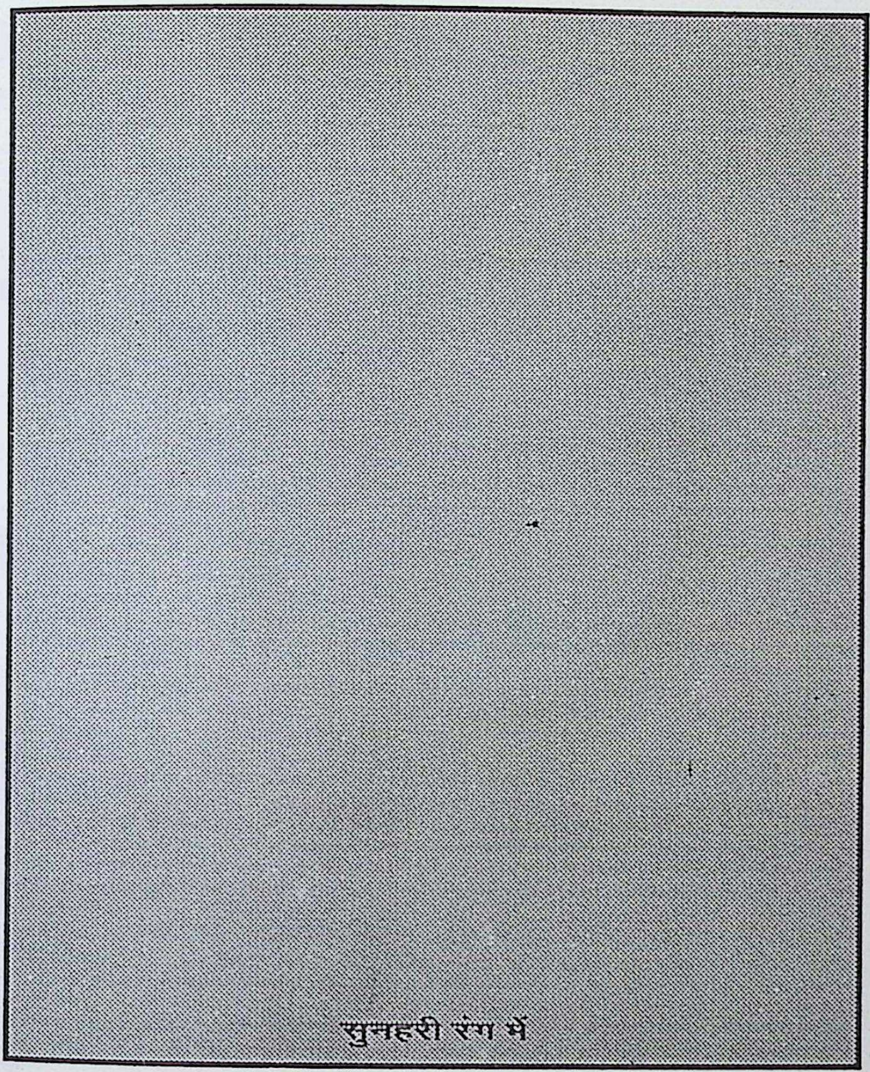

पृथ्वी तत्व

बीज वर्ण—लं

ध्यान फल—थकान, भारीपन दूर होता है, शरीर में स्फूर्ति ताजगी आती है और शरीर में हलकापन आता है।

लं बीजं धरणीं ध्यायेच्चातुरस्रां सुपीतभाम्।
सुगन्धां स्वर्णवर्णभां प्राप्नुयाद्देहलाघवम्।।

पीले रंग की स्वर्ण आभायुक्त सुगंधित वर्गाकार पृथ्वी तत्व का ध्यान करें। बीज मंत्र लं का जप करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

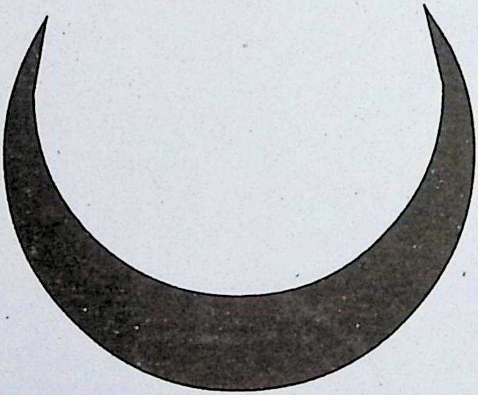

चाँदी की भाँति रजत वर्ण

जल तत्व

बीज वर्ण—वं

ध्यान फल—झूठी भूख समाप्त होती है, भूख-प्यास सहन करने की शक्ति आती है। जल में डूबने का भय समाप्त होता है।

बं बीज वारुणे ध्यायेत्तत्वमर्धशशि प्रभम्।
क्षुतृष्णादिसहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम्।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

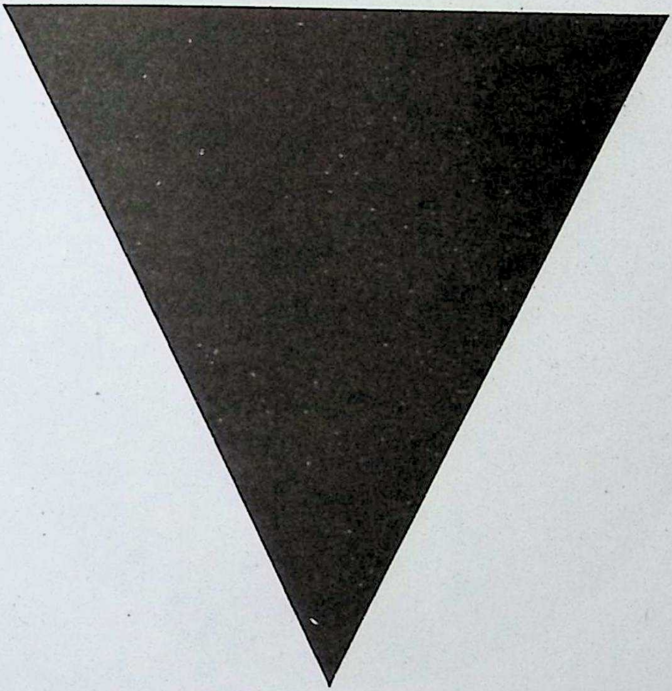

लाल वर्ण

अग्नि तत्व

बीज वर्ण—रं

ध्यान फल—मंदाग्नि तथा धूप जनित रोगों से आराम मिलता है। भूख, प्यास की वृद्धि होती है। धूप तथा अग्नि से भय नहीं रहता।

रं बीजमग्निं ध्यायेत्रिकोणमरुण प्रभम्।
वह्नन्नपान भोक्तृत्व मातपाग्नि सहिष्णुता।।

लाल त्रिकोणाकृति में अग्नितत्व का ध्यान करें। बीज मंत्र रं का जाप करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

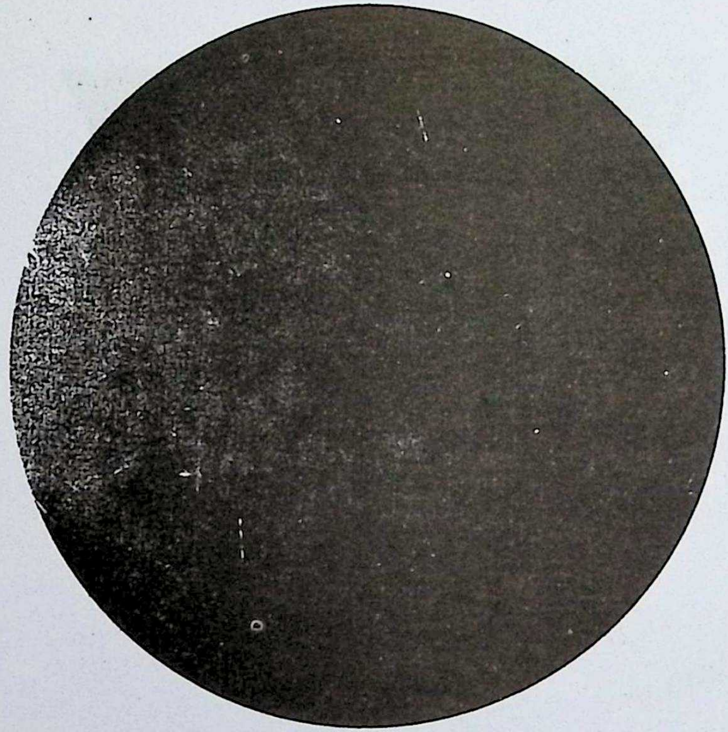

गेंद काले वर्ण की

वायु तत्व

बीज वर्ण—यं

ध्यान फल—वायु के रोगों में आशातीत लाभ मिलता है। वायु में उड़ने की शक्ति आती है।

यं बीजं पावनं ध्यायेद्वर्तुलं श्यामल प्रभम्।
आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद्गमनं तथा।।

काली गेंद पर ध्यान करने की बात इस श्लोक में कही गई है। काली गेंद को शून्य में लटकी हुई कल्पना करें। बीज मंत्र का जप करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

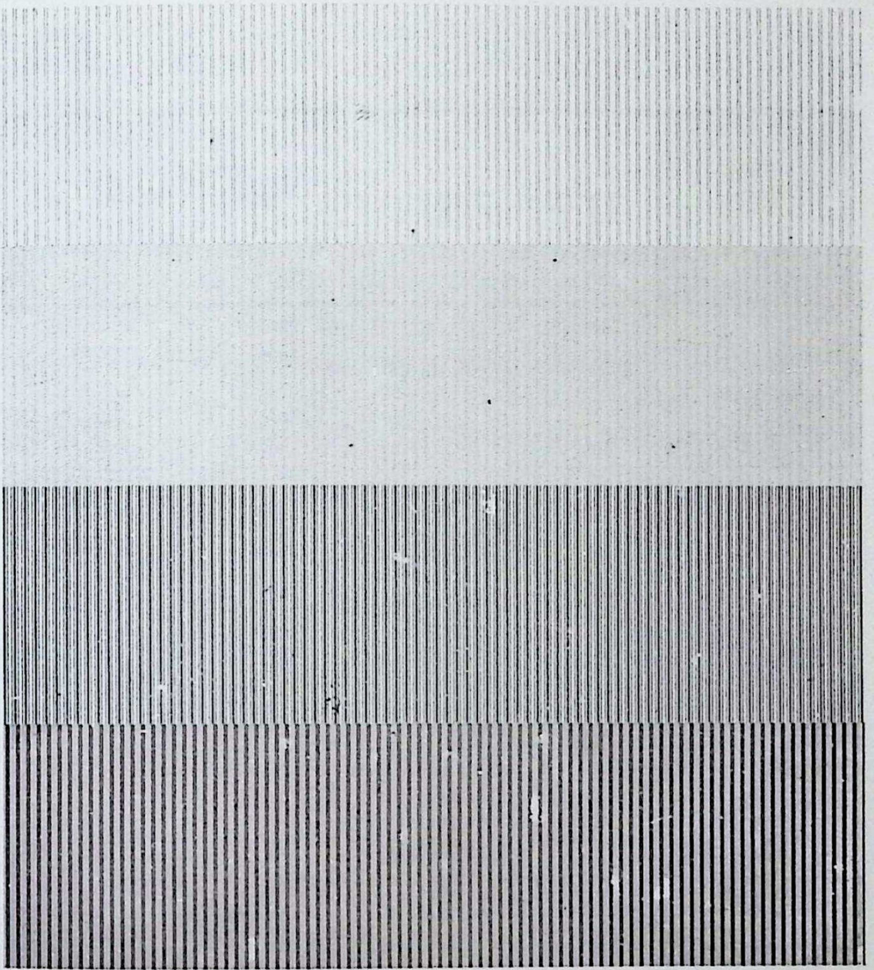

सुनहरी, रजत, लाल, काला मिश्रित

आकाश तत्व

बीज वर्ण—हं

ध्यान फल—आकाश का ध्यान करने से त्रिकाल का परिचय मिलता है तथा अणिमादि अष्ट सिद्धि फलित होती हैं।

हं बीज गमनं ध्यायेन्निराकारं बहु प्रभम्।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्य मणिमादिकम्।।

कल्पना करें कि निराकार आकाश आपको कभी सुनहरी, कभी रजत, कभी लाल अथवा काली या मिश्रित, विभिन्न प्रभायें दर्शा रहा है। बीज मंत्र का जप करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

5 पंच कोशमय शरीर

पंच तत्व मये देहे पंच तत्वानि सुन्दरि।
सूक्ष्मरूपेण वर्तन्ते ज्ञायन्ते तत्वयोगिभिः।।

हे सुंदरी ! इस पंच कोशमय मानव शरीर में यह पाँचों तत्व सूक्ष्म रूप में व्याप्त रहते हैं, जिनके बारे में तत्व योगी लोग जानते हैं।

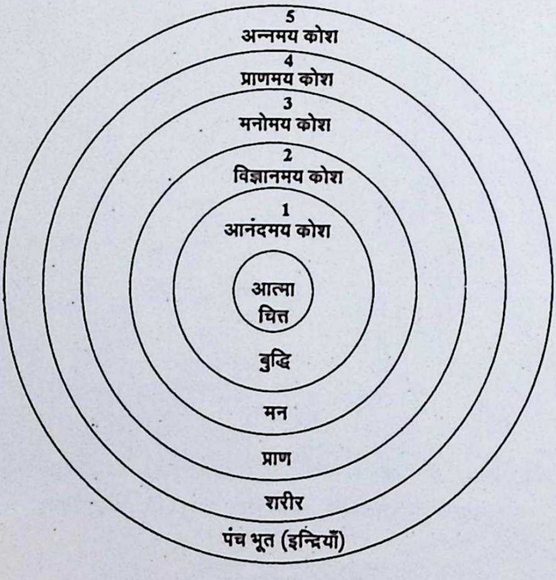

पंच कोश शरीर

पंच महाभूतमय शरीर और पंच कोशों के बारे में बड़े-बड़े स्पष्टीकरण विद्वानों द्वारा दिये जाते हैं और विभिन्न कोणों से साधक को इस रहस्य चक्र को समझाने की चेष्टा की जाती है, परंतु व्यावहारिक बात यह है कि इसका क्रियात्मक पक्ष लोगों की समझ में नहीं आ पाता। वैसे यहाँ कुछ क्रियात्मक है भी नहीं, एक "दर्शन" है जिसे आज की विज्ञानयुक्त भाषा में बार-बार कहने का प्रयत्न किया जाता है और **"ज्यों-ज्यों सुरभि भजौ चहै त्यों-त्यों उरझत जात"** वाली कहावत चरितार्थ होती जाती है।

आत्मतत्व ज्ञान (Metaphysics) के आधार पर मोटी भाषा में यह कहा जाता है कि शरीर को चलाने वाला 'प्राण' है, जिसके प्रवाह से शरीर के विभिन्न अवयव कार्य करते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस अवयव में प्राण ऊर्जा किसी कारण नहीं पहुँच पाती वह प्राणहीन हो जाता है और कार्य नहीं कर पाता। प्राण की क्रिया बहुत कुछ 'मन' पर निर्भर करती है। कहा भी है—**''मन के हारे हार है मन के जीते जीत, पार ब्रह्म को पाइये मन ही की परतीत।''** यदि मन में कोई उत्तेजक विचार आ जाय, तो श्वास क्रिया में वृद्धि हो जाती है और मन में शांत भाव रहे, तो श्वास भी सम चलती है ऐसे अनुभव तो बहुत बार आप लोगों ने किये होंगे। 'मन' स्वयं में केवल कुछ बंधनों के आवरण हैं, जिन्हें संस्कार भी कहा जाता है। इन संस्कारों के आधार पर मस्तिष्क में विचार चलते हैं। संस्कारों का प्रभाव उनके चैतन्य होने पर ही होता है। यह चैतन्यता आत्मा की शक्ति तरंगों के आधार पर आती है। मन अर्थात् संस्कार—आवरण तथा शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा के बीच के स्थान को चित्त का क्षेत्र कहा जाता है, जहाँ चिति शक्ति का विलास स्पष्ट होता हैं। यूँ कहने को यह बहुत सूक्ष्म क्षेत्र है, परंतु जहाँ परम सूक्ष्म की बात चल रही हो, वहाँ वह भी 'बहुत' है। इस बात को निम्नप्रकार चित्रित किया जा सकता है—

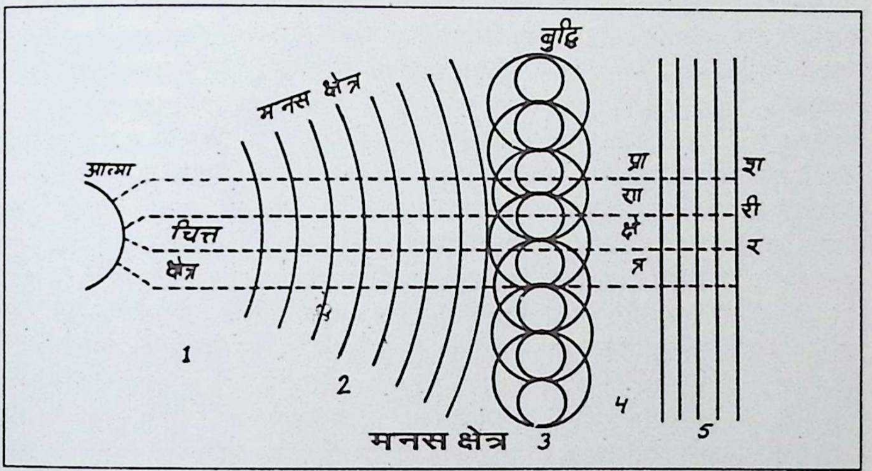

जब हम पंच कोश के चक्र को देखते हैं, तो सर्वप्रथम अन्नमय कोश को देखते हैं जहाँ शरीर बाहरी रूप में कार्य करता है। शरीर का बाहरी रूप शरीर और संसार के संबंध पर आश्रित रहता है। शरीर की भौतिक आवश्यकताओं का भरण-पोषण अन्नमय कोश का क्षेत्र है। आसन / व्यायाम तथा सामाजिक व्यवहार इसी क्षेत्र में आते हैं, जो शरीर को भौतिक रूप में स्वस्थ रखते हुए सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाते हैं। शरीर के अंदर की क्रियाएँ श्वास पर आधारित हैं। श्वास से फेफड़ों के द्वारा रक्त शुद्धि होती है, जो हृदय के द्वारा धमनियों और शिराओं के मार्ग से शरीर के कोश-कोश तक जाकर उसे ऊर्जावान् बनाती है और उनके निष्काषित मल को फेफड़ों तथा गुर्दों आदि के द्वारा शरीर से बाहर फेंकती है। इसकी क्रिया को चैतन्य करने के लिए आसनों के साथ प्राणायाम की सिफारिश की जाती है। प्राणायाम स्वयं में श्वास का व्यायाम है। यदि प्राणायाम अर्थात् श्वासप्रश्वास ताल बद्ध रहे, तो रक्त संचार ताल बद्ध हो जाता है। हृदय और फेफड़े का संबंध तो सर्व विदित है ही, लेटी हुई अवस्था में तो व्यक्ति का श्वासप्रश्वास पेट के आधार पर ही चलता है। ऐसी श्वास क्रिया भोजन का पाचन कराती है। रक्त संचार पाचन और मल निष्कासन की क्रियाएँ इस प्रकार प्राणायाम के द्वारा संपन्न हो जाती हैं। मन की क्रियाएँ ध्यान समाधि ही नहीं हैं अपितु यम तथा नियमों की क्रियाएँ भी मन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की क्रियाओं के अंतर्गत आती हैं। (यम अर्थात् अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और सत्य) तथा नियम (अर्थात् शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर, प्रणिधान) की सभी क्रियाएँ मानसिक हैं। **अहिंसा** अर्थात् किसी को दुःख न पहुँचाना एक मानसिक अभ्यास है, जिसके क्रियात्मक रूप में हमें यह समझना पड़ता है कि जो वह है, वही मैं हूँ, दूसरा नहीं है। इसलिए जो मैं स्वयं सह सकता हूँ, उतना ही दूसरे को कष्ट दे सकता हूँ। दूसरों के प्रति सहानुभूति (Sympathy) रखना अहिंसा नहीं है, दूसरों के प्रति समानुभूति (Impathy) रखने से अहिंसा का अभ्यास पूर्ण होता है। **अस्तेय** अर्थात् चोरी न करना भी मानसिक क्रिया है। चोरी की बात एक मानसिक विकृति है, अभाव की बात नहीं है। समाज में भी आप देखेंगे कि अमीरों की तुलना में गरीबों के यहाँ चोर कम पाये जायेंगे। दो नंबर के कार्य जितने अमीरों के यहाँ पाये जायेंगे उतने गरीबों के यहाँ नहीं। गरीब की ईमानदारी ही उसका गहना होती है, उसी के कारण यह अमीर का विश्वासपात्र बनता है। आध्यात्मिक अर्थ में चेहरे की चोरी, व्यक्तित्व की चोरी ही असली चोरी है। इसके लिए व्यक्तित्व परिवर्तन होते समय अर्थात् चेहरा बदलते समय आप ध्यान दे लीजिये कि आप चेहरा बदल रहे हैं, और यह क्रिया पूर्णतः मानसिक है। **अपरिग्रह** अर्थात् अपने को मालिक न समझना, किसी वस्तु पर अपना स्वामित्व न समझना अपितु उस वस्तु का प्रबंध अधिकारी मानना। यह क्रिया भी पूर्णतः मानसिक है। **ब्रह्मचर्य** का संबंध जननांगों से कम मस्तिष्क से अधिक है। जिन लोगों ने सैक्स पर ध्यान दिया है, वे जानते हैं कि उत्कृष्ट वासना को भी मस्तिष्क का एक विचार क्षणभर में शांत कर सकता है। बलात्कारी को जैसे ही पता लगता है कि कोई आया, उसकी वासना ठंडी पड़ जाती है। यदि कोई आया न हो और मात्र विचार आ जाय कि कोई आया तब भी वही स्थिति होती है। यदि कोई सचमुच आ जाय और पता न लगे, तो वासना अपना जोर देती रहती है। यदि वीर्यक्षरण तथा कामानंद दोनों के 'क्षण' पर ध्यान दें, तो आप पायेंगे कि दोनों क्रियाओं में एक क्षण का अंतर है। उस अंतराल को यदि हम पकड़ सकें, तो हम संभोग आनंद लेते हुए भी वीर्यक्षरण को रोक सकते हैं। वीर्यक्षरण को रोक लेने पर ही ब्रह्मचर्य की उपलब्धि होती है। कुछ लोग कहते हैं कि अपनी ओर से वीर्यक्षरण मत करो, यदि स्वप्नदोष आदि से वीर्य स्रवित हो, तो वह ब्रह्मचर्य माना जाता है, ऐसा कहने वाले नितांत भ्रामक बात कहते हैं। यदि कोई अपने पास हजार मुहरें रखे है, तो हम उसे धनवान् कहते हैं। वह मुहरें यदि वह स्वयं लोगों में बाँट दे अथवा चोर चुरा ले जायँ, दोनों ही स्थितियों में वह कंगाल बन जायेगा। वीर्य को रोकना ही है। कुंडलिनी योग की तांत्रिक साधना में संभोग को समाधि का आधार माना जाता है और संभोग काल में वीर्य स्रवित नहीं होने दिया जाता। जिन्होंने कभी ऐसा करने का प्रयत्न नहीं किया उन्हें यह बात असंभव-सी प्रतीत होगी, परंतु यह सत्य है ब्रह्मचर्य की उपलब्धि संभोग से होती है। बहुत से आचार्य वासना का शमन करने के लिए कामुक वातावरण, अश्लील चित्र, अश्लील बातें और यहाँ तक कि नारी का साथ त्यागने की बातें करते हैं, यह सब ढोंग है। किसी भी युग में ऐसा समय नहीं रहा जब यह सब बातें न रही हों और प्रत्येक युग में लोगों ने ब्रह्मचर्य की उपलब्धि की है, भले ही उन्होंने अपने नाम के आगे ब्रह्मचारी शब्द न लगाया हो। कोई भी साधना बिना ब्रह्मचर्य के सफल नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य संचय; आप जानते हैं वीर्य से ओज निर्माण होता है, जो मेरुदंड के मार्ग से मूलाधार से सहस्त्रार अर्थात् मस्तिष्क तक पहुँच कर मस्तिष्क को अधिक सक्षम बनाता है। मस्तिष्क सक्षम होने पर ही साधना चल पाती है अन्यथा व्यक्ति पागल हो जाता है। मस्तिष्क की क्षमता में वृद्धि करने वाले सभी पदार्थ बादाम, घी, दक्षिणी मिर्च, बूरा, मिश्री, शहद, दूध निर्मित पदार्थ, मेवाएँ, सिंघाड़ा, मखाने आदि वास्तव में वीर्य की ही वृद्धि करते हैं। वीर्य वृद्धि होने से ओज की वृद्धि होती है, जो मस्तिष्क की कार्य क्षमता को बढ़ाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'साधना' शब्द के प्रति लोगों में व्यापक भ्रमात्मक भाव हैं। साधना का सीधा अर्थ है संयम; संयम निरोध नहीं होता, नियमन होता है। आप साइकिल साधना, स्कूटर साधना सीखते हैं और बहुत-सी बातों के लिए प्रशिक्षण लेते हैं। सैनिक लोग कवायद करते हैं, चलने का ढंग सीखते हैं, ऐसा नहीं कि उन्हें चलना नहीं आता या सैन्य सेवा में आने से पूर्व वे चलते नहीं थे, परंतु उन्हें चलना सीखना पड़ता है, अपने कदमों को, अपने पैरों को साधना पड़ता है। ढोलक बाजा कोई भी बजा सकता है, परंतु सुर में ढालने के लिए बजाने का ढंग सीखना पड़ता है, संगीत की साधना करनी पड़ती है। खाने का ढंग आपको नहीं आता वह भी सीखना पड़ता है। जब कोई किसी अधिकारिक पद पर पहुँचता है, तो उस प्रशिक्षण में खाने का ढंग भी सिखाया जाता है। जब कोई योग सीखता है, तो उसे श्वास लेने का ढंग सिखाया जाता है। परंतु सैक्स, 'काम' जो संसार और सृष्टि का आधार है, जो ब्रह्मचर्य का आधार है, उसकी शिक्षा तो बहुत दूर की बात है, यदि कोई बात भी करे, तो बुरा माना जाता है। ऐसे लोग कभी वीर्य संचय नहीं कर सकते। वीर्य संचय के लिए भी प्रशिक्षण चाहिए। श्वास लेने की भी एक ट्रिक है। भोजन करने की भी एक विधि है, साइकिल चलाने की भी एक विधि है। इसी प्रकार अखंड संभोग (वीर्यक्षरण रहित मैथुन) की भी एक विधि है। आचार्य रजनीश ने इस युग में इस विधि का थोड़ा बहुत प्रचार किया था, परंतु सर्व प्रथम इसका प्रचार 'रुद्र' महेश्वर ने शिव लिंग के रूप में सतयुग में किया था और 'कुंडलिनी तंत्र' के द्वारा 'आत्मपूजन' का प्रसार किया था। सैक्स साधना, संभोग साधना में वीर्य को साधना सीखना पड़ता है। काम ज्ञान की पुस्तकों में विभिन्न प्रकार के आसनादि का वर्णन होता है, परंतु उन पुस्तकों में वीर्य रोकने की बात नहीं की जाती। वे केवल इतना संयम बताते हैं कि स्त्री को पहले स्रवित कर दें, यह तो जानवर भी करते हैं। पुरुष होकर यदि वही करना है, जो पशु करते हैं, तो सब व्यर्थ है। पशु संयम नहीं जानता। आप पुरुष हैं, आवेश को अपने हिसाब से चलाइये जैसे साइकिल चलाते समय या स्कूटर चलाते समय आपने उसकी गति को अपने हिसाब से साधा था कि कहीं आप गिर न जायँ, यहाँ भी आप अपने को इसी प्रकार साधिये कि आप गिर न जायँ, स्रवित न हो जायँ और यह बहुत सरल है। आपने अनुभव किया होगा ज्यों-ज्यों आप चरम बिंदु की ओर बढ़ते हैं आपकी शारीरिक गति के साथ-साथ श्वास की गति में वृद्धि होती जाती है। इस श्वास गति को सम बनाये रखिए। जब-जब देखें कि श्वास की गति तीव्र हो रही है उस पर ध्यान दें और श्वास गति को सामान्य लाने का प्रयत्न करें। बार-बार श्वास को साधते रहें। आपके कामानंद के समय में वृद्धि होती जायेगी। यह एक बहुत सामान्य क्रिया है और बड़ी सहज है, जो कामावेग का शमन करती है। यह उसी प्रकार की बात है, जैसे—साइकिल चलाना सीखते समय आपसे कहा जाता है कि 'सामने की ओर देखते रहो' और जब आप सीख जाते हैं, तो किधर भी देखते हुए आप साइकिल चला लेते हैं। इसी प्रकार मैथुन काल की श्वास साधना प्रारंभिक सीढ़ी वाली बात है, परंतु उसके बिना अगली सीढ़ी नहीं मिलेगी।

'मैथुन' के संबंध में वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने अपनी पुस्तक गायत्री महाविज्ञान (तृतीय भाग) में स्पष्ट कहा है—"रतिक्रिया साधारणतः एक अत्यंत साधरण क्रिया दिखाई देती है, पर उसका सूक्ष्म महत्व अत्यधिक है। उस महत्व को समझते हुए ही भारतीय धर्म में सर्वसाधारण की सुरक्षा का, हितों का ध्यान रखते हुए इस संबंध में अनेक मर्यादाएँ बाँधी गई हैं।" उनके अनुसार, "अन्नमय कोश और प्राणमय कोश के सम्मिलित मैथुन से यह महत्वपूर्ण क्रिया होती है। इस अगणित ग्रुप, अंतरंग शक्तियों के अनुलोम-विलोम क्रम के आकर्षण-विकर्षण, घूर्णन-चूर्णन, आकुंचन-विकुंचन, प्रत्यारोहण-अभिवर्द्धन, ऋषीकरण-प्रत्यावर्तन आदि सूक्ष्म मंथन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होते हैं, जिनके कारण जोड़े (दंपति) में स्त्री-पुरुष के शरीरों में आपसी महत्वपूर्ण आदान-प्रदान होता है।" आगे आचार्य जी ने विश्लेषण करते हुए लिखा है, "मस्तिष्क, हृदय और जननेंद्रियाँ शरीर में यह तीन शक्ति पुंज हैं। इन्हीं स्थानों में ब्रह्म ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि, रुद्र ग्रंथि हैं। वाम मार्ग में काली तत्व से संबंधित होने के कारण रुद्र ग्रंथि से जब शक्ति संचय करने के लिए कूर्मप्राण को आधार बनाना होता है, तो मैथुन द्वारा सामर्थ्य भंडार जमा किया जाता है। जननेंद्रिय के प्रभाव क्षेत्र में मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, बज्र मेरु, तड़ित, कच्छप, कुंडल, सर्पिणी, रुद्र ग्रंथि समान, कृकल, अपान, कूर्म, प्राण, अलम्बुषा, डाकिनी, सुषुम्ना आदि के अवस्थान हैं। इनका आकुंचन-प्रकुंचन जब तंत्र विद्या के आधार पर होता है, तो यह शक्ति उत्पन्न होती है और वह शक्ति दोनों ही दिशा में उलटी-सीधी चल सकती है। **इस विद्या के ज्ञाता जननेंद्रिय का उचित रीति से योग कर के आशातीत लाभ उठाते हैं, परंतु जो लोग इस विषय में अनभिज्ञ हैं, वे स्वास्थ्य और जीवन शक्ति को खो बैठते हैं।** साधारणतः रतिक्रिया में क्षय ही अधिक होता है, अधिकांश नर-नारी उसमें अपने बल को खोते ही हैं, पर तंत्र के गुप्त विधानों द्वारा अन्नमय और प्राणमय कोशों की सुप्त शक्तियाँ इस से जगाई भी जा सकती हैं।" आगे आचार्य जी ने स्पष्ट किया है—"वाम मार्ग में मैथुन को इंद्रिय भोग की क्षुद्र सरसता के रूप में नहीं लिया जाता वरन् शक्ति केंद्रों के जागरण एवं मंथन द्वारा अभीष्ट सिद्धि के लिए उसका उपयोग होता है। सप्त प्राणों का जागरण एवं एक ही सामर्थ्यों का दूसरे शरीर में परिवर्तन, हस्तांतरण करने के लिए इसका 'रति साधना' के रूप में प्रयोग होता है। **मानव प्राणी के लिए परमात्मा द्वारा दिये हुए अत्यंत महत्वपूर्ण उपहार इस 'रति' और प्राण के पुंज को ईश्वरीय भाव से परम श्रद्धा के साथ पूजा जाता है।** शिवलिंग के साथ शक्ति-योनि के तादात्म्य की मूर्तियाँ आमतौर से पूजी जाती हैं। उनमें जननेंद्रिय में स्थित दिव्यशक्ति के प्रति उच्चकोटि की श्रद्धा का संकेत हैं। क्षुद्र सरसता के लिए उसका प्रयोग तो हेय ही माना गया है।"

अब यदि कोई वाम मार्ग, तंत्र मार्ग अथवा पंच मकारों के नाम पर मैथुन की भर्त्सना करे, तो मुख से भले ही करता रहे, क्रियात्मक रूप में मैथुनरहित कोई नहीं रहता। पंच मकारों के मद्य, मीन, मांस को व्यक्ति भले ही छोड़ दे, परंतु मुद्रा तथा मैथुन को कोई नहीं छोड़ पाता। तो जब जीवन शैली में ही मुद्रा और मैथुन का बोलवाला है, **तो क्यों न इन दोनों मकारों का उपयोग उच्चकोटि की दिव्य शक्ति के दोहन हेतु किया जाय ?** मुद्रा का अर्थ धन भी है और इशारेबाजी भी, कुछ लोग विशेष आसनों को मुद्रा कहते हैं। वैसे आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में संभोग काल में वज्रोली। अश्विनी मुद्राओं का उपयोग किया जाता है, जो वीर्य से निर्मित ओज को मेरुदंड के मार्ग से मस्तिष्क तक चढ़ाती हैं। यही बात दूसरे रूप में कही जा सकती है कि यह मुद्राएँ मूलाधार से शक्ति का जागरण कर सहस्त्रार तक पहुँचाती हैं। कुल मिलाकर बात यह है कि तांत्रिक रति साधना में मैथुन के साथ मुद्राओं का विशेष महत्व है। जहाँ तक मद्य का प्रश्न है, मद्य स्वयं में एक 'टॉनिक' है। यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से आधे पैग से कम मात्रा में भोजन से पूर्व मद्य का सेवन करे, तो ओषधि के समान लाभ देती है। आयुर्वेद पद्धति के सभी आसव अरिष्ट आदि मद्य का ही रूप होते हैं। अब बात रह जाती है मीन और मांस की। मीन का अर्थ है मछली। बहुत से क्षेत्र जहाँ मछली-मांस खाने का प्रचलन है, वे भी साधना कर सकें इसलिए मीन मांस का तंत्र में स्थान रहा है, यूँ इनके स्थान पर कोई भी पुष्टिकर भोजन लिया जा सकता है। जिन लोगों में मद्य का प्रचलन नहीं है, उन्हें तंत्र विद्या के नाम पर मद्य सेवन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार विशुद्ध तंत्र अथवा आध्यात्मिक तंत्र में मुद्रा तथा मैथुन ही शेष रह जाती हैं। मानव प्राणी को ईश्वर ने अथवा प्रकृति ने ''रति-चारी'' बनाया है। कुछ लोग कहते हैं सृष्टि को निरंतर चलाने के लिए ऐसा किया गया है, वे गलत हैं, चूँकि सृष्टि के चलाने के लिए अन्य पशुओं के समान मानव को भी 'सीजनल' (अर्थात् एक विशेष ऋतु के समय मैथुन चाहने वाला) बनाया जा सकता था। कुत्ते, भैंस, गाय तथा अन्य पशु आदि सभी सीजनल हैं और सीजन निकलने के पश्चात् वे मैथुन रत नहीं होते। मनुष्य के लिए तो तीन-चार वर्ष के अंतराल पर 'सीजन' की आवश्यकता पड़ती, यदि सृष्टि चलाना ही उद्देश्य होता, परंतु यहाँ तो मनुष्य दिन में चार बार तैयार है। निश्चय ही प्रकृति गलत नहीं है, ईश्वर गलत नहीं है। गलत आप हैं, जो अपने पशुपन से ऊपर नहीं उठ रहे।

अब समस्या उनकी है, जो पत्नी रहित हैं। तांत्रिक गुरुओं ने इस समस्या का हल ढूँढ़ने के लिए तांत्रिक कार्यों में पत्नी के स्थान पर 'नारी' शब्द लगा दिया है और किसी भी नारी की सहायता लेने की बात की है, परंतु यह बात असामाजिक तो है ही, व्यभिचार को भी बढ़ावा देती है। परनारी गमन अथवा वैश्यागमन बहुत से रतिज रोगों उपदंश, प्रमेह, एड्स आदि का कारण बन जाता है। दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि आध्यात्मिक स्तर के संभोग वाली बात सहज सुलभ बनी रहती है। इसके लिए कुछ लोग एक नारी को अपनी स्थायी मित्र बनाकर काम चला लेते हैं, परंतु यदि उसे पत्नी बना लिया जाय, तो वह मित्रता समाज मान्य भी हो जाती है।

जो पूर्णतः नारी रहित हैं अथवा नारी रहित रहने के लिए विवश हैं, उन्हें पूर्ण ब्रह्मचर्य उपलब्धि के लिए प्रतिदिन की साधना में 'शक्ति चालिनी मुद्रा' को उसी प्रकार स्थान देना होगा, जैसे—संभोग साधना वाले वज्रोली / अश्विनी मुद्राओं का उपयोग करते हैं। यूँ इन सभी मुद्राओं तथा साधनाओं का क्रियात्मक ढंग मैंने अपनी पुस्तक ''क्रियात्मक कुंडलिनी तंत्र (सहज अष्टांग योग सहित) प्रकाशक : दीप पब्लिकेशन्स हॉस्पीटल रोड, आगरा'' में विशद रूप से दिया है। इच्छुक साधक वहाँ देख सकते हैं। नारी रहित साधक अथवा जो बिना नारी के सहयोग के साधना करना चाहते हैं, वे वासना के जोर से बचने के लिए ताकत देने वाली चीजें खाना बंद कर देते हैं, भोजन में कमी कर देते हैं, वीर्यहीन बन जाना चाहते हैं, परंतु वे नहीं जानते कि वे कितना बड़ा अहित करने जा रहे हैं। वे धीरे-धीरे अपने पौरुष को मार रहे हैं अपने बल और सामर्थ्य क्षीण कर रहे हैं। पौरुषहीनों और वीर्यक्षीणों की साधना कभी सफल नहीं होती। पौरुषवान और वीर्यवान ही सर्वत्र पूजित होता है चूँकि वह धीर, गंभीर होता है, शेष तो बक-बक और प्रदर्शन में लगे रहते हैं कि कोई उन्हें जाने कि वे भी कुछ हैं। और जो वास्तव में धनी हैं वह अपने को छुपाने का प्रयत्न करता है कि लोग उसे लूट न लें। प्रदर्शन की चकाचौंध में लोग भागते भी हैं और बहुत से तो तन, मन, धन से लुटने के पश्चात् भी वापस नहीं लौट पाते। ईश्वर ऐसे लोगों की आत्मा को शांति दे और मैं कह भी क्या सकता हूँ ?

अब यमों की शृंखला में पाँचवा क्रम 'सत्य' है। अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य के प्राकृतिक नियमों पर चलने वाले का जीवन सहज सरल द्वंद्व द्वेष रहित 'सत्य जीवन' हो जाता है। जिसने संसार को रंगमंच और जीवन को लीला बना लिया हो, उसके लिए 'झूठ' कुछ नहीं रहता सब सत्य हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नियमों की शृंखला पर ध्यान दें, तो नियम भी पाँच हैं, जिनमें प्रथम है ''शौच''। शौच अर्थात् शुचिता, स्वच्छता, सफाई। यूँ तो तन, मन, धन और फिर प्रत्येक की आंतरिक सफाई और बाहरी सफाई आदि मिलाकर बहुत खंड बन जाते हैं, नेती, धोती, वस्ति आदि क्रियाएँ भी इन्हीं में जुड़ जाती हैं, कुदृष्टि, कुविचार, काला धन, गोरा धन आदि बहुत बातें आ जाती हैं, परंतु सामान्य सहज भाव में प्राकृतिक शुचिता पर ध्यान देकर उसका अनुशासनात्मक पालन कर लिया जाय, तो योगी का कार्य चल जाता है। संतोष द्वितीय सूत्र है, कहा भी है 'संतोषी सदा सुखी', परंतु संतोष का अर्थ कायर अथवा कर्महीन बन जाना नहीं है। पौरुष में कमी नहीं चाहिए, फिर जो मिले उसमें संतोष करना है। उद्वेग असंतोष उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों को समय रहते बचाने का प्रयत्न करना है। तीसरा नियम है तपस्या का। तपस्या का अर्थ शरीर को कष्ट देना अथवा दूसरों को कष्ट में डाल देना नहीं है। विभिन्न प्रकार के बहुत से मंत्रों को जपना, पूजा पाठ करना भी तपस्या नहीं है। सहज सुगम तपस्या है यम नियमों का पालन करते हुए सरल जीवन जीना। ऐसे व्यक्ति को शरारती तत्व बहुत चोटें देते हैं, उन्हें झेलना तपस्या है। जहाँ तक मंत्र पाठ और पूजन विधान की बात है, व्यक्ति को केवल तीन प्रकार के मंत्र और उनसे संबंधित पूजन आदि करने चाहिए। प्रथमतः गुरु मंत्र, जो साधक के नाम के ग्रह के आधार पर अथवा जन्म के ग्रह के आधार पर किसी गाइड या गुरु द्वारा छाँटा गया हो। दूसरा ऐसा मंत्र, जो वर्तमान ग्रह दशा की स्थिति के आधार पर विकृत ग्रह के दोष निवारण हेतु छाँटा गया हो। तीसरा ऐसा मंत्र जो किसी विशेष प्रयोजन के निमित्त सोचा गया हो। सामान्य जीवन शैली में अधिक झंझटों की आवश्यकता नहीं है। 'स्वाध्याय' नियमों की शृंखला में चौथा है। स्वाध्याय दो प्रकार का है—वेद, पुराण, शास्त्र अथवा अन्य ज्ञानवर्धक पुस्तकों का अध्ययन। यहाँ बात केवल पाठन की नहीं, अध्ययन की है जिसका अर्थ है पढ़ना और समझना। उस अध्ययन के आधार पर अपने स्वभाव से तुलना करना, जिसके लिए स्वाध्याय का अर्थ 'स्वयं का अध्ययन' मानकर चलना होगा। ऐसे स्वाध्याय के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आधार पर पुनः बहुत से खंड हो जाते हैं। सहज स्वााध्याय यही है कि ज्ञानवर्धन करें और अपने जीवन में ढालें। अब अंतिम नियम है ईश्वर प्राणिधान। ईश्वरार्पण ब्रह्मार्पण तथा ईश्वर प्राणिधान सब पर्यायवाची ही हैं। कर्म बंधनों से आत्मा को मुक्त बनाये रखने में अर्पण भाव बड़ा महत्वपूर्ण योग देता है। यदि किसी कार्य को ईश्वर, समाज अथवा देश का दिया हुआ कर्तव्य कर्म मानकर पूरा किया जाय, तो कर्ता पर कर्म का बंधन नहीं लगता। इसी प्रकार यदि कोई कार्य करके ईश्वरार्पण कर दिया जाय, ''तेरा कार्य तुझको अर्पित'' तब भी व्यक्ति बंधन से बचता रहता है। कर्म बंधन ही आत्मा के ऊपर आवरण बन जाते हैं, जिससे आत्मिक शक्ति में कमी आती है। यदि आत्मा को निर्लेप अथवा निदावरण बना लिया जाय, तो पूर्ण ज्योति एवं शक्ति प्रकट हो जाती है। यूँ, आत्मा पर दो प्रकार के बंधन लगते हैं—कर्मबंधन कर्मगत भावना के कारण लगते हैं, दूसरे हैं शरीर बंधन, जो वर्तमान शरीर के संबंधों के कारण लगते हैं। शरीर बंधनों से बचने के लिए मैं—मेरा की भावना का त्याग करना होता है। 'कर्म बंधन' मंत्र जप आदि के द्वारा विभिन्न ग्रहों की शक्ति का उपयोग करके हटाये जा सकते हैं, परंतु 'शरीर बंधन' आत्मा के नारंगी आकाश में पहुँचने पर ही नष्ट होते हैं, इसलिए मैं—मेरा से बचना अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। कर्म-योनि को भोग-योनि (दंड-योनि) बना देने वाले शरीर बंधन ही होते हैं। यदि कर्म बंधन कम हों, तो आत्मा का नारंगी आकाश तक पहुँचना संभव है, इसलिए हमें 'कर्म बंधन' दूर करने और उनसे बचे रहने का प्रयत्न ही करना है, जो ईश्वर प्राणिधान से संभव है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन में आई हुई बात को प्रकट करना, क्रिया में ढालना अथवा और अधिक मनन करने का निर्णय लेना बुद्धि का कार्य है। बुद्धि बहुत प्रकार के उतार-चढ़ाव, संगति-विसंगति अब तक के संचित अनुभव और भविष्य की संभावनाओं का हिसाब-किताब लगाते हुए कोई निर्णय लेती है इसलिए इसे 'विज्ञानमय कोश' के अंतर्गत माना जाता है।

जब अन्नमय कोश युक्त 'भौतिक शरीर' स्वस्थ हो, सामाजिक मर्यादाओं का एक खेल के रूप में, लीला के रूप में पालन हो रहा हो, प्राणमय कोश के द्वारा शरीर की आंतरिक क्रियाएँ समय और आवश्यकतानुरूप चल रही हों, यम नियम के समुचित पालन से मनोमय कोश आवश्यक विचारधारा का प्रवाह कर रहा हो, विज्ञानमय कोश तनाव रहित बुद्धि से आवश्यक निर्णय ले रहा हो, तो फिर व्यक्ति के पास शेष जो बचता है वह आनंद ही आनंद है। ऐसे व्यक्ति के हृदय में चिति शक्ति विलास करती है। चित्त का क्षेत्र ही आनंदमय कोश कहा जाता है। इस प्रकार जब हम शुद्ध आत्मा "ब्रह्म' की ओर से देखते हैं, तो पंचकोश का चित्र इस प्रकार बनता है—

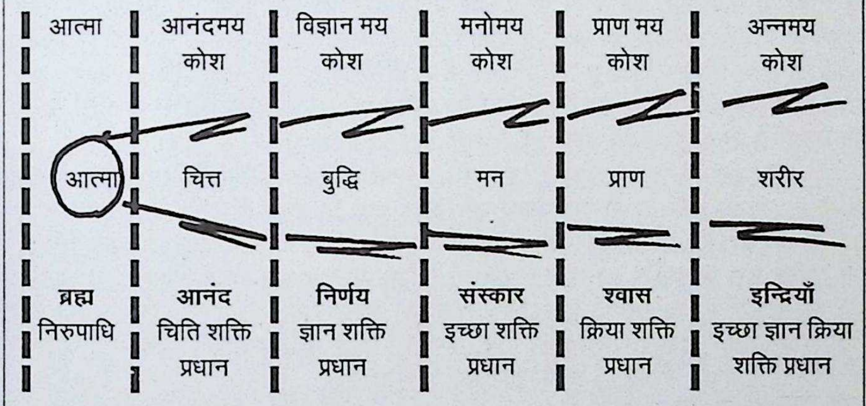

चित्र

○○

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

6 प्राणायाम बनाम स्वरसाधना

बाह्य प्रकृति तथा अंतः प्रकृति के बीच एक कड़ी है, जिसे योगी लोग प्राण कहते हैं। सामान्यजन प्राण को जीवन और मृत्यु के बीच की कड़ी मानता है। प्राण शक्ति व्यक्ति को जीवन तो देती है, बहुत से बाह्य प्रभावों के लिए भी प्रयुक्त होती है। स्वर योगी प्राण ऊर्जा से अपने शरीर की रक्षा भी करते हैं और इस ऊर्जा से दूसरों पर अपना प्रभाव भी डालते हैं। बहुत से चिकित्सक प्राण के अभ्यास द्वारा रोग निवारण करते हैं। प्राण के अभ्यास को योग की भाषा में 'प्राणायाम' कहा जाता है। प्राणायाम नासिका के द्वारा किया जाता है। नासिका के नासारंध्र प्राण वायु को अंदर जाने और बाहर आने का मार्ग बनते हैं, जिसे हम 'स्वर' कहते हैं और इस आधार पर स्वर दो प्रकार के कहे जाते हैं दाहिना स्वर तथा बायाँ स्वर । स्वरों के द्वारा प्राप्त प्राण वायु को प्राण ऊर्जा में परिणित होने में, डॉ० पिच अनुसार, "एक छोटे मोटे विद्युत्गृह के समान कार्य होता है। यदि स्वरों का उपयुक्त रूप से उपयोग करना आ जाय, तो बिना कुछ व्यय और श्रम के बहुत कुछ पाया जा सकता है।

प्राणशक्ति एक ऐसी ऊर्जा है, जो समस्त स्थावर जंगम में भिन्न-भिन्न मात्राओं में पाई जाती है। मानव शरीर में भी एक प्रकार की विद्युत् प्रवाहित होती है, जो कि इस प्राण ऊर्जा का ही एक अंश है। प्राणशक्ति विश्व में व्याप्त है इसे नासिका के द्वारा ग्रहण किया जाता है। जो व्यक्ति इस प्राणशक्ति को उचित मात्रा में उचित रीति से इसे अपने अंदर खींच लेता है वह अपेक्षाकृत अधिक प्रसन्न, उत्साहित, तेज पूर्ण और जानदार दिखाई देता है और जो पर्याप्त अनुपात में इस प्राणशक्ति को नहीं ग्रहण कर पाता, वह निस्तेज, उदास और आलसी बना रहता है, प्रकट में भले ही वह मोटा-ताजा दिखता हो।

आदिकाल से ऋषियों ने प्राण ऊर्जा को विकसित करने के लिए 'स्वरविज्ञान' की खोज की है। आज का चिकित्सा विज्ञान प्राणवायु को बहुत सतही रूप से देखता है जब कि स्वरविज्ञान इस प्राणतत्व के बारे में बहुत गहराई से विचार करता है। यदि किसी बच्चे को चोट लग जाती है, तो वह माँ के पास भागता है अथवा साथी बच्चे ही उसे चोट के स्थान पर फूँक मारते हैं और साँत्वना देते हैं और घायल बच्चा आराम महसूस करता है। आप कहेंगे यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। आपका यह सोचना भी नितांत ऊपरी बात है। गहराई में आप जायें, तो आप पायेंगे कि यह शरीर की विद्युत् ऊर्जा का खेल था। प्रत्येक प्राणी में ऐसी प्रबल रोग निवारक शक्ति होती है। किसी रोगी के सिर पर आप प्यार भरा हाथ फेरकर देखिये, रोगी को बहुत आराम अनुभव होगा। 'प्यार भरा हाथ' यहाँ महत्वपूर्ण बात है। जब आप किसी के प्रति प्रेमपूर्ण होते हैं, तो शरीर की समस्त विद्युत् ऊर्जा की धारा प्रेमी की ओर को बहने लगती है।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना समीचीन होगा—इस प्रेम का सैक्स से संबंध नहीं है। प्रेमपूर्ण व्यवहार कभी आक्रामक नहीं होता जबकि सैक्स व्यवहार सदैव आक्रामक होता है अतः सैक्स कभी भी हिंसक हो उठता है, परंतु प्रेम पूर्णतः अहिंसक व्यवहार है। बड़े-बड़े संतों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ने माना है ''**ढाई आखर प्रेम का पढ़े सौ पंडित होइ**'' आध्यात्मिक प्रेम सैक्स रहित है। यहाँ आप लोग आचार्य रजनीश के लेख '**संभोग से समाधि**' से भ्रमित न हों चूँकि जिस संभोग को समाधि के लिए वे उपयुक्त मानते हैं, उसमें सैक्सुअलिटी अर्थात् कामुकता नहीं है। वह 'संभोग' बंग, कलिंग, अजंता, ऐलौरा, कोणार्क आदि में उत्क्रमित प्रस्तर प्रतिमाओं के समान पवित्र और सर्व वरेण्य है। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि वह देवत्वपूर्ण संभोग कला हमारे हाथ से निकल गई और उसके स्थान पर कुत्ते-बिल्लियों जैसा पशु संभोग पाकर ही हम अपने को तृप्त समझ लेते हैं। यूँ इस विषय पर पुस्तक ''क्रियात्मक कुंडलिनी तंत्र'' तथा ''कुंडलिनी तंत्र रहस्य'' अपने में पूरी हैं, अतः पुनर्विवेचन युक्ति संगत नहीं होगा।

आप सभी का नित्य प्रति का अनुभव है कि चुंबन, आलिंगन, हाथ मिलाना, चरण स्पर्श करना अथवा गले मिलना आदि क्रियाएँ दोनों ही व्यक्तियों में प्रसन्नता और एक प्रकार की तृप्ति की भावना का संचार करती हैं चूँकि इन क्रियाओं में एक ही प्राणशक्ति दूसरे के शरीर में प्रवाहित होकर एक स्तर पर आने का प्रयास करती है। जो लोग पास-पास रहते हैं उनकी प्राण शक्ति समय-समय एक-दूसरे में प्रवाहित होती रहती है, बिना स्पर्श के भी; परंतु जब दो व्यक्ति दूर-दूर हो जाते हैं, तो उनकी विद्युत् शक्ति में पर्याप्त अंतर आ जाता है और जब वे मिलते हैं, तो वह प्राण ऊर्जा एक स्तर पर आने लगती है। ज्यों ही ऐसी ऊर्जा समान स्तर पर आ जाती है दोनों व्यक्तियों की पकड़ ढीली पड़ जाती है, चाहे वे गले मिल रहे हों अथवा हाथ मिला रहे हों, चरण स्पर्श कर रहे हों अथवा चुंबन कर रहे हों। सैक्स के चुंबन की बात अलग हैं वहाँ रसास्वादन है, इस प्रेमपूर्ण चुंबन में रस नहीं, अमृत की धारा है—अमृत अर्थात् ऊर्जा।

डाक्टर और वैद्य लोग नाड़ी विज्ञान को मान्यता देते हैं। उनके अनुसार शरीर का संपूर्ण परिचालन नाड़ी तंत्र के द्वारा किया जाता है। आयुर्वेद कहता है, ''नाड़ियों के अंदर वायु घूमता है।'' यह वायु वास्तव में विद्युत् ऊर्जा है, जो ई० तथा एच० मो्डस (इलैक्ट्रोस्टेटिक इलैक्ट्रोमेगनेटिक वेव्स) के रूप में नाड़ियों में गोल वेवगाइड के सिद्धांतों के आधार पर गति करती है। यही विद्युत् तरंगें बिना नाड़ी के भी आकाश में गति करती हैं। एक ट्रांसमीटर रेडियो से दूसरे रिसीवर रेडियो सैट तक पहुँचने वाली तरंगों के बारे में सभी जानते हैं। ऐसी ही आत्मिक तल की तरंगें आकाश में गति करते हुए एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती हैं। शरीर के चारों ओर घेरा बनाये हुए 'तेज' को लोगों ने देखा है, जिसे हम औरा (Aura) कहते हैं। योग अभ्यासी तो रेकी करने वाले अथवा मार्जन करने वाले योग चिकित्सक तथा मनोचिकित्सक की उँगलियों के सिरों पर चिनगारियाँ निकलते देख सकते हैं और जो अभ्यासी नहीं हैं, वे भी इसकी ऊष्मा अथवा कंपन को अनुभव कर पाते हैं।

सामान्यतः मस्तिष्क प्रत्येक समय कुछ न कुछ सोचता रहता है अर्थात् मस्तिष्क रेडियो स्टेशन से विचारों का ट्रांसमिशन प्रत्येक समय होता रहता है यदि इन विचारों के साथ स्वरविज्ञान के आधार पर प्राण ऊर्जा को सम्मिलित कर दिया जाय, तो यह विचार प्रबल हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसा कि सामान्य गाना गाने वाले के स्वर को केरियर फ्रीक्वेंसी के साथ मोडुलेट कर देने पर होता है। सामान्य गाना अधिक से अधिक एक किलोमीटर तक सुन लेंगे, परंतु मोडुलेशन के पश्चात् सीलोन के गाने आप काश्मीर में भी सुन लेते हैं। 'वॉइस ऑफ अमेरिका' को 'इंडिया' में सुन लेते हैं। विचारों की इस प्रबलता का आधार स्वरसाधना होती है। प्रत्येक प्राण चिकित्सक इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही रोग की चिकित्सा करता है और अपने स्वास्थ्यदायी प्रबल विचारों के साथ रोगी को मार्जन तथा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्वासोच्छ्वास आदि की क्रियाएँ करता है। ऐसे विचार काल्पनिक अथवा स्वप्न के समान नहीं होते। मनोवैज्ञानिकों ने इस संबंध में बहुत शोध कार्य किया है। हिप्नाटिज्म तथा मेस्मरिज्म के ज्ञाता भी ऐसे ही प्रबल विचारों का उपयोग करते हैं।

सूर्य की एक इंच स्थान पर फैली धूप की किरणों को एक लेंस के द्वारा पुंजीभूत करके देखें, तो कागज जलने लगता है। इसी प्रकार विचारों को एकत्र करके, पुंजीभूत करके किसी ओर को प्रसारित करने पर प्रकृति के सामान्य कार्य व्यवहार में हलचल उत्पन्न हो जाती है। यदि ऐसी प्राण ऊर्जा स्वरविज्ञान के आधार पर रोगी के अंग पर डाली जाय, तो रोगों के बीजाणु बिखरने लगते हैं। संभव है आपने ध्यान दिया हो कि किसी के चोट लग जाने पर हम उसे सहलाते हैं और उस सहलाने से रोगी को आराम मिलता है। यदि सहलाने वाला कोई नौकर हो, तो इतना लाभ नहीं मिलता जितना कि सहलाने वाला कोई प्रेमी या नजदीकी रिश्तेदार हो उससे लाभ मिलता है चूँकि नौकर में वह प्रेम भाव नहीं होता, जो एक प्रेमी में रहता है। यह प्रेम की धारा ही प्राणमृत के अणुओं की धारा है, जो लाभ देती है। सिर में रक्त एकत्र हो जाने पर मार्जन किया जाता है, जिससे पीड़ा में आराम मिलता है।

इस प्रकार प्राण के साथ जिस अमृत की धारा की बात की जा रही है वह प्रेम स्त्रोत मस्तिष्क से संबंधित है, जो कि विचारशक्ति का केंद्र है। प्रो० एलिशाग्रे ने विचारशक्ति की गति को चार हजार से आठ हजार पद्म मील प्रति सेकंड बताई है जबकि प्रकाश की गति प्रति सेकंड एक लाख छियासी हजार मील ही आँकी गई है। इस विचारशक्ति को कैरियर बनाती है हमारी प्रेम धारा, जैसे कि रेडियो फ्रीक्वेंसी को आपके गाने की आवाज अपना केरियर बनाकर सीलोन से काश्मीर और अमेरिका से इंडिया आने में देर नहीं लगाती। विचारशक्ति एक सूक्ष्म शक्ति है। इसे आप इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यह सूक्ष्म शरीर की शक्ति है। सूक्ष्म शरीर 'मन' का प्रतिरूप है और आप जानते हैं कि जिसका 'मन' कच्चा पड़ जाता है, उसे संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता। कहा भी है—मन चंगा तो कठोटी में गंगा। आप लोगों ने अपने घर में आटा गूँदने वाली परात देखी होगी। आजकल तो पीतल अथवा स्टील की परातें घरों में प्रयुक्त होती हैं, पुराने जमाने में लकड़ी की परातें चला करती थीं, जिन्हें काठ की बनी होने के कारण कठोटी कहा जाता था। तो कहावत का अर्थ है कि यदि मन स्वस्थ हो, प्रसन्न हो तो कठोटी भर पानी में नहाकर ही आदमी इतना तृप्त हो सकता है कि उसे लगे कि वह गंगा नदी में नहा कर आ गया। यदि मन कच्चा पड़ जाता है या कमजोर पड़ जाता है, तो व्यक्ति के अंदर चिड़चिड़ापन, घबराहट, आत्मग्लानि, निराशा आदि सूक्ष्म शरीर संबंधी या मन संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसे लोगों को इसीलिए मनोचिकित्सक (साइकोलोजिस्ट) के पास ले जाया जाता है। चूँकि सूक्ष्म शरीर की दुर्बलता के कारण व्यक्ति बाहरी झटके नहीं झेल पाता। परिस्थितियों का हलका-सा झटका भी मस्तिष्क को उद्विग्न करके संबंधित पेशी और नाड़ियों को आक्रांत कर देता है।

स्वरसाधना द्वारा जिस प्राणशक्ति को सिद्ध करने की हम बात कर रहे हैं, वह मात्र मस्तिष्क शक्ति नहीं है यह मानवीय विद्युत् है, जो एक स्थान पर न रहकर समस्त शरीर में व्याप्त रहती है। डॉ० अलबर्ट के अनुसार मस्तिष्क केवल तर्क और बुद्धि का स्थान है। स्मरण शक्ति का स्थान डॉ० मोडस्ले नाड़ी चक्रों में मानते हैं, जो हमारे दैनिक कार्य-कलापों को क्रमवार कराती हैं। डॉ० हेमण्ड प्रेरणा का संबंध भी मस्तिष्क से नहीं मानते। बहुत से छोटे जीवों में मस्तिष्क नहीं होता, परंतु वे प्राणशक्ति युक्त रहते हैं। मनुष्य शरीर की प्राण ऊर्जा का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विधिपूर्वक नियमन करने से अद्‌भुत शक्ति उत्पन्न होती है इसलिए प्राण चिकित्सा का प्रयोग सफलतापूर्वक होता है। यूरोप, अमेरिका के अनेक बड़े-बड़े अस्पतालों में इस विधि से चिकित्सा की जाती है, जिसे वे लोग मेन्टल हीलिंग, रेकी, एब्सेन्ट हीलिंग, क्रिश्चियन साइंस, न्यूथॉट थेरेपी, मेस्मरिज्म, हिप्नोटिज्म, इलैक्ट्रीकल बायलोजी, साइकोथेरेपी आदि नामों से संबोधित करते हैं।

प्राण चिकित्सा का ज्ञान ऋषि-मुनियों को तो बहुत प्राचीन काल से रहा है और संसार के सभी भागों में इस चिकित्सा द्वारा रोगों के ठीक होने के उदाहरण मिल जाते हैं। ग्रीस के एक विद्वान् 'सोलन' ने छठवीं शताब्दी में कई रोगी प्राण चिकित्सा द्वारा ठीक किये थे। योगी जीयस ने नील नदी के तटवासियों को प्राण ऊर्जा द्वारा रोग मुक्त किया था। 461 ईसा पूर्व में डॉ० हिपोक्रेट्स बहुत ऊँचे मनोचिकित्सक रहे हैं। एस्क्लिपिडियस ऐसे रोगों के लिए ग्रीक में प्रसिद्ध रहे हैं। घायलों को स्वस्थ करने में प्राणशक्ति का अद्‌भुत हाथ रहता है। ओषधियों का प्रभाव सामान्यतः स्थूल रहता है और वे स्थूल शरीर तक ही अपना प्रभाव दे पाती हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले और जन्म जन्मांतरों से चले आ रहे रोगों को मुक्त करने में सूक्ष्म ओषधि विधान की आवश्यकता पड़ती है। होम्योपैथी और आयुर्वेद में सूक्ष्म ओषधि प्रक्रिया के लिए शक्ति कृत ओषधियों का उपयोग डायल्यूशन्स तथा भस्मों के रूप में क्रमशः किया जाता है, परंतु यह भी सूक्ष्मता के उस स्तर तक नहीं पहुँचती, जहाँ तक सूक्ष्म रोगों की जड़ें पहुँच जाती हैं। ऐसे स्थलों पर सूक्ष्म तरंग विधान ही अपना प्रभाव दिखाता है। यीशु मसीह ने विश्वव्यापी ऊर्जा (रेकी) उपचार *प्रक्रिया से असंख्य रोगियों का रोग मुक्त किया था। आयरलैण्ड के न्यायाधीश ग्रीटेक्स ने भी सन् 1700 में बहुत से असाध्य रोगियों की रोग मुक्त किया था। डा० मेस्मर ने तो एक व्यवस्थित चिकित्सा पद्वति "मेस्मरिज्म" की खोज में ही अपना जीवन अर्पित कर दिया। यूनान के पाइथागोरस वन्य जंतुओं को पालतू बना लेने और लोगों की पीड़ा मुक्त करने के लिए ईसा से 500 वर्ष पूर्व प्रसिद्व रहे हैं। क्रेस्पेसियन का राजा अंधेपन तक को दूर कर देता था। पिन्हस, हेडरियन, ओलफ आदि बहुत से राजा महाराजा लोगों को छूकर उन्हें पीड़ा मुक्त करने के लिए प्रसिद्व रहे हैं। इंग्लैण्ड के पादरी डरूउड स्काटलैण्ड के मक्सबेल, हेहल, इस्कुलेपियस आदि बहुत से लोग इस विद्या के उपयाग करने वालों मे गिने जाते हैं।

आम धारणा है कि जितना ही किसी क्रिया में शब्दाडंबर हो और पेचीदा विधि हो यह उतनी ही अधिक महत्वपूर्ण होगी, परंतु यह धारणा गलत है। प्रकृति का नियम है कि जिस वस्तु की जितनी अधिक आवश्यकता है उतनी ही सरलता और सहजता से वह प्राप्य है। वायु सबसे आवश्यक है जीवन के लिए जो सहज सुलभ है। प्राण उससे भी अधिक आवश्यक है जो बड़ी सहज रीतियों से प्राप्त किया जाता है। भोजन के रसों के स्वाद की चर्चा आप कर सकते हैं उतनी ही सरलता से जल के रस की चर्चा नहीं कर पायेंगे कि किस झरने, कुएँ या नदी का पानी मिश्रित करके आपको दिया गया है। वायु की बात उससे भी सूक्ष्म है यहाँ तक कब साँस अंदर गई और कब साँस बाहर आई यह ध्यान देना भी कठिन हो जाता है। प्राण तत्व उससे भी सूक्ष्म होता है अतः उसके लिए सहज और सरल अभ्यासों से ही काम चल जाता है।

**रेकी (स्पर्श ऊर्जा उपचार) के विषय में मेरी लिखी क्रियात्मक पुस्तक इच्छुक सज्जन दीप पब्लिकेशन, आगरा से मँगा सकते हैं।*

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

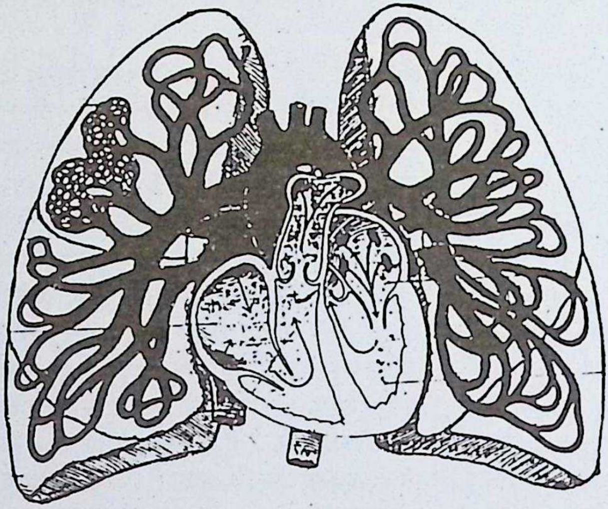

चित्र

आप कह सकते हैं कि जो सहज रूप में प्राप्त है उसके लिए अभ्यास क्यों ? आप भोजन करते हैं सामान्य रूप में, एक महोदय जी भोजन करते हैं, तो भोजन पर टूट पड़ते हैं, और मरभुक्खे की तरह खाते हैं; एक बड़े चबा-चबा कर स्वाद ले-ले कर खाते हैं। इन सभी के भोजन करने के तरीके आधार पर भोजन की पुष्टता में अंतर रहेगा, यहाँ तक कि वही भोजन एक को पुष्टि देगा और दूसरे का पेट खराब कर देगा, अंतर केवल भोजन करने के तरीके का है। इसी प्रकार प्राण संबंधी क्रिया में विशेषता उत्पन्न के लिए कुछ विशिष्ट विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

श्वास और प्राण

जहाँ तक हो सके हमें गहरी और पूरी साँस लेनी चाहिए। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जो श्वास हम सामान्यतः लेते हैं, उससे फेफड़ों का चौथाई भाग भी पूरी तरह नहीं फूलता। गहरी श्वास लेने पर भी फेफड़े का चौथाई भाग बिना फूला रह जाता है। पूरी श्वास भरने से वायु फेफड़े के प्रत्येक कोष में जाकर अपेक्षाकृत अधिक रक्त में मिश्रित होती है और अधिक मात्रा में रक्त को शुद्ध करती है। उथली श्वास फेफड़े के बहुत कम कोषों तक ही जा पाती है फलतः फेफड़ों द्वारा प्राणवायु, का बहुत कम उपयोग हो पाता है। जब रक्त श्वास वायु के संपर्क में आता है, तो प्राणवायु ग्रहण करता है और शरीर के विभिन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोशों से लाये गये मल रूपी कार्बन आदि को कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में प्रश्वास द्वारा शरीर से बाहर फेंक दिया जाता है। यह प्राण शोषित रक्त हृदय के द्वारा शरीर की धमनियों में पंप कर दिया जाता है, जिससे वह शरीर के अंगों के रक्त कोशों तक पहुँचकर वहाँ प्राण वायु अर्थात् ऑक्सीजन दे सके और उनका कार्बन स्वयं ले सके। यदि शरीर में ऑक्सीजन की कमी आ जाय, तो इसका प्रभाव पाचक शक्ति पर भी पड़ता है और व्यक्ति की जठराग्नि मंद पड़ जाती है। जठराग्नि मंद हो जाने से शरीर के अन्य अंगों में भोजन की कमी आने लगती है, जो अन्य बहुत-सी विघ्न-बाधाओं को निमंत्रण दे देती है।

स्वर साधना वाले व्यक्ति को सामान्यतः पूरी गहरी श्वास लेनी चाहिए। सामान्य धीरे-धीरे पूरी श्वास भरना और फिर उसी क्रम में प्रश्वास द्वारा पूरी वायु बाहर निकालना आवश्यक है। श्वास प्रश्वास में कोई झटका या उतावलापन प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है। वक्ष भरपूर चौड़ा होने तक फेफड़ों को श्वास से भरना और फिर प्रश्वास के रूप में फेफड़ों को पूरा खाली कर देना ही आपका कार्य है। केवल इतना करने से ही फेफड़े स्वस्थ रहते हैं, रक्त शुद्धि होती है, अंग प्रत्यंग में चैतन्यता आती है, पाचन शक्ति ठीक रहती है और इन सब के परिणामस्वरूप व्यक्ति दीर्घ जीवी और आरोग्य रहता है और क्या चाहिए ? श्वास विज्ञान के इस तथ्य पर विचारने से स्पष्ट हो जाता है कि पाठकों को अभी इसी क्षण में गहरी श्वास लेने और गहरी श्वास छोड़ने का अभ्यास प्रारंभ कर देना चाहिए।

श्वास सदैव नाक से ही लेनी चाहिए। नाक से फेफड़ों तक श्वास वायु को पहुँचाने वाली नली वायु का संशोधन व परिमार्जन करके उसे फेफड़ों के योग्य बनाकर फेफड़ों तक पहुँचाती है, जबकि मुख में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होती। नासारंध्रों में छोटे-छोटे बाल रहते हैं, जो छलनी बनकर धूल, कार्बन आदि के प्रदूषित कणों को अपने में अटका लेते हैं। आगे नासिका के गीलेपन में रहा बचा श्वास का कचरा फँसा रह जाता है और नासिका की दीवार से चिपक जाता है। इसके पश्चात् श्वास को इतनी लंबी यात्रा करनी पड़ती है कि उसका तापमान फेफड़ों के उपयुक्त हो जाता है। आपने देखा होगा कि जो व्यक्ति रात में मुख को खोलकर सोते हैं प्रायः उनके मुख से दुर्गंध भी आती है और स्वाद भी कड़ुवा होता है, साथ ही मुँह शुष्क हो जाता है। यदि रोगी व्यक्ति मुख से श्वास ले, तो दूसरों को तो अपने रोग का शिकार बनाता ही है, स्वयं भी देर से ठीक होता है। साधारण संगीत गायन आदि से भी फेफड़ों में अच्छी मजबूती आती है।

जहाँ तक संगीत का प्रश्न है यह कंठ, हृदय, पसली, यकृत, आँतें, आमाशय आदि को अच्छा व्यायाम देता है, साथ ही लयपूर्वक बोली गई या वाद्य द्वारा तरंगित तरंगें स्नायु तंतुओं को प्रभावित करती हैं। बहुत से धार्मिक आयोजनों में भजन गाने, शंख बजाने तथा अन्य गायन वाद्य नृत्य आदि का कार्यक्रम होता है यह सब कंठ तथा फेफड़ों आदि को व्यायाम का लाभ तो देते ही हैं, प्राणायाम का लाभ भी देते हैं। यदि गायन वाद्य नृत्य आदि का कार्यक्रम प्रतिदिन की साधना का अंग बनाया जा सके, तो बहुत अंशों में लयबद्ध प्राणयाम का लाभ अनायास ही भक्त को मिलता रहता है।

नाड़ियाँ और पंच प्राण

आयुर्वेद तथा योगशास्त्र के आधार पर ओजस तथा रेतस अर्थात् महाप्राण एवं लघु-प्राण माने जाते हैं। पाँच महाप्राण अर्थात् ओजस होते हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान और पाँच लघु प्राण अर्थात् रेतस होते हैं—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनंजय। आपने देखा होगा जब कोई नहर या नदी बहती है, तो उसमें स्थान-स्थान पर भ्रमर पड़ते हैं, जब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वायु प्रवाहित हो रही होती है, तो उसकी धारा में भी भ्रमर-सा पड़ता है जो गर्द गुबार को गोल-गोल घुमाता हुआ ऊपर को उठता है, जिसे सामान्य भाषा में चक्रवात कहते हैं, ऐसे ही भ्रमर शरीर में प्राण ऊर्जा प्रवाहित होते समय स्थान-स्थान पर पड़ते हैं। यह ओजस और रेतस वही भ्रमर क्षेत्र हैं। अब आपने ध्यान दिया होगा कि नदी में जब भ्रमर पड़ता है, तो ऊपर वह चौड़ा होता है और नीचे की ओर शंक्वाकार होकर संकरा हो जाता है ऐसे प्राण भँवर के ऊपरी भाग को स्तर और नीचे के भाग को बिंदु कहते हैं इनमें ओजस, 'स्तर' अर्थात् ऊपरी भाग होते हैं और रेतस नीचे के 'बिंदु' भाग। इसे आप देखते हैं कि स्तर और बिंदु दोनों एक ही भ्रमर के छोर होते हैं अतः एक-दूसरे के पूरक हैं। स्वरशास्त्र के अनुसार शरीर की प्रधान जो नाड़ियाँ और पंच वायु इस प्रकार माने गये हैं—

गंधारी हस्तिजिह्वाच पूषा चैव यशस्विनी।
अलम्बुषा कुहुश्चैव शंखिनी दशमी तथा।।

गाँधारी, हस्तिनी, जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, शंखिनी, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना यह दस नाड़ियाँ हैं।

इन दस नाड़ियों की स्थिति आदि के वर्णन के पश्चात् इनके आश्रित वायु के नाम शास्त्र में बताये गये हैं—

नागः कूर्मोअय कृकलो देवदत्तो धनंजयः।
हृदि प्राणो बसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले।।

नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय ये उपवायु कहलाते हैं। प्राण वायु हृदय में और अपान वायु गुदा क्षेत्र में रहती है।

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठ मध्यगः।
व्यानी व्यापी शरीरेषु प्रधानो दशवायवः।।

नाभि क्षेत्र में समान, कंठ में उदान और संपूर्ण शरीर में व्यान वायु व्याप्त रहती है। इस प्रकार यह दस प्रकार की प्रधान वायु शरीर में पाई जाती है।

अब उप वायुओं की क्रियाएँ बताते हुए शास्त्र कहता है—

उद्‌गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः।
कृकलो क्षुतकृत्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे।।

उद्‌गार वायु डकार लेने में, कूर्म वायु पलक झपकने में, कृकल वायु छींकने में और देवदत्त नामक वायु पूर्ण शरीर में रहती है।

प्राण का बिंदु नाग है और दोनों हृदय क्षेत्र में स्थित हैं। अपान का बिंदु कर्म है जो गुदा और जननांग के मध्य मूलाधार क्षेत्र में स्थित है। समान और कृकल नाभि क्षेत्र के प्राण हैं। उदान और देवदत्त कंठ क्षेत्र में संबंधित हैं। धनंजय का प्रधान केंद्र मस्तिष्क का मध्य भाग है, जहाँ आकाश है अतः यह संपूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है।

माना जाता है कि प्राण से मस्तिष्क पोषित होता है और शब्द की उत्पत्ति होती है। अपान मल, मूत्र, स्वेद आदि का विसर्जन कराता है। समान वायु, पाचक, परिपाक और उष्णता का संचार करती है। उदान बाहरी वस्तुओं को शरीर में ग्रहण कराती है। व्यान रक्त संचार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कराती है। लघु प्राणों से नाक में डकार आती है। पलक झपकने की क्रिया कूर्म वायु का कार्य है। कृकल से छींके और देवदत्त से जँभाई आती हैं। धनंजय वायु जीवित अवस्था में शरीर का पोषण कराती है और मृत्यु होने पर शरीर को गला सड़ा कर शीघ्र नष्ट कराती है।

उक्त दस प्रकार के प्राणों को सुषुप्त अवस्था से जाग्रत अवस्था में लाने, उनकी सुप्तावस्था में उत्पन्न कुवृत्तियों का निवारण करने, प्राण शक्ति पर पूर्णाधिकार एवं आत्मिक जीवन को समुन्नत बनाने के लिए "स्वरसाधना" का क्रियात्मक ज्ञान जानना अत्यावश्यक है।

प्राकृतिक उत्तोलन

मनुष्य की प्रवृत्ति को संयत बनाये रखने के लिए समय-समय पर विद्वानों और संतों ने विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत करके मानव मात्र को सन्मार्ग पर चलने के निर्देश दिये हैं। कभी यह कहकर कि 'तुम्हारे किये को भगवान देख रहा है', तो कभी यह कहकर कि 'बुरे कर्म का फल पाप और अच्छे कर्म का फल पुण्य होता है।' मीमांसक लोग यह मानते हैं कि आत्मा पर कर्म के आधार पर बंधन आच्छादित हो जाते हैं, जो मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा के साथ बने रहने के कारण व्यक्ति को अगले जन्म में भी कर्म का फल भोगने के लिए बाध्य करते हैं।

ब्रह्मयोग इस विषय में कुछ यथार्थ परक बातें बताता है, उसके अनुसार विश्व का कण-कण स्पंदन कर रहा है और वे सूक्ष्म तरंगें मिलकर महातरंग का रूप धारण कर लेती हैं। तरंगों के इस समर में व्यक्ति की अपनी विचार तरंगें भी सम्मिलित रहती हैं। हमारे विचार भी 'तरंग' ही हैं। यदि एक ओर नई तरंग उत्पन्न होती है, तो निश्चित ही दूसरी ओर एक तरंग को समाप्त होना पड़ता है। यदि एक ओर कोई तरंग तिरछी चलती है, तो उसे मार्ग देने के लिए दूसरी तरंगों को भी तिरछा होना पड़ता है विश्व की इस स्थिति को देखकर ही भगवान बुद्ध ने कहा था—एक छोटे से कण की मनमानी गति का परिणाम उसके वर्ग को, विश्व को और अंततः सार्वभौम को भोगना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि हम जो कुछ भी अच्छा या बुरा कर रहे हैं, उससे केवल हम या हमारा परिवार ही प्रभावित नहीं होते अपितु हमारा समाज भी उस क्रिया से प्रभावित होता है, समाज से राष्ट्र बनता है और अंततः विश्व और विराट् विश्व अर्थात् संपूर्ण प्रकृति उसकी चपेट में आ जाती है और फिर उस विराट् के सम्मिलित प्रभाव की चपेट में भी हम आते हैं।

मैंने सुना था एक महात्मा जी किसी मृत्यु भोज में गये हुए थे, वहाँ माल पुए बन रहे थे। जहाँ बड़े भोज होते हैं वहाँ रात में ही माल पुए तैयार कर लिए जाते हैं। ठंडी रात थी, महात्मा जी भट्टी के पास ही एक मूढ़े पर जमे हुए थे। भक्त लोग दो, एक महात्मा जी के पास थे। लगभग आधी रात बीच चुकी थी, अचानक घी कम पड़ गया। घर के मुखिया को बुलाया गया। अब आधी रात में घी कहाँ से आये ? लोगों ने महात्मा जी से कहा वे बोले—जा पोखर में से चार कनस्तर पानी भर ला और तई (कढ़ाई जिसमें माल पुए तले जाते हैं) में डाल दे। महात्मा जी का उस क्षेत्र में नाम था अतः बिना यह सोचे हुए कि गरम घी में पानी डालने से क्या होगा, लोग पास की पोखर में से पानी कनस्तर में भर लाये और तई में डाल दिया। पुए तलते चले गये, रात बीत गई, काम पूरा हो गया। अगले दिन महात्मा जी ने चार कनस्तर घी बाजार से मँगाया और उसी पोखर (तालाब) में डलवा दिया जहाँ से रात को कनस्तर भरे गये थे। यह नेचर की बैलेसिंग है। लेन-देन बराबर करना ही पड़ता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक बार मेरी श्रीमती जी को कोई रिश्तेदार मिलने आये। जाते समय वे उन्हें लगभग एक सौ पचास रुपये भेंट में दे गये। यह बम्बई की बात है। उसके बाद अगले दिन हम बाजार गये, तो सड़क पर एक रूमाल पड़ा देखा। मैंने श्रीमती जी से कहा वह रूमाल उठालो। रूमाल खोलकर देखा तो उसमें तीन सौ रुपये थे। श्रीमती जी बड़ी खुश हुईं और साढ़े चार सौ की साड़ी खरीद लाईं। जब वह घर आ गईं तब मैंने उनसे कहा कि अब सोचना यह है कि यह बैलेंसिंग कहाँ पूरी होगी ? वे बोलीं—"यह तो मैंने भगवान से माँगे थे।" मैंने कहा—"क्या मतलब ?" तो उन्होंने बताया कि घर से जाते समय सामने के शिव मंदिर पर वे मन ही मन बोली गईं थी कि डेढ़ सौ रुपये और मिल जायँ, तो एक अच्छी साड़ी लेती आयें। जब रुपये मिले तो उसे भगवान का प्रसाद समझ साड़ी ले ली गई। इस बात के लगभग बारह महीने बाद जब हम लोग मुम्बई से आगरा आये, तो रास्ते में भोपाल पर चलती ट्रेन में किसी ने उनके कान का एक झुमका तोड़ लिया। जब कि बीसियों बार निष्कंटक यात्राएँ करने का अनुभव रहा था। जब श्रीमती जी चीखने लगीं, तो मैंने नेचर के बेलेसिंग वाली बात याद दिलाई। प्राकृतिक उत्तोलन अपना कार्य अनवरत करता रहता है।

हमारे धार्मिक वाङ्मय में सेवा की भावना और प्रेम की भावना का बड़ा महत्व प्रदर्शित किया है। सेवा भाव प्रत्येक व्यक्ति में प्रत्येक समय नहीं रहता, परंतु सेवा भाव का अभ्यास करने से व्यक्ति में प्रेम, ममता का स्फुरण होता है। प्रेममय होकर तो सेवा करना सुखकर है ही परंतु सेवा करके भी प्रेममय हुआ जा सकता है। प्रेमपूर्ण प्रवृत्ति ही मन को निर्मल करती है और मन को बीसियों प्रकार की आपदाओं से बचाती है। मीमांसा शास्त्र कहता है—जैसी तरंगें तुम उत्पन्न करोगे वैसी ही तरंगें तुम ग्रहण करोगे अर्थात् जैसा तुम्हारा ट्रांसमिशन होगा वैसा ही रिसेप्शन होगा। दूसरे लोग इसी को कहते हैं कि जैसा बोओगे वैसा काटोगे। यदि अच्छा करोगे, तो तुम्हें अच्छे परिणाम मिलेंगे और यदि बुरा करोगे, तो भगवान् की ओर से भी बुरा ही रिफ्लेक्शन होगा। इस अच्छा-बुरा में प्रधान हाथ वृत्ति का होता है। मन की वृत्ति को संयत रखना आवश्यक है। योगियों को सिखाया जाता है **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** (चित्त की वृत्ति का निरोध करना ही योग है)। जो व्यक्ति अपनी वृत्ति को ठीक रखता है, वह कम से कम दुःख उठाता है। यह एक व्यावहारिक बात है। ऐसे व्यक्ति के दुःख भी बहुत हल्के प्रकार के, सरलता से झेलने लायक होते हैं और दुष्प्रवृत्ति व्यक्ति जब दुःख उठाता है, तो असहनीय और अधिक कष्ट देने वाले होते हैं। इस प्रकार आप देखते हैं कि किसी के प्रति बुरा सोचना सामाजिक रूप से तो निंदनीय है ही आध्यात्मिक रूप से भी त्याज्य है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो आप पायेंगे कि आपका सोचा हुआ आप पर ही आ पड़ता है। अतः सभी महान् आत्माओं ने एक ही बात को बार-बार दुहराया है—**बुरा मत सुनो, बुरा मत कहो, बुरा मत देखो।**

आपने देखा होगा, कुछ लोग भले-बुरे के व्यवहार से दूर रहते हैं, जितनी हो सकती है भलाई करते रहते हैं, बुरे में भी कुछ अच्छाई ढूँढ़ लेते हैं, दूसरों की बुराई की ओर उनका ध्यान नहीं जाता। व्यक्तियों की तो बात दूर, जड़, वस्तुओं में भी उन्हें कुछ न कुछ भलाई ही दृष्टिगत होती है। ऐसे लोगों के प्रति श्रद्धा सुमन बिखरने वाले बहुत होते हैं, बिना कुछ लिए दिये। यह सब उनके भले जीवन व्यवहार का रिफलेक्शन है जो उनको श्रद्धा के रूप में, प्रेम के रूप में।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वापस मिलता है और वे बिना कुछ खर्चा किये सुखी बने रहते हैं। सुख एक ऐसी चीज है, जो पैसे से नहीं खरीदी जा सकती। सुविधाएँ खरीद सकते हैं, सुख नहीं। दूसरों को सुख देने से सुख मिलता है। दुःख और सुख के स्पंदन एक ही प्रकार के हैं, जैसे कि अंधकार और प्रकाश एक ही चीज के दो नाम हैं जहाँ कम प्रकाश है उसे आप अंधकार कहते हैं और जहाँ कम अंधकार है उसे प्रकाश कहते हैं अतः सुख और प्रकाश समानांतरीय चर्चायें हैं। इसीलिए जब कोई दुःख के गर्त में जा पड़ता है, तो कहते हैं अंधकार के गर्त में जा पड़ा और जो सुख के मार्ग पर चल पड़ता है, उसे कहते हैं 'ज्योति मिल गई'।

किसी भी बात को ईश्वर के ऊपर डालकर बैठ जाना आज के व्यक्ति का सामान्य कार्य व्यवहार है। कुछ बुरा हुआ हरि इच्छा, कुछ गलत हो गया—भगवान की मर्जी, कहीं काम बन गया—ऊपर वाले की मर्जी। कहीं काम बिगड़ गया—अभी भगवान को मंजूर नहीं, परंतु इनमें से एक भी ऐसा नहीं जो प्रयत्न न करता हो, चूँकि इस 'हरि इच्छा' पर भी उसका पूरा भरोसा नहीं जमता, ऐसा अधूरे भरोसे वाला व्यक्ति कभी पूरा काम नहीं कर पाता। यह अधूरापन छोड़ना आवश्यक है। प्रकृति का अणु-अणु स्पंदन कर रहा है, इन्हीं स्पंदनों में आपके कार्य के स्पंदन भी सम्मिलित हो जाते हैं और कार्य की प्रगति में सहायक होते हैं। व्यक्ति के स्पंदन मन के अंदर उत्पन्न होते हैं और मन में ही ग्रहण किये जाते हैं। आत्मा का रिफ्लेक्शन मन है जिस प्रकार सूर्य का रिफ्लेशन चंद्रमा है। कहा भी है, **'चंद्रमा मन सो जातः'** तथा **'सूर्य आत्मा जगतस्तश्युश्च'**। हमारे अपने स्पंदन ही हमरे चारों ओर का वातावरण तैयार करते हैं अतः इस बीच में किसी ईश्वर या भगवान को न लाकर अपनी जिम्मेदारी को समझने में और सद्वृत्ति का विकास करने में ही अपने भलाई है। आने वाले समय में आप दूसरों की अच्छाई पर ध्यान दीजिए। संपूर्ण बुरा कोई नहीं है। किसी का बात करने का ढंग अच्छा है, तो किसी की चाल अच्छी है। किसी का शरीर पुष्ट है, तो किसी का चेहरा सुंदर है। किसी का कपड़े पहनने का तरीका सुंदर हैं, तो किसी की भाषा मीठी है। कोई धनात्मक सोचता है, तो कोई धनात्मक करता है, कोई कर्म को ही पूजा मानता है, तो कोई कण-कण में भगवान देखता है। जड़ वस्तुओं की भी अपनी गुणवत्ताएँ हैं, कोई स्वाद में अच्छी है, तो कोई सुगंध में, कोई प्रभाव में अच्छी है, तो कोई अलाव में। किसी का आध्यात्मिक उपयोग है, तो किसी का चिकित्सा में। यदि उपयोग करना आये, तो विष भी अमृत बन जाता है चूँकि प्रत्येक अच्छाई में कुछ बुराई की किरण देखी जा सकती है और प्रत्येक बुराई में भी कुछ न कुछ अच्छाई पकड़ी जा सकती है। प्रत्येक पाप में पुण्य की झलक और प्रत्येक पुण्य में पाप की झलक देखी जा सकती है। अतः पाप पुण्य, अच्छाई बुराई के झमेले से ऊपर उठकर प्राकृतिक विकास में सहयोग करें, इसी में आपकी भलाई है। विकास की रेलगाड़ी आगे बढ़ती जा रही है जो साथ चल सकेंगे, आगे बढ़ जायेंगे, जो पीछे छूट जायेंगे, वे मिटते चले जायेंगे। प्राकृतिक विकास अनवरत है। चाहे आप साथ दें या न दें।

प्राण साधना

इड़ा गंगेति विज्ञेया पिंगला यमुना नदी।
मध्ये सरस्वती विद्यात्प्रयागादि समस्तथा।।

इड़ा अर्थात् बायें स्वर को गंगा समान जानें और पिंगला अर्थात् दाहिने स्वर को यमुना के समान जानें, सुषुम्ना सरस्वती मानें और इन तीनों के संगम को प्रयाग कहते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
बद्ध पद्मासनो योगी बंधयेदुड्डियानकम्।।

आगे स्वरोदयशास्त्र प्राणायाम के विषय में प्रत्यक्ष अनुभूति के प्रयोगों का वर्णन करता है। सर्वप्रथम योगी पद्मासन में बैठे और उड्यान बंध लगाये अर्थात् वायु को खींच- कर नाभि तक लायें और वहीं वायु (श्वास) को रोक दें।

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः!
ज्ञातव्यो योगिभिर्नित्यं देहसंशुद्धि हेतवे।।

पूरक करें, कुंभक करें, रेचक करें, इस प्रकार नित्य शरीर शुद्धि के लिए योगी को अभ्यास करना चाहिए।

पूरकः कुरुते वृष्टिं धातुसाम्यं तथैव च।
कुम्भके स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम्।।

पूरक क्रिया करने से अमृत की वर्षा होती है और शरीर में धातुओं का अनुपात उचित होता है। कुंभक क्रिया से शरीर में स्थिरता आती है, इस प्रकार शरीर को रक्षा प्राप्त होती है।

रेचको हरते पापं कुर्याद् योग पदं व्रजेत्।
पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबंध च कारयेत्।।

रेचक करने से सभी पापों का नाश होता है इसलिए इनके अभ्यास से योग पद प्राप्त होता है। प्राणायाम का समपान करते हुए लय बंध लगाये, तो व्यक्ति मृत्यु को भी अपने वश में कर लेता है।

कुम्भयेत्सहजं वायुं यथाशक्ति प्रकल्पयेत्।
रेचयेच्चंद्र मार्गेण सूर्येण पूरयेत्सुधीः।।

सहज रूप में जहाँ तक हो सके वायु की खींच कर कुंभक करें सूर्य स्वर से पूरक करके चंद्र स्वर से वायु को रेचन करें।

बद्धं पद्मासनस्थो गुदगतपवनं सन्निरुद्धयापृमुच्चैस्तं।
स्यापानरन्ध्रक्रमजितमनिलं प्राणशक्तयानिरुद्धय।।
एकीभूतं सुषम्नाविवर मुपगतं ब्रह्मरंधे च नीत्वा।
मिम्रिया काश मार्गे शिव चरणरता यान्तिते के अपि धन्या।।

जो व्यक्ति पद्मासन बद्ध होकर अपानवायु को रोककर ऊपर ले जाने के लिए प्राण शक्ति को रोकता है, तत्पश्चात् दोनों को एकत्र करके सुषुम्ना के द्वारा ब्रह्म रंध्र में ले जाता है, वह आकाश मार्ग से शिव चरणों में पहुँच जाता है। उनसे अधिक कौन धन्य है।

यह श्लोक कुंडलिनी शक्ति की क्रिंया को इंगित कर रहा है।

प्राणेन यज्ञः संततः

(मैत्रा. सं. 4,6,2)

प्राण के द्वारा ही सतत् यज्ञ चलता रहता है।

प्राण के द्वारा यज्ञ होने की बात करें, तो यज्ञाहुति के रूप में श्वासप्रश्वास का होम शरीर में होता रहता है, जो अग्नि उत्पन्न कर संपूर्ण शरीर के ताप को संतुलित किये रहती है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसीलिए एक अर्थ में प्राण को श्वासप्रश्वास के रूप में मान लिया जाता है और जीवन के लिए अत्यावश्यक ओषजन को प्राणवायु कहा जाता है। प्राण की दो धाराएँ प्रधान हैं, जो दोनों नासारंध्रों से, एक के बाद एक, क्रम से प्रवाहित होती रहती हैं। योगी लोग इन नासारंध्रों से संयुक्त नाड़ियों को इड़ा और पिंगला नाम से जानते हैं। आयुर्वेद इन दोनों नाड़ियों में प्रवाहित होने वाली धरा को उष्ण और शीतल बताता है। चीनी लोग इन धाराओं को यिन तथा यांग कहते हैं, मूलधारा प्राणशक्ति की ही है, जिसे जापानी लोग 'की' नाम से जानते हैं और चीनी 'ची' नाम से तांत्रिक लोग इसे धारा के प्रवाह के रूप के आधार पर कुंडलिनी शक्ति कहते हैं चूँकि इस शक्ति की धारा कुंडलों के रूप में ध्रुव वृत्तीय आकार में नाड़ियों के अंदर प्रवाहित होती रहती है।

दाहिने नासारंध्र को पिंगला और बायें नासारंध्र को इड़ा नामक नाड़ी से संबद्ध माना जाता है, पिंगला सूर्य नाड़ी अथवा उष्ण धारा वाली नाड़ी मानी जाती है और इड़ा शीतल धारा वाली नाड़ी। इसलिए जब स्वर अर्थात् श्वास दाहिने नासारंध्र से प्रवाहित हो रही हो, तो पौरुष बर्द्धक, उत्साह बर्द्धक और उन्नति की ओर अग्रसर होने वाले कार्य करने की सलाह दी जाती है। इसी प्रकार जब स्वर बाएँ नासारंध्र में चल रहा हो, तो शांति प्राप्ति वाले अथवा उद्वेग शमन करने वाले कार्य करने की सलाह दी जाती है। जीवन की सामान्य प्रक्रिया में बहुत बार ऐसा भी होता है जब श्वास दोनों नासारंध्रों से समान रूप में प्रवाहित हो रही होती है ऐसी स्थिति में सुषुम्ना नाड़ी गतिशील रहती है और व्यक्ति को केवल शीतोष्ण कार्य करने की सलाह दी जाती है जैसे ईश्वर भक्ति आदि।

प्राणावै साध्या देवाः

(शत० ब्रा० 10,2,2,3)

(प्राण ही साध्य देव हैं)

साध्य देव एक समझने योग्य शब्द है। साध्य का सामान्य अर्थ पूजित देव लगाकर बात समाप्त कर दी जाती है, परंतु जहाँ प्राण का अर्थ श्वास प्रश्वास हो तो वहाँ पान फूल चढ़ाने या आरती उतारने से काम नहीं चलने वाला। साध्य का सही अर्थ साधा हुआ, संयत किया हुआ अथवा नियंत्रित किया हुआ मानकर ही आप **'प्राणावै साध्या देवाः'** वाली बात समझ सकेंगे। 'देव' शब्द का जहाँ तक प्रश्न है, प्रत्येक कल्याणकारी शक्ति को उसके कार्य के अनुरूप देव अथवा देवी कहना भारतीय चिंतन के सर्वथा अनुकूल रहा है। प्राणों को नियंत्रित करने से तात्पर्य है श्वास प्रश्वास को आवश्यकतानुसार प्रवाहित करना। यदि उष्ण श्वास की आवश्यकता है, तो उसे दाहिने नासारंध्र से प्रवाहित करना और शीतल की आवश्यकता हो, तो बाएँ नासारंध्र से प्रवाहित करना। श्वास प्रवाह को नियंत्रित करने की बहुत-सी विधियाँ योग मनीषियों ने खोज निकाली हैं, उदाहरणार्थ—

आपकी श्वास दाहिने नासारंध्र से प्रवाहित हो रही हो (जो नासिका के सामने हाथ रखने से ज्ञात हो जाता है) और आप बाएँ नासारंध्र से उसे प्रवाहित करना चाह रहे हों, तो बाएँ हाथ की मुट्टी बाँध कर दाहिनी भुजा की बगल (काँख) में दबा लें, थोड़ी ही देर में बायाँ नासारंध्र खुल जायगा और श्वास प्रवाह दाहिने नासारंध्र से न प्रवाहित होकर बाएँ से प्रवाहित होने लगेगा। भारतीय चिंतन में मैथुन काल में पत्नी को बामाँगी अर्थात् बाएँ अंग रखने का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विधान है। पत्नी बाईं ओर रहने से पति का बायाँ पार्श्व दबा रहता है, जिसके कारण श्वास दाहिने नासारंध्र से प्रवाहित होती है। दाहिने स्वर वाली श्वास सूर्य गुण युक्त होती है। सूर्य गुण की वृद्धि से गर्भ में पुत्र उत्पन्न होता है और चंद्र गुण की वृद्धि से पुत्री, ऐसा आयुर्वेद भी मानता हैं। तात्पर्य यह है कि इच्छित नासारंध्र को प्रवाहमय बनाने के लिए थोड़ी देर विरोधी करवट लेट जाने से काम बन जाता है। कुछ हठ योगी इच्छित स्वर अर्थात् नासारंध्र चलाने के लिए दूसरे नासारंध्र में रुई की पोटली बनाकर फँसा देते हैं।

योगी लोग प्राण शक्ति के अन्य उपयोग भी करते हैं, इसके लिए विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का अभ्यास किया जाता है। शत पथ ब्राह्मण 10, 14, 12 में कहा गया है। **'प्राणेय वै देवा अन्नमदन्ति'** अर्थात् प्राण के माध्यम से देवगण अन्न ग्रहण करते हैं। जहाँ ईश्वर और देवों की बात चलती है, तो ईश्वर के सहायक के रूप में उन्हें माना जाता है इसी प्रकार शरीर की सहायक इद्रिंयाँ हैं। शरीर को शिवत्व पद पर प्रतिष्ठित करने की जहाँ चर्चा हो वहाँ इद्रिंयाँ ही देवतास्वरूप मानी जाती हैं। अन्न के पाचन में प्राण अर्थात् श्वास का विशेष हाथ होता है। यदि आप लेट जायँ, तो आप देखेंगे कि श्वासप्रश्वास का कार्य आपका पेट करता है अर्थात् फेफड़ों का नियंत्रण उदर के द्वारा होता है ऐसी श्वास सीधे छोटी आँत को प्रभावित करती है, जो प्राण क्रिया के माध्यम से अन्न का पाचक रस निकालकर शरीर के अवयवों को ग्रहण कराती है। हृदय एक मोटर वाहन के इंजन के समान कार्य करता है। यूँ इंजन एक निष्क्रिय मशीन है, जब उसे सक्रिय बनायें, तब वह कार्यरत हो उठता है। हृदय को सक्रिय बनाना छोटी आँत का कार्य है। योगी लोग जानते हैं, सोते समय ऊर्जा भोजन से उत्पन्न होती है। सोते समय सबसे अधिक क्रिया उदर की होती है, जो छोटी आँत को क्रियाशील रखते हुए ऊर्जा उत्पन्न कराता है और इंजन को सक्रिय बनाता है। ऐसी इंजन की चाल को गति देना यकृत का कार्य है अतः यकृत पर कम दबाव पड़ने से हृदय का कार्य ढीला हो जायगा और अधिक दबाव देने से अधिक श्रम का बोझ पड़ जायेगा, इसलिए इंजन को गति में बनाये रखने के लिए घर्षण कम करना आवश्यक है। मशीन के इंजन में मॉबिल आयल डालकर ऐसी ही क्रिया संपन्न की जाती है। शरीर में इस कार्य को पित्ताशय (गालब्लैडर) द्वारा संपन्न किया जाता है। जब शरीर रूपी वाहन गति में आ जाता है, तो उसकी गति को नियमित बनाये रखने के लिए प्लीहा (स्पलीन) अग्न्याशय (पेंक्रियाज) तथा उदर (एब्डोमन) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गति को धीमी करने, रोकने अथवा वापस करने अर्थात् ब्रेक का कार्य करने में मूत्राशय (यूरिनरी ब्लैडर) तथा गुर्दों (किडनीज) का विशेष योगदान रहता है। यह दोनों अवयव व्यक्ति के विचारों में भी ब्रेक लगाते हैं इसीलिए योगी लोग साधना करते समय मूल तंत्र को प्रभावित करने के लिए मूलाधार सिद्ध करते हैं। और उससे संबंधित क्रियाएँ करके विचारों में शून्यता की उपलब्धि का प्रयत्न करते हैं। आप जानते हैं कि किसी वाहन की सुरक्षा उसके ब्रेक पर निर्भर होती है अतः इन अंगों का उपयोग सावधानी और आत्मसुरक्षा की दृष्टि से अत्युपयोगी है। बड़ी आँत और फेफड़े गड़बड़ियों और खतरनाक गति के समय समझ और अनुभूति देते हैं और एक प्रकार से मार्गदर्शन व निर्देशन मस्तिष्क एवं सुषुम्ना संबंधी स्नायु संस्थान के द्वारा करते हैं। आयुर्वेद में भी माना जाता है कि आँत भारी तो माथ भारी। आँत भारी से तात्पर्य बड़ी आँत में भारीपन होने अर्थात्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कब्ज होने से है। इस क्षेत्र की सफाई के लिए योगी लोग शंख प्रक्षालन का सहारा लेते हैं और चिकित्सक लोग एनिमा का। यदि बड़ी आँत तथा फेफड़ों में असंतुलन की स्थिति रहे, तो व्यक्ति के निर्णय भी गलत होते हैं। जिन व्यक्तियों का यकृत और पित्ताशय स्वस्थ हो, तो वे अधिक क्रियाशील रहते हैं। योग के बहुत से आसन तथा प्राणायामों की बहुत-सी क्रियाएँ इन्हीं सिद्धांतों को आधार मानकर ऋषियों द्वारा बनाये गये हैं। इस प्रकार आप देखते हैं कि हमारा शरीर एक स्वायत्तशासी संस्थान है, जिसके जैव ऊर्जा (प्राण) प्रवाह का आधार छोटी आँत और हृदय है न कि फेफड़े। सामान्यतः प्राण शब्द का अर्थ श्वास मानने से जीवन का आधार फेफड़े ही प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। तात्पर्य यह है कि यदि छोटी आँत के कार्य को नियमित किया जा सके तो सभी कुछ बड़े सहज ढंग से नियमित किया जा सकता है। छोटी आँत की लयबद्धता श्वास को लयबद्ध करने से हो जाती है इसलिए यदि श्वास प्रश्वास को लयबद्ध बनायें, तो संपूर्ण शरीर के कोष लयबद्ध हो जाते हैं छोटी आँत और श्वास का सीधा संबंध रात में सोते समय अधिक रहता है। सोते हुए भी छोटी आँत लयबद्ध बनी रहे इसके लिए जाग्रत अवस्था में भी श्वास को लयबद्ध बनाये रखने का अभ्यास किया जाता है। यहीं से प्राणायाम अर्थात् प्राण साधना का आरंभ होता है। सबसे सहज और प्राकृतिक प्राणायाम है—अपनी श्वास पर ध्यान देना। प्रत्येक समय अपनी श्वास पर ध्यान देते रहें। अबश्वास बाहर जा रही है, अब श्वास अंदर आ रही है। श्वास पर निरंतर ध्यान देने से श्वास चेतना की सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे व्यक्ति में रोग से लड़ने की क्षमता का विकास होता है, अधिक श्रम करने की क्षमता में वृद्धि होती है, त्वरित निर्णय तथा इद्रिंय संयम जैसी विशिष्टताओं की वृद्धि होती है।

OO

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

7 नाड़ियाँ और कुंडलिनी शक्ति

नाडीस्था कुण्डली शक्तिर्भुजंगाकार शायिनी।
ततो दशोर्ध्वगानाड्योदशैवाधः प्रतिष्ठिताः।।

विभिन्न नाड़ियों में व्याप्त कुंडलिनी शक्ति की बात करते हुए स्वरोदय शास्त्र में नाड़ियों से संबंधित विवेचन किया गया है, इस शरीर में कुंडलिनी शक्ति विभिन्न नाड़ियों में व्याप्त है। जिनमें दस नाड़ियों उसी रूप में ऊपर की ओर गई हैं और दस नाड़ियाँ नीचे की ओर गई हैं। कुल नाड़ियाँ बहत्तर हजार बताई गई हैं—

द्वि सप्तति सहस्राणि देह मध्ये व्यस्थिताः।

आगे नाड़ियों के बारे में शास्त्र बताया है—

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यश्चतु विशति संख्यया।
प्रधाना दशनाड्यस्तु दश वायु प्रवाह काः।।

दो दो नाड़ियाँ तिरछे रूप में गई हैं जो चौबीस है, उनमें दस नाड़ी प्रधान हैं और दस वायु वाहिनी हैं। 'चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वाः प्राण समाश्रिताः' इस शरीर में तिरछी ऊँची नीची नाड़ियाँ चक्र के रूप में स्थित है, जो प्राणों को आश्रय देती हैं। इन नांड़ियों में दस सर्वश्रेष्ठ हैं और उनमें तीन प्रधान हैं, जो इड़ा, पिगला और सुषम्ना नाम से जानी जाती हैं—

वासांमध्ये दशश्रेष्ठा दशानां तिस्त्रउत्मा :।
इडा च पिंगला चैव सुषुम्नाच तृतीयका।।

नाड़ियों के संबंध में 'कुंडलिनी तंत्र शास्त्र' में दिया गया नाडी विवेचन अधिक स्पष्ट देखा गया है—

मेरोर्बाह्य प्रदेशे शशिमिहिरसिरे सव्यदक्षेनिषण्णे।
मध्ये नाड़ी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्नि रूपा ।।
धत्तूर स्मेर पुष्प ग्रथिततमवपुः कन्दम ध्याच्छिरः स्था ।
वज्राख्या मेढदेशच्छिरसि परिगतामध्यमेउस्या ज्वलन्ती।।

श्री पूर्णानन्द स्वामी के अनुसार मेरुदंड के बाहर दो नाड़ियाँ बाईं ओर और दाहिनी ओर चंद्र और सूर्य गुण युक्त हैं। उसके मध्य में त्रिगुणमयी नाड़ी सुषुम्ना है, जो चंद्र, सूर्य तथा अग्नि रूप है। धत्तूर पुष्प की नाल के समान कंद के मध्य से शिर तक यह नाड़ी फैली है। इसके अंदर लिंग से सिर तक वज्र (वीर्य) भरा हुआ है।

इन नाड़ियों के संबंध में सम्मोहन तंत्र में कहा गया है कि बाईं ओर की इड़ा नाड़ी श्वेत वर्ण की, चंद्र जैसे शीतल गुण युक्त शक्ति रूपा देवी है जो साक्षात अमृत रस है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

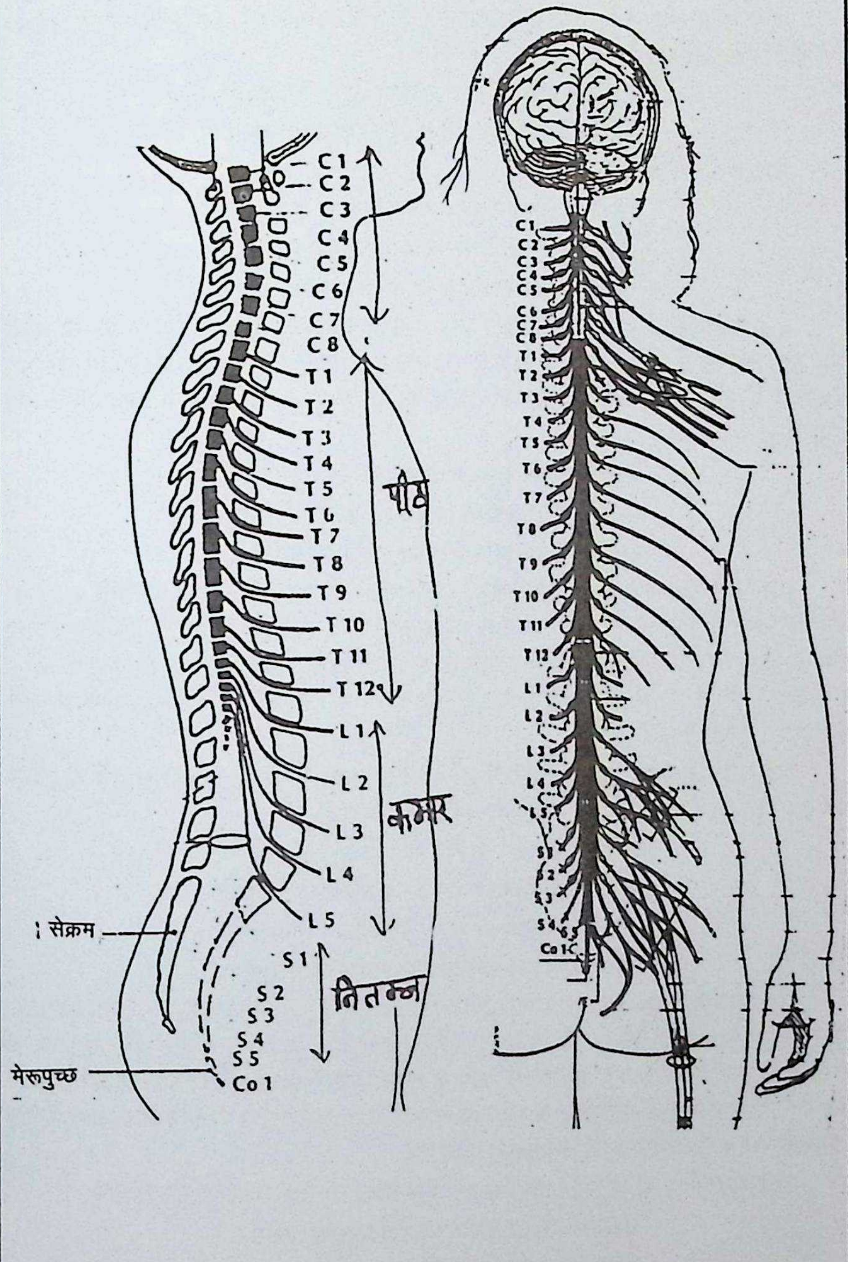

चित्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वामगा या इड़ा नाड़ी शुक्ला चन्द्र स्वरूपिणी।
शक्ति रूपा हिंसा देवी साक्षादमृत विग्रहा।।

दाहिनी ओर पुरुष गुण युक्त सूर्य-प्रकृति की पिंगला नाड़ी है, जो अनार के कशेर की प्रभा वाली रौद्रात्मिक शक्ति है—

दक्षे तु पिंगला नाम पुरूपा सूर्य विग्रहा।
रौद्रात्मिका महादेवी दाड़िमी केसर प्रभा।

यामल तंत्र में कहा है—

इड़ा च पिंगला चैव तस्य वामे च दक्षिणे।
ऋज्वीभूते सिरे ते च वामादक्षिण भेदतः।
सर्वपद्मानि संवेष्ट्य नासारन्ध्र गते शुभे।।

इस (मेरुदंड) के बाईं और दाहिनी ओर इड़ा और पिंगला नाड़ी हैं, जो रस्सी की भाँति गुँथी हुई दाहिनी से बाईं और बाईं से दाहिनी ओर होती हुई, सीधी सब चक्रों को भेदती हुई नासारंध्रों में प्रविष्ट हो जाती हैं। इसी आशय को प्रपंचसार तंत्र में और अधिक स्पष्ट कर दिया है—

या वाम मुष्क संबंधा साश्लिष्यन्ती सुषुमन्या।
दक्षिणं जत्रुमाश्रित्य धनुर्वक्रा हृदिय स्थिता।
वामांश जत्वन्तरण दक्षिणां नासिकामियात्।।

एक नाड़ी वह जो बाएँ अंड कोष से सुषुम्ना की ओर जाती है और दाहिनी स्कंध के जोड़ के पास से निकल कर हृदय क्षेत्र में धनुराकार होती हुई बाएँ स्कंध के जोड़ से होकर नाक में जाती है। इसी प्रकार दूसरी नाड़ी वह है जो दाहिने अंडकोष से बाएँ स्कंध के जोड़ से होकर नाक में जाती है। इसी प्रकार दूसरी नाड़ी वह है, जो दाहिने अंडकोष से बाएँ नासारंध्र में जाती है।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों को त्रिवेणी (वेणी = रस्सी, चोटी) रूप में भी माना गया है। और 'संगम-त्रिवेणी' से उपमा देने के लिए लिखा है—

इड़ायाँ यमुना देवी पिंगलायाम् सरस्वती
सुषुम्नायाँ वसेद्गंगा तासां योगस्त्रिधा भवेत्।
संगता ध्वजमूले च विमुक्ता भ्रूवियोगतः
त्रिवेणी योगः सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम्।।

इड़ा में देवी यमुना है और पिंगला में सरस्वती है। सुषुम्ना में गंगा का निवास बतलाया है। सम्मोहन तंत्र में लिखा है कि इड़ा में देवी जाह्नवी है, पिंगला में यमुना और सुषुम्ना में सरस्वती है। जो भी उपमा दें यह तीनों नाड़ियाँ तीन ग्रंथियों (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ग्रंथि) के रूप में लिंग मूल संयुक्त रहकर भ्रूमध्य पर अलग-अलग होती हैं। इसे त्रिवेणी योग कहा जाता है। इसमें स्नान (साधना) करने का महान् फल है।

'तंत्र चूड़ामणि' के अनुसार सुषुम्ना को कुछ लोग मेरुदंड से बाहर मानते हैं—

मेरोर्वामेस्थिता नाड़ी इड़ा चन्द्रामृता शिवे।
दक्षिणे सूर्य संयुक्ता पिंगला नाम नामतः।
तद्वाह्ये तु तयोर्मध्ये सुषुम्ना वह्नि संयुता।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरुदंड के बाईं ओर इड़ा नाड़ी स्थित है जो चंद्रगुण अमृत युक्त कल्याणकारी है, और इसके दाहिनी ओर सूर्य समान पिंगला है। उसके बाहर, परंतु इन दोनों नाड़ियों के अंदर अग्नि रूप सुषुम्ना है।

'भूत शुद्धि तंत्र' के अनुसार, गुदा से दो अंगुल की ऊँचाई पर वज्रा नाड़ी है, वहीं चित्रिणी है, अंतः सुषुम्ना त्रि-गुणा है, जो कामातुर स्त्री के समान थरथराती है। यह नाड़ी तीनों गुण, सत, रज, तम को प्रकट करती है और चंद्र, सूर्य तथा अग्नि रूप है—

तदन्तर्द्वयङ्गुलोर्ध्वे तु वज्राख्या चित्रिणी तथा।
अंतः सुषुम्ना त्रिगुण लसन्ती ललना यथा।
सत्वादि त्रिगुणाधारा चंद्र सूर्याग्नि रूपिणी।।

आगे, शंखिनी नाड़ी के विषय में शास्त्रकार कहता है कि नाड़ी कंदमूल से प्रारंभ होकर सरस्वती और गांधारी के मध्य में रहते हुए कंठ देश में पहुँचती है। फिर वहाँ से इसकी एक शाखा धनुराकार होकर कान में जाती है और दूसरी सिर के ऊपरी भाग में चली जाती है—

सरस्वती कुहूश्चैव सुषुम्नापार्श्वयोः स्थिते।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च इडायाः पूर्व पार्श्वयोः।।
गान्धार्याश्च सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता च शंखिनी।
शंखिनी नाम सा नाड़ी सव्यकर्णान्त मिष्यते।।
शंखिनी कंठ विवरात् तिर्यग्भूता ललाटगा।
चित्रिणी संगताश्लिष्टा यवच्छिरसमम्बिके।।

सरस्वती और कुहू सुषुम्ना के दोनों ओर हैं। इड़ा के बाईं और दाहिनी ओर गांधारी और हस्ति जिह्वा है। गांधारी और सरस्वती के मध्य में शंखिनी है। यह बाएँ कान की ओर जाती है। शंखिनी कंठ कूप से आरंभ होकर धनुषाकार मुड़ती हुई मस्तक की ओर जाती है और तब चित्रिणी नाड़ी के साथ संयुक्त होकर रस्सी के समान बल खाती हुई सिर की ओर जाती है।

शंखिनी के ब्रह्मरंध्र में जाने की बात यहाँ भी स्पष्ट होती है—

सुषुम्ना चव्यवल्लीव मेरुश्लिष्टा पुरोगता।
ग्रीवांतं प्राप्य गलिता तिर्यग्भूता वरानने।
शंखिनी नालमालम्ब्य गता सा ब्रह्मसादनम्।।

सुषुम्ना मेरुदंड से चव्य-बेल के समान लिपटती हुई गर्दन के अंत में अपने को शंखिनी के दंड पर सहारा देती हुई समाप्त हो जाती है। शंखिनी ब्रह्म क्षेत्र की ओर जाती है। इन नाड़ियों के धनुराकार मुड़ने के विषय में 'षट चक्र निरूपण' के द्वितीय श्लोक में लिखा है—

'तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणव विलसिता योगिनां योग गम्या'

उस (वज्रा नाड़ी) के अंदर चित्रिणी है, जो आज्ञा चक्र पर प्रणव के समान (गोलार्ध बनाती हुई) पहुँचती है और योगियों को योग से प्राप्त (सिद्ध) होती है। प्रणवाकार के संबंध में कहा है—

चापाकारे स्थिते चान्ये सुषुम्ना प्रणवाकृतिः।
पृष्ठास्थि वुण्टितो भिन्ना तिर्यग्भूता ललाटगा।
भ्रूमध्ये कुण्डली लग्ना मुखेन ब्रह्म रन्ध्रगा।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् सुषुम्ना मेरुदंड से प्रारंभ होकर मस्तक तक पहुँचती है। भ्रू-मध्य के बीच कुंडली युक्त होकर (छल्ला बनाती हुई) ब्रह्म रंध के पास अपना मुँह खोलती है।

वास्तव में सुषुम्ना द्वादश नाड़ी ग्रंथि (द्वादश दल पदम्) तक जाती है। जो ब्रह्म रंध्र के पास है। आगे चित्रिणी के विषय में 'षटचक्र निरूपण' का निम्न श्लोक स्पष्ट करता है—

'लूतातन्तूपमेया सकल सरसिजान् मेरुमध्यान्तर स्थान्।'

मकड़ी के धागे के समान सूक्ष्म चित्रिणी सभी मेरुदंड स्थित षड्ग्रंथियों से होती हुई ऊपर पहुँचती है। ऐसा आभास होता है मानों सभी ग्रंथियाँ, जिन्हें पदम् अथवा चक्र भी कहा जाता है, उसी पर लटकी हुई हैं।

भित्वा देदीप्यते तद्ग्रथनरचनया शुद्ध बोध स्वरूपा।
तन्मध्ये ब्रह्मनाड़ी हर मुख कुहरादि देवान्तसंस्था।।

चित्रिणी शुद्ध ज्ञान स्वरूप है उसके अंदर ब्रह्म नाड़ी है जो मूलाधार के स्वयं भू लिंग के मुख से मस्तिष्क में सहस्त्रार के परम बिंदु तक फैली हुई है।

हर मुख कुहर मूलाधार के कंद के बीच में है और आदि देव अर्थात् आत्मा का स्थान ब्रह्मरंध्र में है। आत्मा को आदि देव इसलिए माना है चूँकि गर्भ में शरीर निर्माण का प्रारंभ डिंब में आत्मा के आ जाने पर ही होता है, अन्यथा नहीं। हर मुख कहने से शिवजी के लिंग छिद्र को भ्रांति होती है, परंतु यह मात्र शिव के लिंग की ही बात नहीं है, कुंडलिनी मार्ग का प्रत्येक साधक शिव है। उसे केवल अपने को पहचानना भर है, फिर तो उसके मुँह से स्वतः ही फूट पड़ेगा—**शिवोऽहम् ब्रह्मोऽहम्।**

विद्युन्माला विलासा मुनिमनसि लसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा।
शुद्ध ज्ञान प्रबोधा सकल सुखमयी शुद्ध बोध स्वभावा।।
ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्य प्रदेशं।
ग्रन्थि स्थानं तदेतद्वनमिति सुषुम्नाख्यानाड्या लपन्ति।।

विद्युत्माला के समान मुनियों के मन में चमकने वाली कमल तंतु के समान सूक्ष्म, तत्व ज्ञानयुक्त, परम चैतन्य सर्वानंदमयी चित्रिणी नाड़ी है, जिसका अंत मार्ग ब्रह्म नाड़ी कहलाता है। जिस क्षेत्र में अमृत वर्षा होती है वह शिव (आत्मा) के मार्ग का द्वार तथा ब्रह्म (आत्मा) नाड़ी का मुँह होने से ब्रह्म (आत्मा) द्वारा कहलाता है। 'सुधा धार' शब्द को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने **'परम शिव शक्ति सामरस्यनिः सृतामृताधरः'** कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि यह अमृत परम-शिव और शक्ति के संभोग से प्राप्त होता है, जब वे मूलाधार में स्थित होते हैं अर्थात् मूलाधार चक्र में दर्शाई गई स्थिति 'ऊर्ध्व संभोग-रत' होते हैं। यह ब्रह्म द्वार ही ग्रंथि स्थान तथा सुषुम्ना का मुख कहलाता है।

इन नाड़ियों को सबसे निचली ग्रंथि (मूल ग्रंथि) एक कंद के रूप में है। कंदमूल का स्थान गुदा से दो अंगुल ऊपर और लिंग मूल से दो अंगुल नीचे, चिड़िया के अंड़े के रूप में चार अंगुल चौड़ा स्थान है। यहाँ से 72,000 हजार नाड़ियाँ निकली हैं।

गुदात्तु द्वयंगुलादूर्ध्व मेढ्रत्तु द्वयंगुलादधः।
चतुरंगुल विस्तारं कन्दमूलं स्वगाण्डवत्।
नाड्यस्तस्मात् समुत्पन्नाः सहस्त्राणां द्विसप्ततिः।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुषुम्ना से निकलने वाली बहुत-सी नाड़ियाँ शरीर से अलग-अलग न जाकर प्रारंभ में ही आपस में गुँथकर जाल-सा बनाती हैं। जहाँ ऐसा गुच्छा निर्मित होता है वहाँ सुषुम्ना कुछ मोटी हो जाती है। ऐसे स्थलों को ही योग की भाषा में चक्र (पदम्) कहा जाता है। पृष्ठ वंश में बृहत् रंध्र से लेकर नीचे कटि प्रदेश तक सुषुम्ना पर नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः बनने वाले चक्रों के नाम इस प्रकार हैं—

मेरुदंड के नीचे त्रिकास्थि छिद्रों से बाहर निकली सुषुम्ना की नाड़ियां अश्व पुच्छ के समान गुच्छा बनाती हैं, जो मूलाधार चक्र कहा जता है। इस गुच्छे का स्थान लिंग मूल से दो अँगुल नीचे तथा गुदा से दो अँगुल ऊपर कंद के रूप में बतलाया है। इसके निर्माण में त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि से निकलने वाली नाड़ियाँ भाग लेती हैं। यहाँ की नाड़ियाँ नीचे के अंगों की पेशियों का संचालन करती हैं। त्रिकास्थि की नाड़ियाँ एक और जाल बनाती हैं, जो मूलाधार से ऊपर है। इसमें कटि प्रदेश की कशेरुकाओं से निकलने वाली पाँच नाड़ियाँ भाग लेती हैं। यह जाल स्वाधिष्ठान चक्र कहलाता है। इस जाल से पैरों की ऊपरी पेशियाँ भी संबंधित होती हैं। वक्ष प्रदेश की प्रथम नाड़ी तथा कटि प्रदेश की अंतिम नाड़ी मिलकर मणिपूरक चक्र का निर्माण करती हैं। अनाहत चक्र के निर्माण में वक्ष प्रदेश की नाड़ियाँ तथा ग्रेवियक की अंतिम चार नाड़ियाँ भाग लेती हैं। यहाँ से भुजाओं की पेशियाँ संबंधित होती हैं। इससे ऊपर का जाल विशुद्ध चक्र है, जिसे ग्रेवियक कशेरुकाओं के आठ जोड़े नाड़ियों में से प्रथम चार जोड़े नाड़ियाँ निर्माण करते हैं। इस क्षेत्र की नाड़ियाँ ग्रीवा के पश्च भाग सिर के पश्च भाग और कंधे के पश्च भाग की पेशियों के कार्यों तथा संवेदनाओं का वहन करती हैं।

कुंडलिनी ऊर्जा

कुंडलिनी ऊर्जा के सिद्धांत को समझने के लिए हमें पहले 'ऊर्जा' की प्रकृति को समझ लेना आवश्यक है। यूँ तो सभी वस्तुएँ मानव शरीर मस्तिष्क सहित "गतिमान ऊर्जा" हैं। जिस

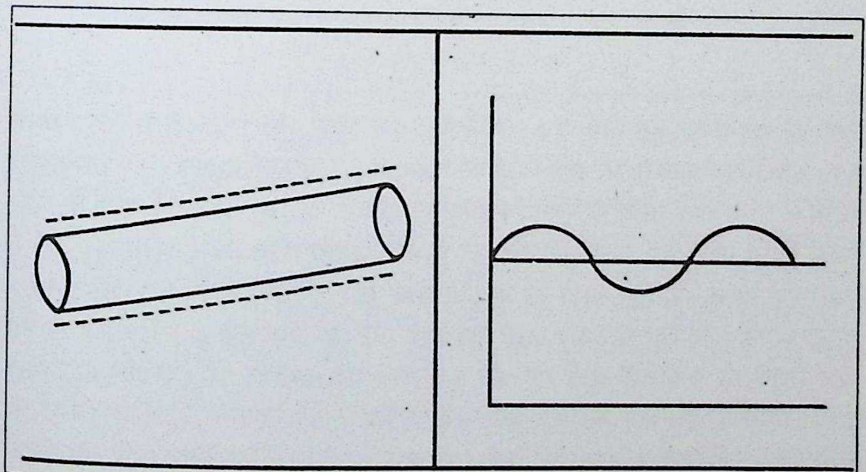

ऊर्जा की हम बात कर रहे हैं उसे चीनी लोग 'ची' जापानी लोग 'की' भारतीय लोग 'प्राण' तथा पश्चिमी देशों के लोग 'जैव ऊर्जा' अथवा 'लाइफ एनर्जी' कहते हैं। जिसे योगी लोग कुंडलिनी शक्ति अथवा सर्पेंटाइन पावर के नाम से जानते हैं। वैज्ञानिक लोग जानते हैं कि ऊर्जा कभी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नष्ट नहीं होती। आप लोगों ने विद्युत् ऊर्जा के बारे में बहुत कुछ अनुभव किया है विद्युत् को सुचालक तारों के सहारे कहीं भी ले जाया जाता है। उस समय वह तार के ऊपरी आवरण पर प्रवाहित होती है, यदि सूक्ष्म रूप में बात करें, तो ऊर्जा इस प्रकार भी प्रवाहित नहीं होती अपितु परमाणु का इलेक्ट्रोन एक परमाणु से दूसरे परमाणु में और फिर दूसरे परमाणु का इलेक्ट्रोन तीसरे परमाणु में कूदता हुआ आगे बढ़ता है, जिसे हम मोटी भाषा में कह देते हैं कि धारा (Current) प्रवाहित हो रही है। फिर जिस आवेश के साथ यह धारा प्रवाहित होती है, उसे ग्राफ के रूप में अंकित कर लेते हैं और तब कहते हैं कि करेंट साइन वेव के रूप में प्रवाहित हो रही हैं अथवा नॉन साइनोसॉइडल वेवे के रूप में। वास्तव में प्रवाह का रूप भी ऐसा सर्पाकार अथवा बिना सर्पाकार नहीं होता। सर्पाकार आदि तो ग्राफ का आकार है, ऊर्जा का नहीं।

ग्राफ के आकार के तात्पर्य यह है कि ऊर्जा वाली रेखा के मध्य में स्थित '0' बिंदु से ऊर्जा ऊपर को चली और फिर 6.5 तक पहुँचकर नीचे की ओर उतरती हुई '0' बिंदु वाली

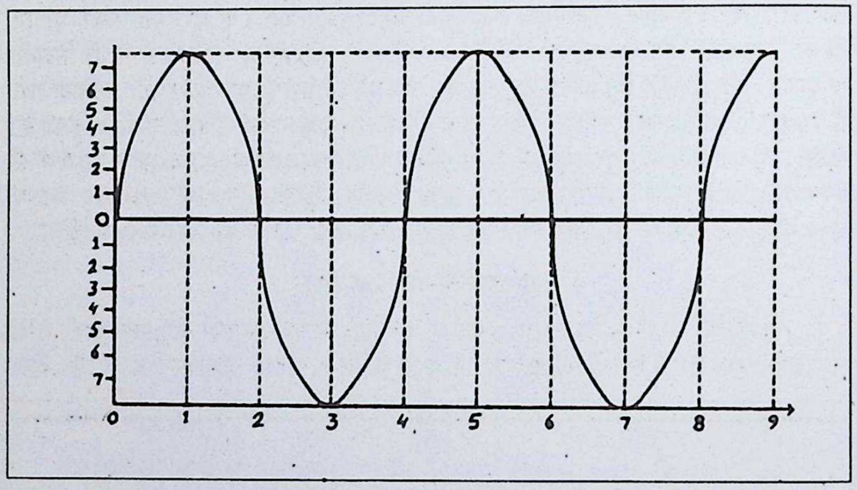

रेखा को पार करती हुई नीचे के 6.5 वाले बिंदु तक पहुँची और फिर वहाँ से उठना प्रारंभ हुई। अब देखिये ग्राफ में एक ओर ऊर्जा की गति दर्शाई है और दूसरी ओर समय दर्शाया है। समय के साथ-साथ ऊर्जा में परिवर्तन होता है। मानलो '0' बिंदु पर ऊर्जा शून्य थी, फिर ऊर्जा बढ़ना प्रारंभ हुई, जैसे—कि धीरे-धीरे वोल्टेज अथवा करेंट बढ़ना प्रारंभ कर देती है पहले एक वोल्ट बढ़ी फिर थोड़ी देर बाद दो वोल्ट बढ़ी और एक सेकंड पूरा होते-होते 6.5 वोल्ट हो गई और फिर धीरे-धीरे ऊर्जा कम होने लगी और कम होते-होते शून्य '0' हो गई और उससे भी कम होती चली गई और 6.5 वोल्ट तक कम हो गई फिर धीरे-धीरे बढ़ने लगी। ऊर्जा के इस कम अथवा अधिक होने की स्थिति को ग्राफ पर रेखांकित किया, तो ऊपर चित्र में दिखाये अनुसार आकृति बनी जो सर्पाकार है। इसे ट्रिग्नोमेट्रिकली 'साइन वेव' कहा गया। जिस ऊर्जा की गति का ग्राफ 'साइन वेव' जैसा नहीं बनता उसे 'नॉन साइनुसोइडल वेव्' कहा जाता है। वास्तव में ऊर्जा सर्प के समान टेढ़ी-मेढ़ी होकर नहीं चलती अपितु कम-ज्यादा होती हुई प्रवाहित होती है। ऊर्जा के इस प्रवाह को करेंट या धारा कहा जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तारों के सहारे चलने वाली ऊर्जा आवृत्ति (Frequency) में कम होती है यदि अधिक उच्च आवृत्ति की ऊर्जा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना हो, तो तारों के स्थान पर वेव गाइड का उपयोग किया जाता है। वेव गाइड्स नल के पाइप के समान खाली ट्यूब होती हैं इन खाली पाइप्स के अंदर ऊर्जा गोल-गोल चक्रों अर्थात् वृत्तों या कुंडलों के रूप में

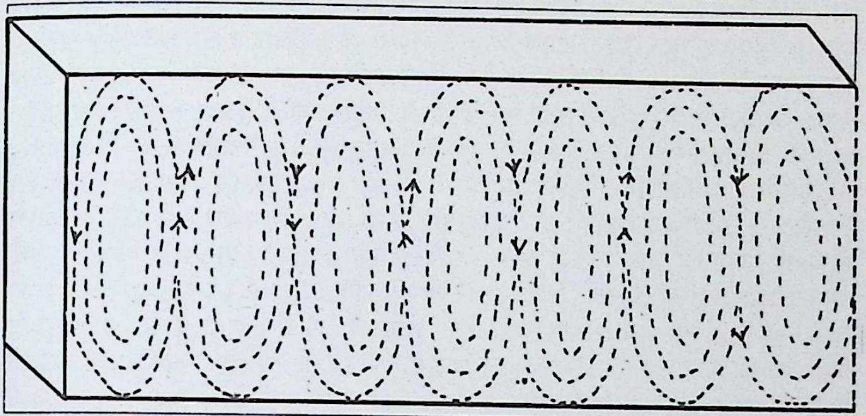

चलती है और एरियल तक पहुँचती है जहाँ से इस ऊर्जा को आकाश में प्रसारित कर दिया जाता है। ऐसी ऊर्जा जीव मात्र में विद्यमान है, जो स्नायुमंडल की नाड़ियों में प्रवाहित होती रहती है। प्राचीन चिकित्सक तथा दार्शनिक इस प्राण ऊर्जा को ही कुंडलिनी शक्ति कहा करते थे। ऊर्जा प्रवाह की कमी अथवा वृद्धि की स्थिति को चीनी लोग यिन-याँग नाम से पुकारते हैं और भारतीय दार्शनिक इसे चंद्र ऊर्जा तथा सूर्य ऊर्जा नाम देते हैं। आयुर्वेद के अनुसार नाड़ियों में बात प्रवाहित होता है। बात अर्थात् वायु के रूप में इसी ऊर्जा का प्रवाह स्नायुओं में होता है, जो शरीर के किसी भी ऊपरी भाग के दबाव और तनाव को मस्तिष्क तक पहुँचाता है और मस्तिष्कीय संदेश को संबंधित अंग तक।

विज्ञान की भाषा में यह ऊर्जा 'इलैक्ट्रोमेगनेटिक वेव्स' के नाम से जानी जाती है। इन्हें खुले आकाश में प्रसारित करने के लिए रिफ्लेक्टर्स तथा डायरेक्टर्स का उपयोग किया जाता है। यदि हमें अपनी ऊर्जा को आकाश में किसी विशेष दिशा की ओर प्रसारित करना हो, तो रेडियो तरंगों के समान केरियर वेव्स के रूप में मंत्र तरंगों का उपयोग करते हुए किसी इष्ट देवता, देवी अथवा विशेष आकृति पर कांसेन्ट्रेशन (धारणा) का अभ्यास करना पड़ता है। 'इष्ट' का उपयोग दिशा अर्थात् बीयरिंग निश्चित करता है और 'मंत्र की संख्या' मंत्र तरंगों की दूरी (रेन्ज) निश्चित करती है। दिशा तथा दूरी निश्चित होने पर साधक की आत्मिक शक्ति की तरंगें उचित ग्रह तक पहुँचकर उसे साधना का लाभ देती हैं और साधक की आत्मिक शक्ति में वृद्धि करती हैं।

ऊर्जा प्रवाह के बल में वृद्धि ओज के सत्व 'अमृत' से होती है, जो मस्तिष्क में ओज की सघनता होने पर ही कंठ में टपकता है। ओज को सघन करने के लिए प्राणायाम की कुंभक अवस्था में वज्रोली / अश्विनी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। ओज वीर्य/रज का सत्व होता है जो शक्ति चालिनी अथवा संभोग मुद्रा से अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। सामान्य रूप में प्रकृति भाव से ओज शरीर के अंदर स्वतः ही निर्मित होता रहता है और सहज रूप में मेरुदंड के मार्ग से मस्तिष्क तक चढ़ता रहता है। इस ओज को बलपूर्वक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चढ़ाने की प्रक्रिया को कुंडलिनी योग कहा जाता है चूँकि उद्वेलन के समय ऊर्जा कुंडलों के रूप में संपूर्ण शरीर की नाड़ियों में पूरे जोर-शोर से प्रवाहित होने लगती है। ऐसे उद्वेलनों के लिए भस्त्रिका प्राणायाम का उपयोग होता है। बत्तीस मिनट के भस्त्रिका प्राणायाम के पश्चात् तुरंत शांत स्थिति में निश्चल होकर पड़ जाने पर व्यक्ति विचार शून्य अवस्था में आ जाता है, जिसे मेड़िटेशन (ध्यान) कहा जाता है। ध्यान की गहराई के आधार पर मस्तिष्क अति चेतन अवस्था (सुपर कॉन्शस स्टेट) ग्रहण करता है, जिसे योग की भाषा में समाधि की अवस्था कहा जाता है। इस प्रकार समाधि बेसुध होकर पड़ जाने की अवस्था नहीं है अपितु अत्यधिक चैतन्य अवस्था है, जिसके अनुभवों के आनंद में व्यक्ति का मस्तिष्क स्थानीय सांसारिक अनुभवों को ग्रहण नहीं करता। आगे समाधियों (अर्थात् सुपर कान्शियस स्टेट ऑफ माइंड) के वरीयता के आधार पर अनेक भेद किये गये हैं। इस प्रकार समाधि का उत्प्रेरण कुंड रूप में शरीर की नाड़ियों में प्रवाहित होने वाली प्राण ऊर्जा का उद्वेलन करने पर होने के कारण कुंडलिनी क्रिया को समाधि सिद्ध करने की क्रिया कहा जाता है। कुंडलिनी क्रिया के सभी अभ्यास तंत्रिका संस्थान (नर्वस सिस्टम) को सीधे प्रभावित करते हैं इसलिए विशेष सावधानी रखनी पड़ती है और इन अभ्यासों को योग-परंपरा के रूप में एक से दूसरे को, दूसरे से तीसरे को सिखाया जाता है, जिसके कारण इसे कुल परंपरा का ज्ञान कहा गया। कोई भी क्रियात्मक ज्ञान परंपरा द्वारा ही सीखा जाता है। इसी संदर्भ में कुंडलिनी के ज्ञान को 'कुल कुंडलिनी योग' कहा गया। बाद में इसे जानने वाले लोगों ने 'कौल धर्म' नाम से अपना संप्रदाय बना लिया, परंतु वहाँ पर कुंडलिनी साधना के नाम पर 'संभोग से समाधि' की गलत प्रक्रिया में व्यभिचार प्रारंभ हो गया, फलतः उनका पतन हो गया। विभिन्न मत-मतांतरों में पतिव्रत धर्म पर अधिक जोर दिये जाने के कारण 'व्यभिचार' शब्द को दूसरे रूप में लिया गया है, अन्यथा 'उद्देश्य रहित मैथुन' को व्यभिचार माना जाता है, जैसे कोई व्यक्ति बिना किसी उद्देश्य के पानी फैलाता चला जा रहा हो, तो आप कहते हैं कि यह पानी को व्यर्थ ही फेंक रहा है यदि वह उस जल को इस प्रकार बिखेर रहा हो कि रास्ते की धूल समाप्त हो रही हो तो कहा जाता है कि वह छिड़काव कर रहा है, यदि जल किसी बाग या खेत में जा रहा है तब भी उसे व्यर्थ फेंकना नहीं कहा जाता। तांत्रिक अर्थों में व्यभिचारिक मैथुन वह है जहाँ क्षणिक आनंद के लालच में व्यक्ति अपने वीर्य रज को व्यर्थ ही नष्ट करता है, भले ही वह विवाहित युगल हो। तंत्र में कहा है—मैथुन में त्रिगुणात्मक शक्ति होती है। ऐसा मैथुन जिससे संतान उत्पन्न हो, ब्रह्मा (प्रजापति) की शक्ति का प्रतीक माना जाता है, जो प्रजा में वृद्धि करता है। जिस मैथुन में क्षरण (डिस्चार्ज) को रोक लिया जाता है वह शरीर के पोषण हेतु ओज की वृद्धि करता है। ऐसा मैथुन विष्णु की पोषक शक्ति का प्रतीक माना जाता है और व्यक्ति को ओजपूर्ण बनाता है। जो मैथुन न ओज वृद्धि करे न गर्भ स्थापन करे वह रुद्र की विनाशक शक्ति का प्रतीक बन जाता है और व्यक्ति को कभी समाप्त न होने वाली वासना का शिकार बनाकर मृत्यु के मुँह में ले जाने को तत्पर रहता है।

कुंडलिनी का जागरण

मैडम लैवेट्स्की ने कहा है—"Light travels at the rate of 1,85,000 miles per second, but Kundalini at 3,45,000 miles a second." अर्थात् प्रकाश किरणें 18,500 मील प्रति सेकंड की गति से चलती है और कुंडलिनी शक्ति की किरणें 3,45,000 मील प्रति सेकंड की गति से चलती हैं। पाश्चात्य लोग इस सर्प वलयान्विता अग्नि "कुंडलिनी" को Serpent Fire अथवा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Cosmic Electricity (विश्वव्यापी विद्युत्शक्ति) कहते हैं। मानव शरीर में यह प्रचंड शक्ति शरीर पिंड के मूल अर्थात् गुदा क्षेत्र में प्रसुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। यहाँ प्रसुप्तावस्था का अर्थ प्राकृतिक क्रियाशीलता से है और जाग्रतावस्था का अर्थ विशिष्ट क्रियाशीलता से है। असंयमी अर्थात् जो Passion Proof नहीं है, ऐसे व्यक्ति को संयमी बनाने के लिए कुंडलिनी शक्ति जाग्रत करने से पूर्व यम-निमय का अभ्यास करने की सलाह दी जाती है। अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य तथा सत्य आदि गुणों को जीवन में धारण कर लेना 'यम' है और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान 'नियम' हैं। मानव के शरीर पिंड (Etheric Body) अर्थात् स्थूल शरीर में विशिष्ट अंग प्रत्यगों से संबद्ध छः तांत्रिक चक्र माने गये हैं—मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्र, जिनमें मूलाधार मेरुदंड के निम्न भाग में अवस्थित है।

सामान्यतः योग दर्शन मानने वाले सोचते हैं कि मानव शरीर में शिराओं के जाल रूप में तार लगे हुए हैं, वास्तव में शिराएँ वे नलियाँ हैं, जो रक्त को हृदय की ओर ले जाती हैं और धमनियाँ वे नलियाँ हैं, जो रक्त को हृदय से शरीर के विभिन्न अंगों की ओर ले जाती हैं। शिरा तथा धमनियों के अलावा एक और प्रकार की नाड़ियाँ हैं, जो मस्तिष्क तथा शरीर नियंत्रण का कार्य करती है। जिन्हें स्नायु कहा जाता है, वे देखने में खोखली नली जैसी होती हैं, योग दर्शन ऐसी ही नाड़ियों के बारे में बात करता है। इन्हीं नाड़ियों में इड़ा तथा पिंगला नामक नाड़ियाँ मेरूदंड के उभय पार्श्व में हैं, सुषुम्ना नामक नाड़ी भी यहीं अवस्थित है, इन्हीं नाड़ियों के निचले छोरों पर मेरुदंड के निम्नतम पार्श्व में मूलाधार चक्र है, ऊपरी छोर पर सहस्रार चक्र (सातवाँ चक्र) है।

योग दर्शन के अनुसार प्राण शक्ति इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित होती है। योगी यदि किसी साधन के द्वारा प्राण को सुषुम्ना नाड़ी के नीचे के द्वार में से किसी प्रकार निकाल ले जाय, तो प्रसुप्त कुंडलिनी जाग्रत होकर अपने ध्येय की ओर अग्रसर होने लगती है और योगी सहश्रार में जाकर अग्नि शिक्षा के समान ज्योति के दर्शन करता है। योग दर्शन के अनुसार श्वास नाड़ी और विचार के प्रवाह को संयत कर योगी अंत में सूक्ष्म प्राण को अधीन करके जगत् के माया रूप भ्रमजाल को छिन्न-भिन्न कर देता है। इस सब साधना के लिए संपूर्ण योगदर्शन स्पष्ट चेतावनी देता है कि साधक के लिए यह नितांत आवश्यक है कि यह यम तथा नियमों का पाचन दृढ़ता से कर ले। यूँ प्राणायाम आदि के अतिरिक्त बहुत से अन्य उपाय भी हैं, जो मनुष्य की सुप्त शक्ति को जगाने में निसर्गतः समर्थ हैं। दार्शनिकों और मुनियों की सूक्ष्म संकल्प शक्ति तथा गुण स्थान क्रमारोह से भी आत्मा का कल्याण होता ही है।

कुंडलिनी शक्ति के वैज्ञानिक रूप की विवेचना करें, तो बात बहुत कुछ समझ में आ सकती है। योग वेत्ताओं ने नाड़ियों की बात की है। नाड़ियों की वैज्ञानिकता समझने से पूर्व थोड़ा भौतिक विज्ञान के कुछ सिद्धांतों पर बात कर लें। आप लोगों ने रेडियो स्टेशन के ट्रांसमीटर्स के बारे नें सुना होगा कि एक व्यक्ति उद्घोषक या कलाकार कुछ बोलता है, तो वह बात माइक्रोफोन पकड़ता है फिर वह एम्प्लीफाई करके ट्रांसमीटर में जाती है और ट्रांसमीटर उसे एरियल तक भेज देता है जहाँ से वह बात हवा में तैर जाती है, फिर दूसरी ओर रिसीवर का एरियल उस बात को पकड़ लेता है, वह एम्प्लीफाई करके पुनः लाउडस्पीकर में दे दी जाती है, जिसे कोई भी व्यक्ति सुन सकता है। अब ट्रांसमीटर से एरियल तक जाने की जो प्रक्रिया है उसमें अलग-अलग फ्रीक्वेन्सी के आधार पर कहीं ओपिन वायर ट्रांसमिशन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लाइन्स का उपयोग होता है, तो कहीं कोएक्सल लाइन का। अल्ट्रा हाई तथा माइक्रोवेव फ्रीक्वेन्सीज पर ऐसी ट्रांसमिशन लाइंस भी रेडियेशन लौसेज अथवा रेसिस्टेंस लौसेज के कारण व्यर्थ रहती हैं। उच्च फ्रीक्वेंसी की इलेक्ट्रो मेगनेटिक एनर्जी के ट्रांसमिशन के लिए वेव गाइड्स का उपयोग किया जाता है। वेव गाइड धातु की एक पतली खोखली ट्यूब होती है, जो गोल वर्गाकार, आयताकार आदि विभिन्न काट (क्रौस सेक्शनल डायमेन्शन्स) में देखी जा सकती है। वेव गाइड में वेव के प्रोपेगेशन की बात करते समय हम इलेक्ट्रिक तथा मेगनेटिक फील्ड्स पर विचार करते हैं। वोल्टेज सदैव इलेक्ट्रिक फील्ड युक्त होती है और करेंट मेगनेटिक फील्ड युक्त। अतः इलेक्ट्रोमेगनेटिक फील्ड का अर्थ कोई तीसरी बात न समझें। इन वेव गाइड्स की खोखली ट्यूब्स में यही इलेक्ट्रोमेगनेटिक एनर्जी ट्रांसमिट की जाती है।

हमारी पृथ्वी एक बहुत बड़ा मेगनेट (चुंबक) है और विज्ञान का यह सिद्धांत है कि यदि मेगनेट गति करे, तो इलेक्ट्रिक उत्पन्न होती है इसी प्रकार यदि इलेक्ट्रिक गति करे, तो बहुत से पदार्थ मेगनेट बन जाते हैं। पृथ्वी का चुंबकत्व तथा उसकी गति दोनों ही बातें किसी से छिपी नहीं हैं, अतः उससे उत्पन्न विद्युत् से किसी भी जड़ चेतन को अछूता समझना युक्ति युक्त नहीं है। मानव शरीर में भी अपनी शक्ति है, जो पुंजीभूत होकर ब्रह्म अथवा आत्मा नाम से शरीर को जीवन मरण की शृंखला में बाँधे है। शरीर की विद्युत्धारा का विश्व की महाविद्युत्धारा में लय होना और महा विद्युत्धारा को शरीर में आवश्यकतानुसार लय करना योगी लोगों को सामान्य कार्य रहता है।

हमारा मस्तिष्क एक रेडियो ट्रांसमीटर वाला कार्य कर देता है और विचार युक्त शक्ति तरंगों को वेव गाइड रूप में नाड़ियों में भेज देता है। यह वेव गाइड्स विभिन्न प्रकार के एरियलों से जुड़ी रहती हैं, जिन्हें सामान्य भाषा में हम लोग केश, बाल या रोम कहते हैं। वेवगाइड में चलने वाली इलेक्ट्रोमेगनेटिक वेव्स में फेस वेलोसिटी होती है, वे अटेनुएटेड भी होती हैं। यदि वेव गाइड के सिरे पर लोड इम्पीडेंस ठीक से सैट न हो, तो वे रिफ्लेक्ट होने लगती हैं इसके लिए इंपीडेंस मेचिंग करनी पड़ती है। यदि इंसीडेन्ट वेव तथा रिफलेक्टेड वेव दोनों ही वेव गाइड में एक साथ उपस्थित हों, तो परिणामस्वरूप स्टेण्डिंग वेव पैटर्न उत्पन्न हो जाता है। वेव गाइड का सबसे बड़ा लाभ उसकी उत्तम 'अटेनुएशन फ्रीक्वेंसी करेक्टरिस्टिक' होती है। कुछ विशिष्ट बाउण्ड्री कंडीशन्स को पूरा करने वाले बहुत से भिन्न-भिन्न प्रकार के 'फील्ड कन्फिगरेशन्स' वेव गाइड में सैट हो जाते हैं। ऐसे प्रत्येक फील्ड के कन्फिगरेशन को 'मोड' कहा जाता है। यह मोड्स विभिन्न प्रकार की कट ऑफ वेव लेंग्थ वाली होती है। सबसे अधिक कट ऑफ वेव लेंग्थ वाली मोड को डोमिनेन्ट मोड कहा जाता है। एक प्रकार के विद्युत् क्षेत्र में वह वेवगाइड के ध्रुव (Axis) से आड़ा रहता है और संलग्न चुंबकीय क्षेत्र गाइड-एक्सिस की दिशा में रहता है। ऐसी मोड़ को ट्रांसवर्स इलैक्ट्रिक मोड अथवा टी० ई० मोड़ या एच० मोड कहा जाता है। दूसरे प्रकार में, चुंबकीय क्षेत्र प्रत्येक स्थान पर गाइड एक्सिस से आड़ा (Transerse) रहता है और विद्युत् क्षेत्र ध्रुवीय दिशा में ऐसी मोड्स को ट्रांसवर्स मेगनेटिक अथवा टी० एम० या ई० मोड्स कहा जाता है। चित्र में ऐसी मोड्स के ट्रांसमिशन को दिखाया गया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

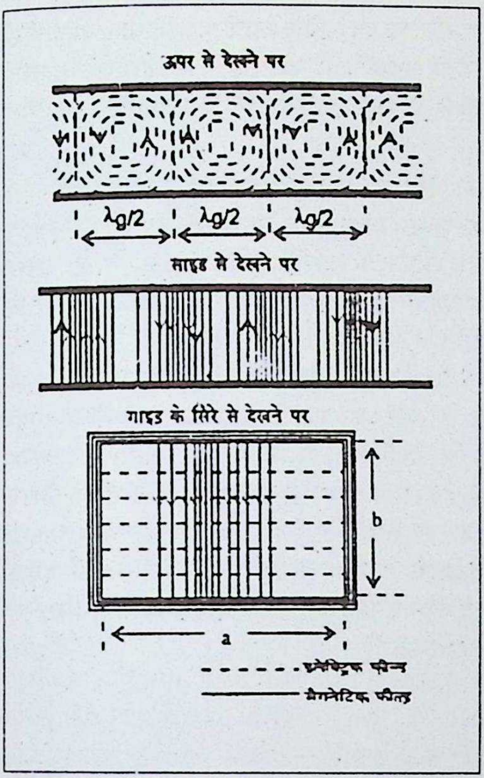

कट ऑफ वैल्यू से कम वेवे लेंग्थ पर आयताकार वेवगाइड में डोमिनेंट मोड प्रदर्शित करने वाले इलेक्ट्रिक तथा मैगनेटिक फील्ड्स चित्र में दिखाये गये हैं। विद्युत् क्षेत्र (Electric Field) गाइड एक्सिस से आड़ा (Transverse) है और आमने-सामने की दीवारों तक फैला हुआ है। इलेक्ट्रिक फील्ड की इंटेन्सिटी गाइड के केंद्र में अधिकतम है और किनारों की ओर यह सघनता (Intensity) कम होती चली जाती है। मैगनेटिक फील्ड इलेक्ट्रिक फील्ड से समकोण (Right Angle) पर लूप के आकार में रहता है। इसी आकार में फील्ड वेव गाइड के एक्सिस के साथ यात्रा करता है। इसे सामान्य भाषा में ऐसे कहा जा सकता है कि फील्ड के गोले (कुंडल) वेव गाइड के अंदर खिसकते जाते हैं (लुढ़कते नहीं जाते, आगे की ओर सरकते हैं)। ऐसे ही गोलों अर्थात् कुंडलों के रूप में शरीर के स्नायुमंडल में जो विद्युत् शक्ति प्रवाहित होती है, उसे "कुंडलिनी शक्ति" अथवा जैव शक्ति (Live Force) जिसे योग दर्शन 'प्राण' नाम देता है, प्राकृतिक रूप में संपूर्ण शरीर में व्याप्त होकर जीवन के लिए आवश्यक सभी कार्य कराती रहती है, परंतु जब हम कुछ 'विशेष' करना चाहते हैं, तो हमें अधिक जीवनी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है और तब हमें कुछ ऐसी क्रियाएँ करनी पड़ती हैं कि कुंडलिनी शक्ति अधिक मात्रा में शरीर में प्रवाहित हो। कुंडलिनी की तरंगें उठाने का स्थान मेरुदंड का निम्न पार्श्व है और तरंगें उठाने की क्रिया वज्रोली तथा अश्विनी मुद्राएँ हैं। आप जानते हैं कि कोई भी विद्युत् शक्ति जब आप जनरेट करते हैं, तो शक्ति की मात्रा के अनुरूप उसे सँभालने लायक सावधानियों पर समुचित ध्यान दिया जाता है। कुंडलिनी शक्ति जनरेट करते समय बहुत ऊष्मा उत्पन्न होती है। आप लोगों ने देखा होगा शक्ति किसी भी प्रकार की उत्पन्न हो वह ऊष्मा देती है। डीजल इंजन को ठंडा करने के लिए आप पानी डालते हैं, ट्रांसफार्मर को ठंडा बनाये रखने के लिए तेल का प्रयोग करते हैं इसी प्रकार कुंडलिनी की 'ओज' है, जो वीर्य से निर्मित होती है और मेरुदंड के निम्न क्षेत्र से मस्तिष्क पर्यंत भरी रहती है। जब मस्तिष्क कोई कार्य करता है, तो वह स्वभावतः गर्म होने लगता है, उस गर्मी को पचाने में मस्तिष्क में भरा हुआ ओज काम आ जाता है, इस ओज के स्थान पर नया ओज मेरुदंड की ओर से सप्लाई हो जाता है और अंतत मेरुदंड के नीचे वाला ओज ऊपर की ओर चढ़ जाता है, अब निम्न पार्श्व में उत्पन्न रिक्त स्थान को भरने के लिए वीर्य में से सत्व रूप नया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओज निर्मित हो जाता है। इसलिए जो लोग मस्तिष्क का अधिक उपयोग करने वाले कार्य जैसे कोई अनुसंधान, कोई मंत्र साधना, कोई विशेष पढ़ाई आदि करते हैं, उन्हें वीर्य संचय करने की, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने की सलाह दी जाती है, जिससे ओज की पूर्ति करने के लिए समुचित मात्रा में वीर्य उपलब्ध होता रहे।

जब यह कुंडलिनी की तरंगें सहस्रार अर्थात् मस्तिष्क तक पहुँच जाती हैं, तो लोग कुंडलिनी जनरेट करने वाली क्रियाएँ बंद करके शांत होकर पड़ जाते हैं, उसके पश्चात् कुंडलिनी की तरंगों का आनंद आता है। कुछ लोग उसे 'उतरनी कुंडलिनी' नाम देते हैं। ओज का उपयोग मस्तिष्क में होने के साथ-साथ यह तरंगें विभिन्न स्नायुओं से होती हुई शरीर के सभी रोम कूपों तक पहुँचकर ऐरियलों अर्थात् शरीर के रोम-रोम में पहुँच जाती हैं, जहाँ उन्हें वे प्रसारित (Transmit) करने का कार्य कर देते हैं। यह प्रसारित शक्ति पुंजीभूत होकर इन्हीं ऐरियलों के चारों ओर एकत्र होकर शरीर के चारों ओर एक घेरा बना लेती है जिसे आभा मंडल अथवा (Aura) कहा जाता है। यदि वह तरंगें आकाश में आगे बढ़ जायँ, तो उनका प्रसारण हो जाता है। तरंगों को धारण अर्थात् (Cocentration) के अभ्यास द्वारा किसी भी विशेष दिशा की ओर प्रसारित किया जा सकता है। इन तरंगों को यदि किसी प्रकार धक्के (Push) मिलते रहें, तो चाहे जितनी दूरी तक पहुँचा सकते हैं। अब तक ऋषि-मुनि लोग मंत्रों के धक्के दे देकर 'इष्ट' का ध्यान करते हुए इन तरंगों को मनचाही दूरी तक मनचाही दिशा में प्रसारित करके आध्यात्मिक तथा आधिदैविक लाभ उठाते रहे हैं।

OO

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

8 स्वर और मन की शक्ति

तालबद्ध स्वर शक्ति

प्रकृति का कण-कण कंपित है और अपने कंपनों के स्पंदन प्रकृति में छोड़ता रहता है, परंतु यह कंपन एक विशेष ताल में होते हैं। अलग-अलग कणों की अलग-अलग ताल है। बेताल को हम शव कहते हैं, परंतु प्रकृति में शव भी बेताल नहीं बचता वह भी सड़कर, गलकर या जलकर विश्वव्यापी ताल में लय हो जाता है। इस प्रकार 'ताल' ही समस्त विश्व की हलचलों का मूल आधार है। समुद्र का ज्वार-भाटा, दिन-रात होना, ग्रहों का घूमना, श्वास-प्रश्वास, हृदय की धड़कन, रक्त परिभ्रमण आदि सब विश्व की 'ताल' का लीला विलास है।

स्वर योग द्वारा प्राणशक्ति प्राप्त करने की जब बात चलती है, तो ताल युक्त श्वास पर बात अटक जाती है। स्वर का ध्यान रखते हुए प्राणशक्ति का आयाम करने वाला अभ्यास 'प्राणायाम' कहलाता है। अखिल विश्व में असंख्य तालें व्याप्त हैं, जिन्हें ताल के स्पंदनों की संख्या के आधार पर 'फ्रीक्वेंसी' कहा जाता है। प्रकाश की फ्रीक्वेंसी, शोर की फ्रीक्वेंसी गाने की फ्रीक्वेंसी, बाजे की फ्रीक्वेंसी सभी एक-दूसरे से अलग हैं। यहाँ तक कि एक-एक कण के स्पंदन की फ्रीक्वेंसी अलग-अलग है और इस भिन्नता के कारण ही हम सभी का अलग-अलग अस्वादन कर पाते हैं।

सामान्यतः व्यक्ति चार से छः बार हाथ की नाड़ी फड़कने के अंतराल में एक बार श्वास लेता है। प्रारंभ में अभ्यास के लिए श्वास खींचने (पूरक करने) और श्वास छोड़ने (रेचक) में नाड़ी की फड़कन समान संख्या में रखें और श्वास रोककर रखने (कुंभक करने) में आधी संख्या में रखें। जैसे पूरक और रेचक आदि छः बार नाड़ी फड़कने तक करें, तो कुंभक तीन बार नाड़ी फड़कने तक करें। जब श्वास के क्रम में वृद्धि करें, तो कुंभक की मात्रा भी उसी अनुपात में बढ़ायें। यदि सुयोग हो तो प्राणायाम के समय श्वासों का अनुपात बनाये रखने के लिए घड़ी से भी काम चला सकते हैं।

श्वास को ताल युक्त बनाने के लिए एक सबसे सरल और उत्तम अभ्यास है—'श्वास के आवागमन पर ध्यान देना'। अब श्वास अंदर जा रही है, और अब श्वास बाहर जा रही है', यदि प्रत्येक श्वासप्रश्वास पर जब जब याद आ जाय तब भी ध्यान दे लिया जाय, तो व्यक्ति चौबीस घंटों में कम से कम आठ घंटे तो ध्यान दे ही लेगा। श्वास के उतार-चढ़ाव को इस अभ्यास में कम या अधिक नहीं करना है, केवल देखते रहना है कि अब श्वास आई और अब श्वास गई। प्राणायाम की शेष सारी क्रियाएँ अपने आप हो जायेंगी और व्यक्ति धीरे-धीरे तालयुक्त श्वास लेने लग जायेगा। इस अभ्यास में श्वास तालयुक्त तो हो ही जाती है साथ ही प्रति मिनट संख्या में कम होती चली जाती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तालयुक्त श्वास संपूर्ण शरीर की क्रियाओं को तालयुक्त बनाती है और श्वास प्रति मिनट संख्या में कम होने से आयु वृद्धि होती है। ज्यों-ज्यों श्वास प्रति मिनट कम होगी, तो श्वास का परिमाण बढ़ेगा परिमाण बढ़ने से अपेक्षाकृत अधिक ऑक्सीजन फेफड़े में पहुँचेगी, जो रक्त के कणों में समा जायेगी। वह अधिक ऑक्सीजन शरीर के कोषों तक पहुँचेगी, वे अधिक कार्बन फेकेंगे और अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करेंगे परिणामतः संपूर्ण कोष अपेक्षाकृत अधिक जीवंत और क्रियाशील बन जायेंगे, जो आयु वृद्धि करेंगे। सामान्यतः व्यक्ति 18 श्वास प्रति मिनट लेता है, जो इस अभ्यास से धीरे-धीरे घटकर 4 से 6 श्वास प्रति मिनट पर आ जाती है। तालयुक्त श्वास ही रोग निवारक शक्ति संपन्न होती है।

स्वर उपयोग

नाड़ियों के उपयोग के बारे में स्वरोदय शास्त्र में कहा गया है—

बामे चामृतारूपा स्याज्जगदाप्यायनं परम्।
दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयेत्सदा।।

बाएँ भाग में स्थित इड़ा नाड़ी अमृत स्वरूप है और दक्षिण भाग में स्थित पिंगला नाड़ी सांसारिक कार्यों के करने में उपयोगी है—

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु।
सर्वत्र शुभ कार्येषु वामा भवति सिद्धिदा।।

मध्यमा अर्थात् सुषुम्ना सभी कार्यों में क्रूर और दुष्ट प्रभाव देती है अतः इसका उपयोग अध्यात्म में ही किया जाता है अन्य शुभ कार्यों में बायीं नाड़ी ही सिद्धिप्रद रहती है।

पाठकों को ध्यान होगा कि बायीं नाड़ी से तात्पर्य बाएँ नासा छिद्र से श्वास का प्रवाह होना है और दाहिनी नाड़ी से तात्पर्य दाहिने नासा छिद्र से श्वास का प्रवाह होना है। जब दोनों नासारंध्रों से श्वास चले, तो वह सुषुम्ना प्रवाह माना जाता है। बायीं ओर की श्वास चलने पर चंद्र स्वर प्रवाह माना जाता है और दाहिनी ओर की श्वास चलने पर सूर्य स्वर प्रवाह माना जाता है।

चन्द्रः स्त्री पुरुषः सूर्यश्चन्द्रो गौरो असितो रविः।
चन्द्र नाड़ी प्रवाहेण सौम्य कार्याणि कारयेत्।।

चंद्र अर्थात् बाएँ स्वर को स्त्री वाचक और दाहिने अर्थात् सूर्य स्वर को पुरुष वाचक माना जाता है। चंद्र गौर वर्णी (श्वेत) तथा सूर्य कृष्ण वर्णी (काला) माना जाता है। चंद्र स्वर के प्रवाह में सौम्य कर्म करने चाहिए।

शुभाशुभ स्वर

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा।
चन्द्रः समः सुविज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा।।

घर से बाहर जाते समय चंद्र स्वर का चलना शुभ होता है और घर में प्रवेश करते समय सूर्य स्वर का चलना शुभ होता है। चंद्र सदैव सम रहता है और सूर्य विषम रहता है।

चंद्रः समपदः कार्ये रविस्तु विषमः सदा।
पूर्ण पादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यात्रा करते समय चंद्र स्वर हो, तो सम कदम बढ़ायें (2, 4, 6 सम कदम हैं और 1, 3, 5, विषम कदम हैं) और सूर्य स्वर में विषम कदम बढ़ावें। सम का अर्थ बायाँ और विषम का अर्थ दाहिना लगायें।

पर दत्ते तथा ग्राहेगृहान्निर्गमने अपि च।
यदंगे वहते नाड़ी ग्राह्यं तेन काराघ्रिणा।।

घर से चलते समय जो स्वर चल रहा हो, उसी हाथ से कोई वस्तु लेनी व देनी चाहिए।

गुरु बन्धु नृपामात्येष्वन्येषु शुभ दायिनी।
पूर्णांगे खलु कर्तव्या कार्य सिद्धिर्मनः स्थिता।।

गुरू, भाई, राजा तथा अन्य शुभ चाहने वालों के लिए पूर्ण स्वर अर्थात् प्रवाहित स्वर में कार्य करें।

अग्नि चौराधर्मधर्मा अन्येषां वादिनिग्रहः।
कर्तव्याः खलु रिक्तायां जय लाभ सुखार्थिभिः।।

अग्नि, चोर, शत्रु तथा ऋण देने वालों के लिए वशीकरण हेतु विपरीत स्वर से ही लाभ उठायें।

व्यवहारे खलोच्चाटे द्वेषिविद्यादिवंचके।
कुपित स्वामिचौराधे पूर्णस्थाः स्युर्भयंकराः।।

दुष्ट पुरुष, ठग, कुपित स्वामी तथा मूर्खादि के उच्चाटन (भगाने) में सूर्य नाड़ी का प्रयोग करना चाहिए।

शुभान्य शुभ कार्याणि क्रियते अहर्निशं यदा।
तदा कार्यानुरोधेन कार्य नाड़ी प्रचालनम्।।

जो मनुष्य दिन-रात अपनी उन्नति के कार्य करने का विचार करता है, तो वह वाम स्वर में नाड़ी चलने पर ही कार्य करें।

विपरीत स्वर

विपरीत लक्षणों की बात करते हुए शास्त्र कहता है कि–

यदा प्रत्यूष कालेन विपरीतोदयो भवेत्।
चन्द्रस्थाने वहत्येको रविस्थाने च चन्द्रमा।।

यदि प्रातःकाल से ही विपरीत स्वर उदय हो जाय अर्थात् जब स्वर शास्त्रीय विचार के विपरीत उदय हो और चंद्र के स्थान पर सूर्य और सूर्य के स्थान पर चंद्र स्वर प्रवाहित हो, तो अशुभ है।

प्रथमे मन उद्वेगं धन हानि द्वितीयके।
तृतीये गमनं प्रोक्तं मिष्ट नाशं चतुर्थके।।

पहले तो मानसिक उद्वेग, दूसरे धन का नाश, तीसरा अकारण गमन और चौथा इच्छित या प्रिय वस्तु का नाश होता है।

पंचमे राजविध्वंसं षष्ठे सर्वार्थनाशनम्।
सप्तमे व्याधि दुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत्।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाँचवे में राज्य का नाश, छठवें में समस्त संपत्ति का नाश, सातवें में रोग विशेष से दुःख और आठवें में मृत्यु तक हो जाती है।

कालत्रये दिनान्यष्ट विपरीतं यदा वहेत्।
तदादुष्टफलं प्रोक्तं किंचिन्न्यूनं तु शोभनम्।।

यदि आठ दिन तक तीनों कालों में विपरीत स्वर चलता रहे, तो अशुभ फल देने वाला ही समझना चाहिए।

मानव मन

पिछले अध्यायों में आप स्वरविज्ञान तथा मनोविज्ञान की अन्योन्याश्रिता देख चुके हैं। मनोचिकित्सक यदि स्वरविज्ञान के चमत्कारी प्रभावों पर ध्यान देने लगें, तो रोगी की मनःस्थिति को अधिक प्रभावी ढंग से वश में किया जा सकता है। यूँ अब बहुत से मनोचिकित्सक प्राणायाम की क्रियाएँ अपने रोगियों को कराने लगे हैं। मन या माइंड एक ऐसा अविज्ञात क्षेत्र है, जिसके विषय में बहुमूल्य चिकित्सा उपकरण भी बड़ी सीमित जानकारी दे पाते हैं। परिणामतः रोगी की मनःस्थिति का विश्लेषण पूरी तरह नहीं हो पाता और चिकित्सक एक प्रकार से रोगी को सांत्वना देने भर के लिए ही अपने हाथ पैर मार पाता है। स्वर चिकित्सा स्नायुमंडल तथा ज्ञान तंतुओं को सीधे शक्ति प्रवाहित कराती है और रोगी की चिंतन शक्ति द्वारा स्व-निर्देश भेजकर रसोत्पादक ग्रंथियों को उत्प्रेरित करती है और इस प्रकार भावना और विचारों को संबद्ध रूप में प्रवाहित कर चमत्कारी प्रभाव देती है।

सभी जानते हैं कि सामान्यतः श्वसन क्रिया के सही अभ्यास के द्वारा रक्त शोधन होता है और संबंधित बहुत से रोगों का स्वतः उपचार हो जाता है। आज की आवश्यकता कुछ ऐसी है कि भौतिक और शरीर पर परिलक्षित होने वाले बहुत से रोग कहीं न कहीं भीतर से मन व्यथित होने के कारण अपनी जड़ जमाये हुए हैं। ऐसे अपरिलक्षित मनोविकारों का उन्मूलन करना भौतिक व्याधि की अपेक्षा अधिक आवश्यक हो जाता है। आपने स्वयं अनुभव किया होगा कि चिंता, भय, आशंका, असंतोष, ईर्ष्या, द्वेष, उद्वेग, अपराधी वृत्ति आदि पर यदि मन का नियंत्रण न हो, तो संपूर्ण भौतिक शरीर व्याधि ग्रस्त दिखाई देने लगता है। सोचने के तरीके (Way of Thinking) में परिवर्तन होने पर सामान्य परिस्थितियाँ भी प्रतिकूल प्रतीत होने लगती हैं। झाड़ी को भूत समझ लेना, रस्सी को सर्प समझ लेना आदि भ्रम की प्रतिक्रिया के कारण व्यक्ति घबराकर अपना संतुलन गवाँ देता है। मानवमन इतना सशक्त है कि मनुष्य प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति में भी प्रसन्न बना रह सकता है चूँकि प्रतिकूलतायें वस्तुतः उतनी होती नहीं हैं, जितनी कि समझी जाती हैं। सामान्यतः 'असंयम' मनः शक्ति को क्षीण बनाता है और 'असंतुलन' शरीर को क्षीण बनाता है।

आज का अनैतिक वातावरण और असामाजिक व्यवहार कुशलता ने लोगों को अपनों पर भी संदेह करना सिखा दिया है, परिणाम यह होता है कि सामान्य मनोबल का व्यक्ति सहज ही विक्षुब्ध हो जाता है और स्वाभाविक मनुष्य जीवन से जुड़ी हुई अनुकूलता-प्रतिकूलताओं के भँवर में अपने को उतराया हुआ अनुभव कर भयभीत होता रहता है। यदि किसी व्यक्ति का शरीर व्याधि ग्रस्त हो, परंतु मन स्वस्थ हो, तो वह उस व्याधि को आराम से झेल लेता है और यहाँ तक कि वह बहुत बार शरीर कष्ट को ही समाप्त कर लेता है। इसी के विपरीत यदि शरीर स्वस्थ हो और मन आधि ग्रस्त हो, तो स्वस्थ शरीर भी निरर्थक चेष्टाएँ करने लगता है, इससे शरीर की तुलना में मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता का मान होता है। सनकी, बहमी,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शेखचिल्ली, क्रुद्ध, रुष्ट, उद्विग्न, असंतुष्ट, आशंकित, भयभीत, निराश, चिंतित, उदासीन व्यक्ति अपने लिए ही अपने जीवन को भार बना लेते हैं चूँकि उनके सोचने के ढंग चक्रवात के समान बन जाते हैं और अंततः वे अर्द्धविक्षिप्तवस्था में जा पहुँचते हैं। ऐसे लोग दर्द से कराहते नहीं हैं और न दूसरों से कुछ चाहते हैं, परंतु इतने पर भी वे न स्वयं चैन से बैठते हैं न दूसरों को बैठने देते हैं।

मनोविज्ञान दो प्रकार के रोग मानता है एक **आर्गेनिक** जो मनोरोग के कारण शरीर पर परिलक्षित हो उठते हैं, जैसे—केंसर, तीव्र ज्वर, मस्तिष्क, रक्त वाहिनयों के विकार (सी वी ए) अथवा रक्त के घटकों में परिवर्तन, डायबिटीज आदि दूसरे **फैक्शनल** जो शरीर पर परिलक्षित नहीं हो पाते और साइकेट्रिक केस माने जाते हैं, मनोविज्ञान में वस्तुतः इन्हीं को वरीयता दी जाती है। ऐसे मनोविकार माइनर (लघु) अथवा मेजर (बृहत्) दो प्रकार के होते हैं। माइनर या लघु मनोविकार के अंतर्गत दो प्रकार के विकार आते हैं—एक पर्सनलिटी डिसआर्डर्स, जिनमें व्यक्ति समाज विरोधी व्यवहार करता है, मादक द्रव्य सेवन करता है, आक्रामक व्यवहार करता है, विभिन्न प्रकार की काम विकृतियों में लिप्त हो जाता है, दूसरों से अलग-थलग बने रहना चाहता है और अपने को कहीं 'सैट' नहीं कर पाता, कभी-कभी तो ऐसा व्यक्ति जेल भी हो आता है। दूसरा माइनर मनोविकार 'न्यूरोसिस' की श्रेणी में आता है, जिसमें रोगी अपने को रोगी भी मानता है और अपना संबंध सामान्य जगत् से भी बनाये रखता है। ऐसे विकारों की श्रेणी में चिंता, हिस्टीरिया, भय, सनकीपन, अवसाद आदि आते हैं।

बृहत् मनोविकार (मेजर रोग) युक्त व्यक्ति बाहरी सामाजिक परिवेश से कोई तालमेल नहीं बिठा पाता इसलिए सामान्य भाषा में ऐसे रोगी को पागल कह दिया जाता है। ऐसे रोगी भी दो प्रकार के होते हैं—एक एफेक्टिव डिसआर्डर्स, जो कि भावनात्मक विक्षोम के कारण उत्पन्न होते हैं, दूसरे स्कीजोफेनिया, जो कि वैचारिक विकृति के विक्षोम के कारण उत्पन्न होते हैं। एफेक्टिव डिसआर्डर्स वाले बिना कारण हँसते, उत्तेजित हो जाते, उदास हो जाते, निराश हो बैठते, आत्महत्या कर लेना चाहते अथवा सो नहीं पाते और स्कीजोफ्रेनिया वाले अपने विचार प्रवाह को क्रमबद्ध नहीं रख पाते, उनके विचार भटक जाते हैं, छोटी-छोटी बातों पर भावनात्मक दृष्टि से असंतुलित हो जाते हैं और पागलपन के संपूर्ण लक्षणों से युक्त हो जाते हैं।

इन रोगों को दूर करने के लिए बहुत् सी तनाव निवारक ओषधियाँ, संज्ञाहर इंजेक्शन, विद्युत् के झटके (ई० सी० टी०) लिथियम, लोबेक्टॉमी ल्यूकोटॉमी आदि उपचार दिये जाते हैं, परंतु लाभ के नाम पर जो हमें मिल रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। पागल खानों में 95% प्रतिशत रोगी तो क्लास 'ए' में भर्ती होते हैं और शनैः-शनैः क्लास 'ई' तक पहुँच कर मर भी जाते हैं, परंतु सफलता नहीं मिल पाती। यदि थोड़ी गहराई में जायँ, तो आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि 95% प्रतिशत रोगी तो पागल खाने में भरती ही नहीं होते और चुपचाप तनाव कम करने की गोलियाँ खाते रहते हैं, मस्तिष्क पुष्ट करने वाली ओषधियाँ खाते रहते हैं, स्मरण शक्तिवर्धक पेय पीते रहते हैं, गुटखा, चाय, कॉफी, तमाकू, सिगरेट, शराब के सहारे जीते रहते हैं। यह बात मात्र भारत या किसी एक देश विशेष की नहीं है पूरा विश्व ही पागलखाना बना जा रहा है।

इस पागलपन से बचने का उपाय हमारे पुरातन ऋषियों और आयुर्विज्ञान के मूर्धन्य चिकित्सकों ने खोजा है और वह है स्वरसाधना अथवा प्राणायाम।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन का साथ

शरीर में शक्ति इतनी प्रचुर मात्रा में मौजूद है कि यदि उसे ढंग से खर्च किया जाय, तो सामान्यतः लोग जितना काम करते हैं उसकी तुलना में कम से कम दूना काम तो सहज ही कर सकते हैं। सार्थक प्रयोजन में जितनी शक्ति खर्च होती है, उससे कहीं अधिक निरर्थक कर्मों में खर्च होती रहती है। यदि सतर्कता से काम लिया जाय, तो इस अनावश्यक अपव्यय को बचाया जा सकता है और ऐसे कार्यों में लगाया जा सकता है, जिनसे कुछ प्रयोजन सिद्ध होता है।

अकारण बक - झक में जिह्वा के माध्यम से बहुत शक्ति नष्ट हो जाती है, लोग उसका मूल्यांकन करते ही नहीं। क्रिया कुछ भी क्यों न हो उसके लिए ऊर्जा चाहिए और उसे जुटाने में कोशिकाओं का ईंधन जलेगा ही। इस ईंधन को होली की तरह क्यों फूँका जाय ? जलाना ही हो तो चूल्हे की तरह जलाना चाहिए, जिससे कुछ पकाये जाने या बनाये जाने का प्रयोजन सिद्ध हो। व्यायाम करना और बात है उसके पीछे उद्देश्य है, पर बेकार की उछल-कूद, चंचलता और मटरगश्ती में न केवल समय बर्बाद होता है वरन् शक्ति का ऐसा महत्वपूर्ण कोश व्यय होता है जिसे यदि उपयोगी योजनाबद्ध कार्यों में लगाया जाय, तो प्रगति की दिशा में काफी दूर तक आगे बढ़ा जा सकता है। सतर्कता बरत कर शक्ति की यह थोड़ी-थोड़ी बचत और उसे उपयोगी कार्यों में लगाने की प्रवृत्ति ही बूँद-बूँद करके घड़ा भरने की उक्ति के अनुसार जीवन को महान् बनाने वाली सफलताओं में परणित होती है। शरीर की ही भाँति मस्तिष्क शक्ति का भी लोग बुरी तरह अपव्यय करते हैं। सोचने में अधिकांश निरर्थक और निरुद्देश्य बातें रहती हैं। शेख-चिल्ली की तरह रंग-बिरंगे सपने देखने में न जाने कितना समय गुजर जाता है। परिस्थिति और योग्यता से उन बातों की तनिक भी संगति नहीं होती, फिर भी लोग उड़ानें आकाश तक की उड़ते रहते हैं। सिनेमा में कोई सुंदर-सी नर्तकी देखकर आये और उसी का नशा हफ्तों मस्तिष्क पर चढ़ा रहा। यह जानते हुए भी उसका संपर्क उन जैसे गई गुजरी स्थिति के व्यक्ति लिए के सर्वथा असंभव है, फिर भी यह नहीं सोचते कि उतना चिंतन किसी काम के प्रयोजन पर केंद्रित करें, तो कितना उद्देश्य पूरा हो ? छात्रों में अनुत्तीर्ण रहने वालों में से अधिकांश ऐसे होते हैं जिन्हें निरर्थक कल्पनाओं से चित्त को हटाकर उसे उपयोगी केंद्र पर नियोजित करना नहीं आता। बहुत से व्यक्ति जीवन क्रम के साधारण उतार-चढ़ावों से उद्विग्न उत्तेजित हो जाते हैं। चिंता और व्याकुलता के कारणों का विश्लेषण किया जाय, तो प्रतीत होता है कि जिस कारण से मन को इतना उद्विग्न किया गया वह आये दिन मानव-जीवन में घटित होती रहने वाली घटनाओं में से एक बहुत ही छोटी-सी हलचल थी। मानसिक उद्वेग जितनी शक्ति नष्ट करता है उसे यदि सृजनात्मक चिंतन में लगाया जाय, तो न केवल असाधारण ज्ञान वृद्धि हो सकती है वरन् वर्तमान स्थिति से ऊँचे उठने, आगे बढ़ने के उपाय भी सामने आ सकते हैं। उद्वेग की आँधी तो इतनी भयंकर होती है कि उसमें उपयोगी एवं दूददर्शिता पूर्ण सूझ-बूझ समाप्त हो जाती है।

मनःशास्त्री विल्डर पेन फिल्ड दीर्घकालीन शोध के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानसिक स्वास्थ्य की स्थिरता इस बात पर अवलंबित है कि उसमें क्षोभ और उद्वेग कम से कम हो। जो व्यक्ति जितना ही मानसिक तनाव या दबाव अनुभव करेगा उतना ही शरीर और मन से रुग्ण होगा, साथ ही ऐसी विकृतियाँ उठ खड़ी होंगी, जिन्हें अर्द्धरुग्ण स्थिति एवं अस्त-व्यस्तता कहा जा सकता है। ऐसी मनःस्थिति का व्यक्ति अपने लिए और अपने साथियों के लिए एक समस्या बनकर रहता है। न वह स्वयं चैन से बैठता है और न दूसरों को बैठने देता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समुचित मनोयोग के अभाव में प्रायः हमारे सभी काम आधे-अधूरे रहते हैं और उनका परिणाम भी असंतोषजनक ही रहता है। यदि पूरी दिलचस्पी और तत्परता से कुछ किया जाय, तो सारी शक्ति एकाग्र हो जाने से छोटा काम भी इतना सुंदर बन पड़ता है कि करने वाले की प्रतिष्ठा एवं प्रामाणिकता में चार चाँद लग जाते हैं। फिर उसे अनायास ही एक से एक बढ़कर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सँभालने के अवसर मिलने लगते हैं। जब काम करना हो तब पूरे मन, पूरे श्रम, पूरे मनोयोग के साथ, पूरी दिलचस्पी और तत्परता के साथ उसे करने में जुटना चाहिए। इस प्रकार समान रूप से सारी तन्मयता समेट कर यदि किसी काम को किया जाय, तो अधिक मात्रा में भी होगा और उसका स्तर भी ऊँचा रहेगा।

अन्वेषक और विज्ञानी यही करते हैं। जब वे अपना काम आरंभ करते हैं, तो एक प्रकार से उसमें खो जाते हैं। दूसरी बात उन्हें सूझती ही नहीं। शरीर की प्रत्येक हरकत और मन की हर तरंग की एकाग्रता उसी लक्ष्य पर रहती है। आँख, हृदय जैसे महंवपूर्ण अंगों का ऑपरेशन करते समय सर्जन की पूरी तन्मयता अपने काम पर केंद्रित रहती है, यदि वह अधूरे मन से उस क्रिया को संपन्न करे, तो रोगी की जान पर ही बन आयेगी।

हमारा प्रत्येक काम, विज्ञान अन्वेषी या जिम्मेदार सर्जन जैसा होना चाहिए। काम चाहे छोटा हो या बड़ा उसकी उत्कृष्टता ही करने वाले का गौरव है। भौंड़ा, फूहड़, अधूरा काम उनका होता है, जो अन्यमनस्क होकर आधे मन से काम करते हैं। इसमें समय भी बहुत बर्बाद होता है काम भी कम होता है और जो होता है उसका स्तर गया गुजरा होता है। ऐसा कर्तव्य, करने वाले के व्यक्तित्व को ही गिराता है। इस रीति नीति को अपनाने वाले व्यक्ति कभी कोई ऊँचा काम नहीं कर सकते और उन्नति के उच्च शिखर पर नहीं चढ़ सकते। काम को बहुत देर तक लगातार करते रहना उचित नहीं। बीच-बीच में विश्राम लेना चाहिए, विश्राम का मतलब काम की दिशा बदल देना है। हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना नहीं, चुपचाप बैठे भी रहें, तो भी मस्तिष्क तो अपना काम करेगा ही, वह कुछ न कुछ सोचेगा ही। किसी न किसी उधेड़ बुन में वह लगेगा ही। उसकी बनावट ऐसी नहीं है कि चुपचाप बैठा रह सके। यहाँ तक कि सोते समय भी उसे चैन नहीं पड़ता और सपने गढ़कर उनके साथ खेलने लगता है। मस्तिष्क को विश्राम देने का महत्व समझना चाहिए और उसके लिए क्या किया जाना चाहिए इससे परिचित होना चाहिए।

दफ्तरों में छः दिन काम करने के बाद सातवें दिन रविवार की छुट्टी रहती है। बाजार भी सप्ताह में एक दिन बंद रहते हैं। सिनेमा के बीच इंटरबैल होता है। शरीर रात को सोकर छुट्टी मनाता है। यह छुट्टी समय की बर्बादी नहीं है वरन् अगले दिन अधिक काम कर सकने की सामर्थ्य संग्रह करने की तैयारी है। मशीनों को भी लगातार नहीं चलाया जाता। यदि उन्हें अवकाश न दिया जाय, तो गरम होकर अपनी जीवन अवधि से बहुत पहले ही वह खराब हो जायेंगी। हमें शरीर और मन को भी विश्राम देना चाहिए ताकि उनकी कार्य क्षमता, स्थिरता व सुदृढ़ता अक्षुण्य बनी रहे।

लगातार कड़ा काम करते रहना और विश्राम की व्यवस्था न करना वस्तुतः कम काम करने और घाटा सहने का ही एक फूहड़ तरीका है, यद्यपि ऐसे व्यक्ति अपनी कर्मठता की शेखी बहुत बघारते हैं, समय पर भोजन तक नहीं कर पाते, सोने का कोई समय नहीं। इतने व्यस्त रहते हैं, यह कहकर अपने मन में झूठा संतोष किया जा सकता है या दूसरों पर अपनी धाक जमाई जा सकती है, पर इससे प्रयोजन कुछ सिद्ध नहीं होता। लगातार और अस्त-व्यस्त ढंग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से काम करने वाला व्यक्ति बेतरह थका रहता है। थकान चिड़चिड़ाहट उत्पन्न करती है और क्षमता घट जाने से काम भी उतने अच्छे नहीं होते, जितने कि ताजगी की स्थिति में हो सकते थे। प्रातः सो कर उठने पर ताजगी की स्थिति में जितना अच्छा काम हो सकता है, उतना थककर चूर-चूर हो जाने पर रात के समय कर सकना कदापि संभव नहीं है।

शहर का रासायनिक संतुलन प्रधानतः तीन ग्रंथियों पर अवलंबित है। पिट्युटरी, मस्तिष्क के नीचे है एड्रीनल नामक दो ग्रंथियाँ गुर्दों पर हैं। हारमोन तथा दूसरे अति महत्वपूर्ण रासायनिक तत्वों का निर्माण, शोधन एवं परिवर्तन प्रायः इन्हीं की सक्रियता के कारण संभव होता है। अधिक और लगातार श्रम करने का प्रभाव इन तीनों ग्रंथियों पर पड़ता है और वे अपना काम ठीक तरह न कर पाने से शरीर की रासायनिक आवश्यकता ठीक तरह पूरी कर सकने में असमर्थ हो जाती हैं। इस प्रकार हमारी आंतरिक एवं अदृश्य भूख पूरी न होने के कारण भीतरी दुर्बलता बढ़ती जाती है और रोग निरोधक तथा दूसरी क्षमताओं का भंडार रिक्त होता चला जाता है। वह स्थिति सचमुच चिंताजनक है।

मस्तिष्क का सारा भार हटाकर पूर्ण निश्चंत और खाली मन करके यदि थोड़ी देर भी विश्राम कर लिया जाय, तो उससे थकान दूर करने और ताजगी लाने में उतनी सहायता मिलती है, जितनी कि उद्विग्न मन से घंटों लेटे रहने से भी नहीं मिलती। नेपोलियन बोनापार्ट को दिन-रात युद्ध कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता था। दिन में वह अपने सैनिकों के साथ लड़ता था और रात को अगले दिन की योजनाएँ बनाता था। उसे पूरी नींद या समुचित विश्राम का अवसर नहीं मिलता था। उसने शिथिलीकरण की विधि अपनाई। जब भी अवसर मिलता अपना शरीर और मन पूरी तरह शिथिल करके पड़ा रहता और एक घंटे का एक विश्राम ही उसके लिए पूरी रात सोने का काम पूरा कर देता।

कभी-कभी तो वह अपने घोड़े को किसी पेड़ के सहारे खड़ा करके उसी पीठ पर बैठा-बैठा ही झपकी ले लेता और यह शरीर और मन को दिया गया गहरा विश्राम उसे फिर नये सिरे से ताजगी प्रदान कर देता। कहते हैं कि रूस के अधिनायक स्टालिन की मृत्यु मस्तिष्क की नली फटने के कारण हुई थी और उसका कारण लगातार उग्र चिंतन करना था। सरदार पटेल और गोविंद बल्लभ पंत की मृत्यु के कारणों में ऐसा ही विग्रह प्रधान था।

कनाड़ा के शरीर विज्ञानी डॉ० हेन्स सेल्ये इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि स्वास्थ्य के बिगड़ने और मनः संस्थान को अस्त-व्यस्त करने का प्रधान कारण नाड़ी संस्थान पर बढ़ा हुआ तनाव होता है और इसका प्रधान हेतु श्रम करने का संतुलन बिगड़ जाना है। लोग काम करना तो चाहते हैं, पर यह नहीं जानते कि उसे कैसे किया जाना चाहिए ? शरीर और मन का तनाव कोई आकस्मिक या अप्रत्यशित घटना नहीं है। वह बादलों की तरह बरसता नहीं और न बिजली की तरह गिरता है। वह आग्रहपूर्वक बुलाने पर स्वाभिमानी अतिथि के तरह ही आता है। बेढंगे मन से अत्यधिक काम करना इस संकट के आगमन का मुख्य कारण है। कायदे और करीने के साथ आदमी 18 घंटे भी काम करता रह सकता है पर यदि बेतरतीब आठ-दस घंटे भी काम किया जाय, तो अत्यधिक थकान आवेगी और तनाव उत्पन्न हो जायेगा शक्ति को अनावश्यक कार्यों से बचाना, उसे उपयोगी कार्यों में लगाना, हलके मन से किंतु पूरी दिलचस्पी के साथ काम करना, श्रम और विश्राम को एक-दूसरे से जोड़कर चलना ऐसे सूत्र हैं, जिन्हें अपनाकर अच्छा और अधिक काम किया जा सकता है। कहना न होगा कि सफल और समुन्नत जीवन जी सकना केवल उन्हीं के लिए संभव होता है जो अपनी शारीरिक, मानसिक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति का ध्यान रखते हुए उपयोगी और महत्वपूर्ण कार्यों पर अपनी गतिविधियाँ केंद्रित किये रहते हैं। ऐसे शक्ति संतुलन के लिए अन्यतम विधि है स्वरसाधना। तालबद्ध श्वास शरीर और मन को सूक्ष्म तल पर संतुलित कर देती है।

मन वश में करना

जब तक संसार की वस्तुएँ सुंदर और सुखप्रद मालूम होती हैं तभी तक मन उनमें जाता है, यदि यही सब पदार्थ दोषयुक्त और दुःखप्रद दीखने लगें (जैसे कि वास्तव में ये हैं) तो मन कदापि इनमें नहीं लगेगा। यदि कभी इनकी ओर गया भी तो उसी समय वापस लौट आवेगा, इसलिए संसार के सारे पदार्थों में (चाहे वे इहलौकिक हों या पारलौकिक) दुःख और दोष की प्रत्यक्ष भावना करनी चाहिए। ऐसा दृढ़ प्रत्यय करना चाहिए कि इन पदार्थों में केवल दोष और दुःख ही भरे हुए हैं। रमणीय और सुखरूप दीखने वाली वस्तु में ही मन लगता है। यदि रमणीयता और सुखरूपता विषयों से हटाकर परमात्मा में दिखायी देने लगे (जैसा कि वास्तव में है) तो यही मन तुरंत विषयों से हटकर परमात्मा में लग जाय। यही वैराग्य का साधन है और वैराग्य ही मन जीतने का एक उत्तम उपाय है। सच्चा वैराग्य तो संसार के इस दीखने वाले स्वरूप का सर्वथा अभाव और उसकी जगह परमात्मा का नित्य भाव प्रतीत होने में है, परंतु आरंभ में नये साधक को मन वश करने के लिए इस लोक और परलोक के समस्त पदार्थों में दोष और दुःख देखना चाहिए जिससे मन का अनुराग उनसे हटे। कहा गया है—

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्।।

"इस लोक और परलोक के समस्त भागों में वैराग्य, अहंकार का त्याग, (इस शरीर में) जन्म, मृत्यु बुढ़ापा और रोग (आदि) दुःख और दोष देखने चाहिए।" इस प्रकार वैराग्य की भावना से मन वश में हो सकता है। यह तो वैराग्य का संक्षिप्त साधन हुआ, अब कुछ अभ्यास पर विचार करें।

मन को वश करने में नियमानुवर्तिता से बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समय पर नियमानुसार होने चाहिए। प्रातःकाल बिछौने से उठकर रात को सोने तक दिन भर के कार्यों की एक ऐसी नियमित दिनचर्या बना लेनी चाहिए कि जिससे जिस समय जो कार्य करना हो, मन अपने आप स्वभाव से ही उस समय उसी कार्य में लग जाय। संसार साधन में तो नियमानुवर्तिता से लाभ ही है, परमार्थ में भी इससे बड़ा लाभ होता है। अपने जिस इष्ट स्वरूप के ध्यान के लिए प्रतिदिन जिस स्थान पर, जिस आसन पर, जिस आसन से जिस समय और जितने समय बैठा जाय उसमें किसी दिन भी व्यतिक्रम नहीं होना चाहिए। पाँच मिनट का भी नियमित ध्यान अनियमित अधिक समय के ध्यान से उत्तम है। आज दस मिनट बैठे, कल आध घंटे, परसों बिलकुल नहीं इस प्रकार के साधन से साधक को सिद्धि कठिनता से मिलती है। जब पाँच मिनट का ध्यान नियम से होने लगे तब दस मिनट का करें, परंतु दस मिनट का करने के बाद किसी दिन भी नौ मिनट न होना चाहिए। स्थान, आसन, समय, इष्ट और मंत्र का बार-बार परिवर्तन नहीं करना चाहिए। इस तरह की नियमानुवर्तिता से भी मन स्थिर होता है। नियमों का पालन खाने-पीने, पहनने, सोने और व्यवहार करने सभी में होना चाहिए। नियम अपने अवस्थानुकूल शास्त्र सम्मत बना लेने चाहिए।

मन के प्रत्येक कार्य पर विचार करना चाहिए। प्रतिदिन रात को सोने से पूर्व दिनभर के मन के कार्यों पर विचार करना उचित है। यद्यपि मन की सारी उधेड़-बुन का स्मरण होना बड़ा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कठिन है, परंतु जितनी याद रहे उतनी ही बातों पर विचार करे जो-जो संकल्प सात्विक मालूम दें उनके लिए मन की सराहना करना और जो-जो संकल्प राजसिक और तामसिक मालूम पड़ें उनके लिए मन को धिक्कारना चाहिए। प्रतिदिन इस प्रकार का अभ्यास करने पर मन पर सत्यकार्य करने तथा असत्यकार्य छोड़ने के संस्कार जगने लगते हैं, जिससे कुछ ही समय में मन बुराइयों से बचकर भले कार्यों में लग जायेगा। मन भले कार्य वाला होगा, तब उसे वश करने में सुगमता होगी। कुसंग में पड़ा हुआ बालक जब तक कुसंग नहीं छोड़ता, तब तक उसे कुसंगियों से बुरी सलाह मिलती रहती है, इससे उसका वश में होना कठिन रहता है, पर जब कुसंग छूट जाता है तब उसे बुरी सलाह नहीं मिल सकती, दिन-रात घर में उसको माता-पिता के सदुपदेश मिलते हैं, वह भली बातें सुनता है, तब फिर उसके सुधरकर माता-पिता के आज्ञाकारी होने में विलंब नहीं होता। यदि विषय-चिंतन करने वाले मन को कोई एक साथ ही सर्वथा विषय रहित करना चाहे, तो वह नहीं कर सकता। पहले मन को बुरे चिंतन से बचाना चाहिए, जब वह परमात्मा संबंधी शुभ चिंतन करने लगे तब उसको वश करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

मन के कहने में नहीं चलना चाहिए। जब तक यह मन वश में नहीं हो जाता तब तक इसे अपना परम शत्रु मानना चाहिए। जैसे शत्रु के प्रत्येक कार्य पर निगरानी रखनी पड़ती है वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखना चाहिए। जहाँ कहीं यह उलटा-सीधा करने लगे वहीं इसे धिक्कारना और पछाड़ना चाहिए। मन की खातिर भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। यद्यपि यह बड़ा बलवान् है, कई बार इससे हारना होगा, पर साहस नहीं छोड़ना चाहिए। जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मन को अवश्य जीत लेता है। इससे लड़ने में एक विचित्रता है, यदि दृढ़ता से लड़ा जाय तो लड़ने वाले का बल दिनोंदिन बढ़ता है और इसका क्रमशः घटने लगता है, इसलिए इससे लड़ने वाला एक न एक दिन इस पर अवश्य ही विजयी होता है। अतएव इसकी हाँ में हाँ न मिलाकर प्रत्येक कार्य में खूब सावधानी बर्तना चाहिए। यह मन बड़ा ही चतुर है। कभी डरावेगा, कभी फुसलावेगा, कभी लालच देगा, बड़े-बड़े अनोखे रंग दिखलावेगा, परंतु कभी इसके धोखें में न आना चाहिए। भूलकर भी इसका विश्वास न करना चाहिए। इस प्रकार करने से इसकी हिम्मत टूट जायेगी, लड़ने और धोखा देने की आदत छूट जायगी। अंत में यह आज्ञा देने वाला न रहकर सीधा-सादा आज्ञा-पालन करने वाला विश्वासी सेवक बन जायेगा।

मन लोभी, मन लालची, मन चंचन मन चौर।
मन के मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और।।

मन को सत्कार्य में संलग्न रखना चाहिए। मन कभी निकम्मा नहीं रह सकता, कुछ न कुछ काम इसको मिलना ही चाहिए, अतएव इसे निरंतर काम में लगाये रखना चाहिए। निकम्मा रहने से ही इसे बुरी बातें सूझा करती हैं, अतएव जब तक नींद न आवे तब तक चुने हुए सुंदर मांगलिक कार्यों में इसे लगाये रखना चाहिए। जाग्रत् समय के सत्कार्यों के चित्र ही स्वप्न में भी दिखायी देंगे।

मन को परमात्मा में लगाना भी एक उच्चकोटि का उपाय है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वंश नयेत्।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'यह चंचल और अस्थिर मन जहाँ-जहाँ दौड़कर जाय वहाँ-वहाँ से हटाकर बार-बार इसे परमात्मा में ही लगाना चाहिए।' मन को वश में करने का उपाय प्रारंभ करने पर पहले-पहले तो यह इतना जोर दिखलाता है अपनी चंचलता और शक्तिमत्ता से ऐसी पछाड़ लगाता है कि नया साधक घब्रड़ा उठता है, उसके हृदय में निराशा-सी छा जाती है, परंतु ऐसी अवस्था में धैर्य रखना चाहिए। मन का तो ऐसा स्वभाव ही है और हमें इस पर विजय पाना है, तब घबड़ाने से थोड़े ही काम चलेगा मुस्तैदी से सामना करना चाहिए। आज न हुआ तो क्या, कभी न कभी तो वश में होगा ही।

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्धया धृतिग्रहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिंदपि चिन्तयेत्।।

'धीरे-धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त हो धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके और किसी भी विचार को मन में न आने दें।'

बड़ा धैर्य चाहिए, घबड़ाने, ऊबने या निराश होने से काम नहीं होगा। झाड़ू से घर साफ कर लेने पर भी जैसे धूल जमी हुई-सी दीख पड़ती है, उसी प्रकार मन को संस्कारों से रहित करते समय यदि मन और भी अस्थिर या अपरिच्छिन्न दीखे, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, पर इससे डरकर झाड़ू लगाना बंद नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि किसी प्रकार का भी वृथा चिंतन या मिथ्या संकल्पों को मन में नहीं आने दिया जायेगा। बड़ी चेष्टा, बड़ी दृढ़ता रखने पर भी मन साधक की चेष्टाओं को कई बार व्यर्थ कर देता है, साधक तो समझता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, पर मन देवता संकल्प विकल्पों की पूजा में लग जाते हैं। जब साधक मन की ओर देखता है; तो उसे आश्चर्य होता है कि यह क्या हुआ ? इतने नये-नये संकल्प, जिनकी भावना भी नहीं की गयी थी, कहाँ से आ गये ? बात यह होती है कि साधक जब मन को निर्विषय करना चाहता है तब संसार के नित्य अभ्यस्त विषयों से मन को फुरसत मिल जाती है, उधर परमात्मा में लगने का इस समय तक उसे पूरा अभ्यास नहीं होता। इसलिए फुरसत पाते ही वह उन पुराने दृश्यों को (जो संस्कार रूप से उस पर अंकित हो रहे हैं) सिनेमा की फिल्म की भाँति क्षण-क्षण में एक के बाद एक उलटने लग जाता है। इसी से उस समय ऐसे संकल्प मन में उठते हुए मालूम होते हैं, जो संसार का काम करते समय याद भी नहीं आते। मन की ऐसी प्रबलता देखकर साधक स्तंभ-सा रह जाता है, पर कोई चिंता नहीं। जब अभ्यास का बल बढ़ेगा तब वह संसार से फुरसत मिलते ही तुरंत परमात्मा में लग जायेगा। अभ्यास दृढ़ होने पर तो यह परमात्मा के ध्यान से हटाये जाने पर भी न हटेगा। मन चाहता है सुख। जब तक इसे वहाँ सुख नहीं मिलता विषयों में सुख दीखता है। तब तक यह विषयों में रमता है। जब अभ्यास से विषयों में दुःख और परमात्मा में परमसुख प्रतीत होने लगेगा तब यह स्वयं ही विषयों को छोड़कर परमात्मा की ओर दौड़ेगा, परंतु जब तक ऐसा न हो तब तक निरंतर अभ्यास करते रहना चाहिए। यह मालूम होते ही कि मन अन्यत्र भागा है, तत्काल इसे पकड़ना चाहिए। इसको पक्के चोर की भाँति भागने का बड़ा अभ्यास है, इसलिए ज्यों ही यह भागे त्यों ही इसे पकड़ना चाहिए।

जिस-जिस कारण से मन सांसारिक पदार्थों में विचरे उस उससे रोककर परमात्मा में स्थिर करें। मन पर ऐसा पहरा बैठा दें कि यह भाग ही न सके। यदि किसी प्रकार भी न माने तो फिर इसे भागने की पूरी स्वतंत्रता दे दी जाय, परंतु यह जहाँ जाय वहीं पर परमात्मा की भावना की जाय, वहीं पर इसे परमात्मा के स्वरूप में लगाया जाय। इस उपाय से भी मन स्थिर हो सकता है।

एक तत्व का अभ्यास करने के विषय में योगदर्शन के महर्षि पतजंलि लिखते हैं—

तत्प्रतिषेधार्थ मेकतत्वाभ्यासः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्त का विक्षेप दूर करने के लिए पाँच तत्वों में से किसी एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए। एक तत्व के अभ्यास का अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक वस्तु की या किसी मूर्ति विशेष की तरफ एक दृष्टि से देखते रहना। जब तक आँखों की पलक न झपकें या आँखों में पानी न आ जाय तब तब उसे एक ही चिह्न की तरफ देखते रहना चाहिए। चिह्न धीरे-धीरे छोटा करते रहना चाहिए। अंत में उस चिह्न को बिलकुल ही हटा देना चाहिए। **दृष्टि स्थिरा यत्र बिनावलोकनम्** अवलोकन न करने पर भी दृष्टि स्थिर रहे, ऐसा हो जाने पर चित्त विक्षेप नहीं रहता। इसी प्रकार दोनों भ्रुवों के बीच में दृष्टि जमाकर जब तक आँखों में जल न आय तब तक देखते रहने का अभ्यास किया जाता है, इससे भी मन निश्चल होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के अभ्यास में नियमित रूप से जो जितना अधिक समय दे सकेगा उसे उतना ही अधिक लाभ होगा **नाभि या नासिकाग्र में दृष्टि स्थापन करना** भी मन वश में करने की एक विधि है। नित्य नियमपूर्वक पद्मासन या सुखासन में सीधा बैठकर नाभि में दृष्टि जमाकर जब तक पलक न झपके तब तक एक मन से देखते रहना चाहिए। ऐसा करने से शीघ्र ही मन स्थिर होता है। इसी प्रकार नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर बैठने से भी चित्त निश्चल हो जाता है। इससे ज्योति के दर्शन भी होते हैं।

शब्द श्रवण करने के अभ्यास में कानों में उँगली देकर शब्द सुनने का अभ्यास किया जाता है। इसमें पहले भौंरों के गुंजार अथवा प्रातःकालीन पक्षियों के चहचहाने जैसा शब्द सुनायी देता है, फिर क्रमशः घुँघुरू, शंख, घंटा, ताल, मुरली, भेरी, मृदंग, नफीरी और सिंह गर्जन के सदृश शब्द सुनायी देते हैं। इस प्रकार दस प्रकार के शब्द सुनायी देने के बाद दिव्य ऊँ शब्द का श्रवण होता है, जिससे साधक समाधि को प्राप्त हो जाता है। यह भी मन के निश्चय करने का उत्तम साधन है।

ध्यान या मानस-पूजा के लिए सब जगह भगवान के किसी नाम को लिखा हुआ समझकर बार-बार उस नाम के ध्यान में मन लगाना चाहिए अथवा भगवान के किसी स्वरूप विशेष की अंतरिक्ष में मन से कल्पना कर उसे पूजा करनी चाहिए। पहले भगवान की मूर्ति के एक-एक अवयव का अलग-अलग ध्यान कर फिर दृढ़ता के साथ सारी मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। उसी में मन को अच्छी तरह स्थिर कर देना चाहिए। मूर्ति के ध्यान में इतना तन्मय हो जाना चाहिए कि संसार का भान ही न रहे। फिर कल्पना प्रसूत सामग्रियों से भगवान की मानसिक पूजा करनी चाहिए। प्रेमपूर्वक की हुई नियमित भगवदुपासना से मन को निश्चल करने में बड़ी सहायता मिल सकती है।

मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा का व्यवहार करने की तकनीक के संबंध में योग दर्शन में महर्षि पतजंलि एक उपाय यह भी बतलाते हैं—**मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।**

'सुखी मनुष्यों से प्रेम, दुखियों के प्रति दया, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता और पापियों के प्रति उदासीनता की भावना से चित्त प्रसन्न होता है।'

जगत् के सारे सुखी जीवों के साथ प्रेम करने से चित्त का ईर्ष्या मल दूर होता है, डाह की आग बुझ जाती है। संसार में लोग अपने को और अपने आत्मीय स्वजनों को सुखी देखकर प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वे उन लोगों को अपने प्राणों के समान प्रिय समझते हैं, यदि यही प्रिय भाव सारे संसार के दुखियों के प्रति अर्पित कर दिया जाय, तो कितने आनंद का कारण हो? दूसरे को सुखी देखकर जलन पैदा करने वाली वृत्ति का नाश हो जाय। दुःखी प्राणियों के प्रति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दया करने से पर अपकार रूप चित्त-मल नष्ट होता है। मनुष्य अपने कष्टों को दूर करने के लिए किसी से भी पूछने की आवश्यकता नहीं समझता, भविष्य में कष्ट होने की संभावना होते ही पहले से उसे निवारण करने की चेष्टा करने लगता है। यदि ऐसा ही भाव जगत् के सारे दुःखी जीवों के साथ हो जाय, तो अनेक लोगों के दुःख दूर हो सकते हैं। दुःख पीड़ित लोगों के दुःख दूर करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने की प्रबल भावना से मन सदा ही प्रफुल्लित रह सकता है।

धार्मिकों को देखकर हर्षित होने से दोषारोपनामक मन का असूया मल नष्ट होता है, साथ ही धार्मिक पुरुष की भाँति चित्त में धार्मिक वृत्ति जाग्रत हो उठती है। असूया के नाश से चित्त शांत होता है।

पापियों के प्रति उपेक्षा करने से चित्त का क्रोध रूप मल नष्ट होता है। पापों का चिंतन न होने से उनके संस्कार अंतःकरण पर नहीं पड़ते। किसी से भी घृणा नहीं होती। इससे चित्त शांत रहता है। इस प्रकार इन चारों भावों के बार-बार अनुशीलन से चित्त की राजस, तामस वृत्तियाँ नष्ट होकर सात्विक वृत्ति का उदय होता है और उससे चित्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही एकाग्रता लाभ कर सकता है।

सदग्रंथों का अध्ययन भी मन वश में करने की उत्तम विधि है भगवान के परम रहस्य संबंधी परमार्थ ग्रंथों के पठन-पाठन से भी चित्त स्थिर होता है। एकांत में बैठकर उपनिषद, श्रीमद्भगवदगीता, श्रीमद्भगवत, रामायण आदि ग्रंथों का अर्थ सहित अनुशीलन करने से वृत्तियाँ तदाकार बन जाती हैं और मन स्थिर हो जाता है।

प्राणायाम तथा समाधि से भी मन रुकता है। समाधि अनेक तरह की होती है प्राणायाम समाधि के साधनों का एक मुख्य अंग है। योगदर्शन में कहा गया है—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

नासिका के छेदों से अंतर की वायु को बाहर निकालना प्रच्छर्दन कहलाता है और प्राण वायु की गति रोक देने को विधारण कहते हैं। इन दोनों उपायों से भी चित्त स्थिर होता है। श्रीमद्भगवतगीता में कहा है—

अपाने जुहति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।

'कई अपानवायु में प्राण—वायु को हवन करते हैं, कई प्राण वायु में अपनावायु को होमते हैं और कई प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम किया करते हैं।'

इसी तरह योग संबंधी ग्रंथों के अतिरिक्त महाभारत, श्री मद्भागवत और उपनिषदों में भी प्राणायाम का यथेष्ट वर्णन है। श्वासप्रश्वास की गति को रोकने का नाम ही प्राणायाम है। मनु महाराज ने कहा है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तयेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहत्।।

अग्नि से पाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है उसी प्रकार प्राण वायु के निग्रह से इंद्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

प्राणों को रोकने से ही मन रुकता है, इनका एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध है, मन सवार है तो प्राण वाहन है। एक को रोकने से दोनों रुक जाते हैं। प्राणायाम के संबंध में योग-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्र में अनेक उपदेश मिलते हैं, परंतु वे बड़े ही कठिन हैं। योग साधन में अनेक नियमों का पालन करना पड़ता है। योगाभ्यास के लिए बड़े ही कठोर आत्मसंयम की आवश्यकता है। आजकल के समय में तो कई कारणों से योग का साधन एक प्रकार से असाध्य ही समझा जाता है। यहाँ पर प्राणायाम के संबंध में केवल इतना ही कहा जाता है कि बायीं नासिका से बाहर की वायु को अंदर ले जाकर स्थिर रखने को पूरक कहते हैं दाहिनी नासिका से अंदर की वायु को बाहर करने को रेचक कहते हैं और जिसमें अंदर की वायु बाहर न जा सके और बाहर की वायु अंदर प्रवेश न कर सके इस भाव से प्राण वायु रोक रखने को कुंभक कहते हैं। इसी का नाम प्राणायाम है।

साधारणतः चार बार मंत्र जपकर पूरक, सोलह बार के जप से कुंभक और आठ बार के जप से रेचक की विधि है।

श्वास के द्वारा नाम जप के विषय में कहा गया है कि मन को रोककर परमात्मा में लगाने का एक अत्यंत सुलभ और आशंका रहित उपाय और है, जिसका अनुष्ठान सभी कर सकते हैं, वह है आने जाने वाले श्वासप्रश्वास की गति पर ध्यान रखकर श्वास के द्वारा श्री भगवान के नाम का जप करना, यह अभ्यास बैठते, उठते, चलते, फिरते, सोते, खाते हर समय प्रत्येक अवस्था में किया जा सकता है। इसमें श्वास जोर-जोर से लेने की भी कोई आवश्यकता नहीं। श्वास की साधारण चाल के साथ ही साथ नाम का जप किया जा सकता है। श्वास के द्वारा नाम का जप करते समय चित्त में इतनी प्रसन्नता होनी चाहिए कि मानों मन आनंद से उछल पड़ता हो। आनंद रस से छका हुआ अंतःकरण रूपी पात्र मानों छलका पड़ता हो। यदि इतने आनंद का अनुभव न हो, तो आनंद की भावना ही करनी चाहिए। इसी के साथ भगवान को अपने अत्यंत समीप जानकर उनके स्वरूप का ध्यान करना चाहिए, मानो उनके समीप होने का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। इस भाव से संसार की सुधि भुलाकर मन को परमात्मा में लगाना चाहिए।

मन के कार्यों को देखना भी मन को वश में करने का एक बड़ा उत्तम साधन है। 'मन से अलग होकर निरंतर मन के कार्यों को देखते रहना।' जब तक हम मन के साथ मिले हुए हैं तभी तक मन में इतनी चंचलता है। जिस समय हम मन के द्रष्टा बन जाते हैं, उसी समय मन की चंचलता मिट जाती है। वास्तव में तो मन से हम सर्वथा भिन्न ही हैं। किस समय मन में क्या संकल्प होता है इसका पूरा पता हमें रहता है। मुम्बई में बैठे हुए एक मनुष्य के मन में कलकत्ते के किसी दृश्य का संकल्प होता है, इस बात को वह अच्छी तरह जानता है। यह निर्विवाद बात है कि जानने या देखने वाला जानने की व देखने की वस्तु से सदा अलग होता है। आँख को आँख नहीं देख सकती, इस न्याय से मन की बातों को जो जानता या देखता है वह मन से सर्वथा भिन्न है, भिन्न होते हुए भी वह अपने को मन के साथ मिला देता है, इसी से उसका जोर पाकर मन की उद्दंडता बढ़ जाती है। यदि साधक अपने को निरंतर अलग रखकर मन की क्रियाओं का द्रष्टा बनाकर देखने का अभ्यास करे, तो मन बहुत ही शीघ्र संकल्परहित हो सकता है। वैसे भी नित्य प्रति के व्यवहार में आप देखते हैं कि जब आप बच्चों में हिल-मिल जाते हैं, तो वे निर्द्वंद होकर आपके सर चढ़ने लगते हैं और जब तक आप उनसे सीमित दूरी बनाये रखते हैं, तो वे आपकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर पाते। दूरी बनाये रखने का अर्थ यह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं कि बच्चे हमारे अपने नहीं रहे या हमें उनसे प्यार नहीं रहा। यह तो उन्हें अनुशासन में बनाये रखने के लिए एक शास्त्रीय तकनीक है। अपने मन को वश में करने के लिए ऐसी ही विभिन्न तकनीकों का सहारा लिया जाता है।

मन का अस्तित्व मस्तिष्क पर अवलंबित है। उसकी सारी क्रियाएँ इस बात पर अवलंबित हैं कि भेजे के पूरे भाग के कोष अच्छी स्थिति में हों और अपना काम सुचारू रूप से कर रहे हों। सिर में चोट लगने या और किसी तरह से उन्हें आघात पहुँच जाय या शराब या किसी बीमारी का विष उन तक जा पहुँचे, तो हमारे दिमाग की मशीन बिगड़ जायेगी। इन कोषों के स्वस्थ और सबल बने रहने के लिए जरूरी है कि उनका पोषण ठीक प्रकार से होता रहे। दिमाग को खून पहुँचाने वाली धमनियाँ मोटी या कड़ी हो जायें, तो उन्हें पूरी खुराक न मिलेगी और उनमें विकार उत्पन्न हो जायेगा, जिससे हमारी सारी मानसिक क्रियाएँ बुढ़ापे जैसी सुस्त और कमजोर हो जायेंगी। दिमाग यद्यपि मन की इंद्रिय या उपकरण है, फिर भी उसका संपर्क शरीर के हर हिस्से से सदा बना रहता है, प्रतिक्षण उनकी सूचनाएँ नाड़ीजाल के द्वारा वहाँ पहुँचती रहती हैं और उनका असर उन पर पड़ा करता है। हमारे मन की अवस्था, उसमें उठने वाले भावों का रूप इस बात पर अवलंबित होता है कि हमारे फेफड़े, हमारी त्वचा, हमारा हृदय, हमारा पेट और आँतें, हमारी ग्रंथियाँ (ग्लैंड्स) ठीक प्रकार से अपना काम कर हैं। क्षय रोगों का दृढ़ आशावाद, हृदय व्याधि वाले के मन का चिंता और भय से भरा रहना, अपच के रोगी का चिड़चिड़ापन, विष जनित ज्वर में भ्रम-प्रलाप होना, सर्व-विदित बातें हैं। विवेक क्षय और ग्रहणशील मन स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है, यह स्पष्ट है। शिक्षा-शास्त्र का पहला सिद्धांत यही है कि जो लड़का कमजोर और रोगी है, जिसकी बाढ़ मारी गयी है, उसका मन स्वस्थ सतेज नहीं बनाया जा सकता, पर आज हम उसे भूल गये हैं। शारीरिक दोष बच्चों के पढ़ाई में पिछड़े होने का एक मुख्य कारण है। न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी के सदस्य और शिकागो के हानेमन मेडिकल कॉलेज के अध्यक्ष डाक्टर डेनियल रसैल ने 1000 लड़कों पर 6 साल तक परीक्षाएँ करते रहने के बाद लिखा है कि कमजोर कहे जाने वाले लड़कों का काफी बड़ा भाग स्वास्थ्य की खराबी के कारण ही पढ़ाई में पिछड़ा रहता था और जब उनकी तंदुरुस्ती ठीक हो गयी तो औसत लड़कों की बराबरी पर पहुँच गये। स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर एल० एम० टर्मन ने विभिन्न विद्यालयों के 1 हजार खूब तेज लड़कों को चुनकर उनकी बुद्धि की परीक्षा की और उनका कहना है कि मोटे हिसाब से उन्हीं लड़कों ने सबसे ऊँचे नंबर पाये जो साधारण बालकों से अधिक तगड़े, लंबे और तंदुरुस्त थे।

गाँधी जी कहते हैं—"लड़कों को बचपन में जैसे मानसिक शिक्षा दी जाती है वैसे ही शारीरिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए," लेनिन ने लिखा है, "नवयुवकों को स्वास्थ्य देने और बल बढ़ाने वाले खेल खेलने चाहिए, तैरना, टोलियाँ बनाकर जंगल, पहाड़ों में विचरना आदि। उन्हें सब तरह की शारीरिक शिक्षा मिलनी चाहिए, स्वस्थ मन, स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है। यूनानी तत्ववेत्ता डेमोक्रिट्स का कहना है कि शारीरिक स्वास्थ्य ज्यों-ज्यों सुधरता गया, मन की ग्रहण-शक्ति बढ़ती गयी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

9 एकाग्रचित्त कैसे हों

अभी कुछ दिन पहले एक लड़की मेरे क्लीनिक में आयी और बोली कि मुझे ज्ञात हुआ है कि आप योग सिखाते हैं। मैंने कहा, "हाँ सिखाता तो हूँ।" वह बोली, "मैं आप से प्राणायाम सीखना चाहती हूँ।" मैंने कहा–"प्राणायाम ही क्यों ?" वह बोली–"वास्तव में मेरी एकाग्रता आज कल डिस्टर्ब हो रही है, मैं ठीक से पढ़ाई नहीं कर पा रही।" मैंने पूछा–"बेटे तुम कौनसी क्लास में हो ?" वह बोली–"मैंने एम. ए., एल. एल. बी. कर लिया है, अब जुडिशियरी की तैयारी कर रही हूँ, परंतु मेरा दिमाग कॉन्सेन्ट्रेट नहीं हो पाता।" मैने कहा–"इसका मतलब है तुम्हें कॉन्सेन्ट्रेशन सीखना है।" वह बोली–"किसी ने मुझे प्राणायाम की सलाह दी तो मैं बाजार में प्राणायाम की पुस्तक खरीदने गई वहाँ पर आपकी लिखी पुस्तक देखी। उसमें आपका पता देखा और क्रियात्मक रूप में सीखने के लिए यहाँ चली आई।"

मैंने उसे कहा कि योग को आठ विभिन्न अध्यायों में महर्षि पतंजलि ने विभाजित किया है, उनमें चौथा अध्याय प्राणायाम है और पाँचवा धारणा अर्थात् कॉन्सेन्ट्रेशन। इन्हें अध्याय न कहकर सीढ़ी कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा, अब बिना पहली दूसरी तीसरी सीढ़ी पर जाये, चौथी पाँचवी सीढ़ी पर बिठा भी दें, तो क्या तुम आगे बढ़ सकोगी ? उचित सही है कि पहली सीढ़ी से चढ़ना प्रारंभ करो और चौथी, पाँचवी जहाँ तक जाना है जाओ और आगे की क्रियाएँ छोड़ दो। तब यह आशा की जाती है कि जहाँ तक तुम पहुँची हो वहाँ तुम स्थिर रह सकोगी। हाँ एक काम किया जा सकता है कि सभी अध्यायों का थोड़ा–थोड़ा कार्य साथ–साथ चलाया जा सकता है जैसे स्कूल या कॉलिज में एक ही दिन में 5 या 9 विषय चालीस चालीस मिनट के पीरियड्स लगाकर पढ़ाये जाते हैं।

हमारा योग अष्टांग अर्थात् आठ अंगों वाला है–यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इन सभी में शारीरिक कार्य कम और मानसिक कार्य अधिक है। यम पूर्णतः मानसिक अभ्यास है चूँकि इसमें अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और सत्य जीवन जीने का अभ्यास कराया जाता है। बात को सही रूप में अर्थात् क्रियात्मक रूप में समझना और उसके अनुरूप क्रियाएँ संपन्न करना ही इस विषय के अंतर्गत आता है। नियम के अंतर्गत शौच, संतोष तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आते हैं, जिनमें कुछ शारीरिक क्रियाओं वाले हैं और कुछ मानसिक क्रियाओं वाले।

आसन प्रायः शारीरिक क्रिया के अंतर्गत ही आते हैं और शरीर को लचीला, फुर्तीला और स्वस्थ बनाये रखने के लिए प्रयोग में आते हैं। इन आसनों का विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है। जैसे–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तोलक आसन—शीर्षासन, सर्वांगासन मत्स्यासन, मयूरासन आदि जिनमें शरीर के भार को संतुलित करना आवश्यक होता है।

सामने झुकने वाले आसन—पश्चिमोत्तानासन, जानुशिरासन, हलासन, पादहस्तासन आदि ऐसे ही आसन हैं।

पीछे झुकने वाले आसन—भुजंगासन शलमासन, धनुरासन, सुप्तवज्रासन, चक्रासन आदि इसी श्रेणी में आते हैं।

बल पड़ने वाले आसन—अर्धमत्स्येन्द्रासन तथा पूर्णमत्स्येन्द्रासन इसी प्रकार के हैं।

कूल्हें, टाँग, पैर के आसन—पवनमुक्तासन, सेतुबंधासन, गोमुखासन, मंडूकासन, भद्रासन, गोरक्षासन, आदि ऐसे ही आसन हैं।

पेट संबंधी आसन—अग्निसार क्रिया, उड्डयानबंध, नौलिक्रिया, महामुद्रा, योग मुद्रा आदि उदर संबंधी आसनों की श्रेणी में आते हैं।

विशेष प्रकार के आसन—सरलेशासन (शवासन), स्वर्णाभ्यास, अर्चनाभ्यास, त्रिकोणाभ्यास और सूंयनमस्कार आदि।

वीर्यस्तम्भक आसन—काम सूत्रीय बाजीकरण आसन तथा अश्विनी/वज्रोली मुद्राएँ।

सामान्यतः व्यक्ति को इतने सारे आसन और मुद्राएँ करने की आवश्यकता नहीं होती। हमारे मूर्धन्य ऋषियों ने इस विषय पर बहुत खोज की है कि कम से कम समय में आसनों का लाभ किस प्रकार लिया जा सकता है। 'सूर्यनमस्कार आसन' ऐसा ही 12 आसनों का अभ्यास है जो अतिअल्प समय में शरीर को कोषों को अधिक ऊर्जावान् बनाता है।

(1) इसमें प्रथम आसन नमस्कार की मुद्रा बनाता है, परंतु यह कोरा नमस्कार नहीं है। पूरे सूर्यनमस्कार आसन में लिवर, गालब्लेडर, स्प्लीन, हार्ट, लंग्स आदि को प्रभावित करने वाला एक मात्र आसन यही है, जिसे साधारण नमस्कार की मुद्रा बनाकर अज्ञानी जन व्यर्थ कर देते हैं। इस आसन को उगते हुए सूर्य के सामने करने का विधान किसी अन्य कारण से है, परंतु अल्पज्ञ लोग उगते सूर्य को नमस्कार करने की मुद्रा' मानकर ऐसा अहित करते हैं। वे नहीं सोचते कि सूर्य को नमस्कार आप करें या न करें सूर्य को कोई अंतर नहीं पड़ता यहाँ तो जो आप कर रहे हैं मात्र अपने लिए कर रहे हैं, और फिर यह सूर्यनमस्कार 'आसन' है, सूर्य नमस्कार मुद्रा नहीं, अतः आसन वाला लाभ इस अभ्यास से हमें लेना है। इस अभ्यास को उचित ढंग से इस प्रकार करना है—पृथ्वी पर सीधें खड़े होकर हाथों को जाँघों के साथ सटा लें, इससे कुहनी दोनों ओर कमर के साथ सट जायगी। फिर भुजाओं को कुहनी से मोड़कर पृथ्वी के समानांतर कर दें हथेलियाँ खुली आमने सामने रहेंगी। तब हथेलियाँ और उँगुलियाँ मिला कर नमस्कार की मुद्रा बनायें, परंतु कुहनियाँ कमर से सटी रहें। कुहनी ढीली हुई और पूरा आसन बेकार हुआ। यदि कुहनी कमर से सटी रहेंगी, तो यह आसन का कार्य करेगा अन्यथा केवल नमस्कार मुद्रा रह जायगा। मोटे पेट वालों को आरंभ में परेशानी होगी, परंतु धीरे-धीरे पेट छँट जायगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

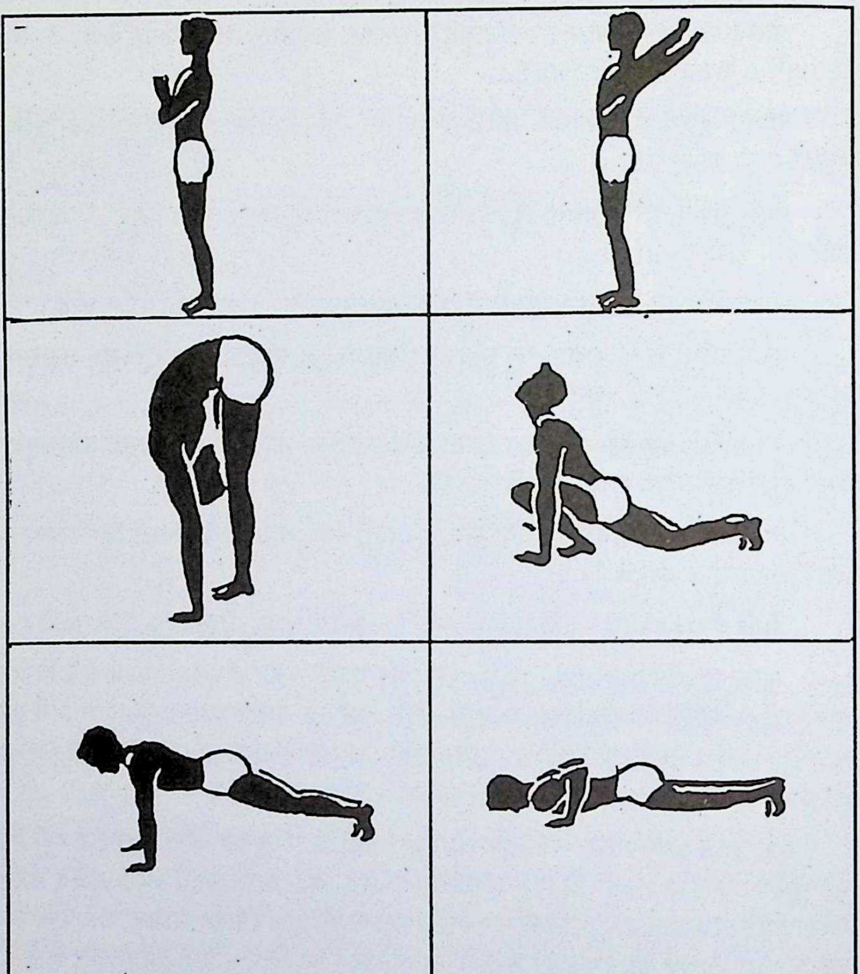

चित्र सूर्यनमस्कारासन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुहनी कमर से सटी हुई रखते हुए दोनों हथेलियाँ तथा अगुँलियों को नाभिके सामने ही नमस्कार की मुद्रा में मिला लें फिर इसी मुद्रा में कुहनी कमर से सटी हुई रखते हुए ही उँगलियों को अपनी ठोढ़ी तक उठायें। कुहनी कमर से सटी रहेगी। ऐसा करने से यकृत, प्लीहा, पित्ताशय उदर, हदय, महापेशी, फुफ्फुस आदि अंगों पर दोनों भुजाओं का ऐसा दबाव पड़ेगा, जो इनके कोषों को जाग्रत करेगा। तत्पश्चात् पुनः उसी क्रम ये वापस लौटने की क्रिया करनी होगी जिस क्रम से बाहें ठोड़ी तक गई थीं। इस क्रिया से पुनः बाहें जाँघों के साथ आकर मिल जायेंगी। अब सूर्य नमस्कार के चित्र में दिखाये गये दूसरे आसन को संपन्न करने के लिए दोनों भुजाओं को सिर के ऊपर उठा कर तान दो और जितना पीछे तक झुक सकते हो अपने शरीर को तान दो और पुनः तीसरा आसन संपन्न करने के लिए हथेलियों को पैरों के सामने पृथ्वी पर टिका दो। उसके पश्चात् दाहिनी टाँग को जितना पीछे की ओर फेंक सकते हो तान दो फिर दूसरी बार्यी टाँग भी तान दो। उसके पश्चात् दोनों हाथों की उँगलियाँ आमने सामने घुमाते हुए कुहनियाँ मोड़ दो, इस प्रकार कि पूरा शरीर पृथ्वी से मात्र तीन इंच ऊँचा परंतु, पृथ्वी के समानांतर हो जाय। बहुत से लोग इस आसन की अष्टांग प्रणिपात बनाने की चेष्टा में शरीर के आठ अंगों को पृथ्वी से स्पर्श कराने का प्रयत्न करते हैं, परंतु ऐसा करने से यह आसन व्यर्थ हो जाता है चूँकि वे स्पर्श के स्थान पर उन अंगों का भार पृथ्वी पर डाल देते हैं वे आठ अंग हैं, दोनों पैर के पंजे दो, घुटने दो, हथेलियाँ दो, नासिका का अग्रभाग एक और मस्तक एक। पूरे शरीर का भार केवल पंजों और हथेलियों पर ही रहेगा, यह ध्यान में रखने की बात है। उसके पश्चात् कुहनी सीधी करके सिर को ऊँचा उठाकर पीछे की ओर तान दें। फिर कूल्हे ऊँचे उठा दें, सिर नीचे की ओर हो जायगा। उसके बाद दाहिनी टाँग को आगे हथेली के पास ले आयें चूँकि दाहिनी टाँग ही पहले

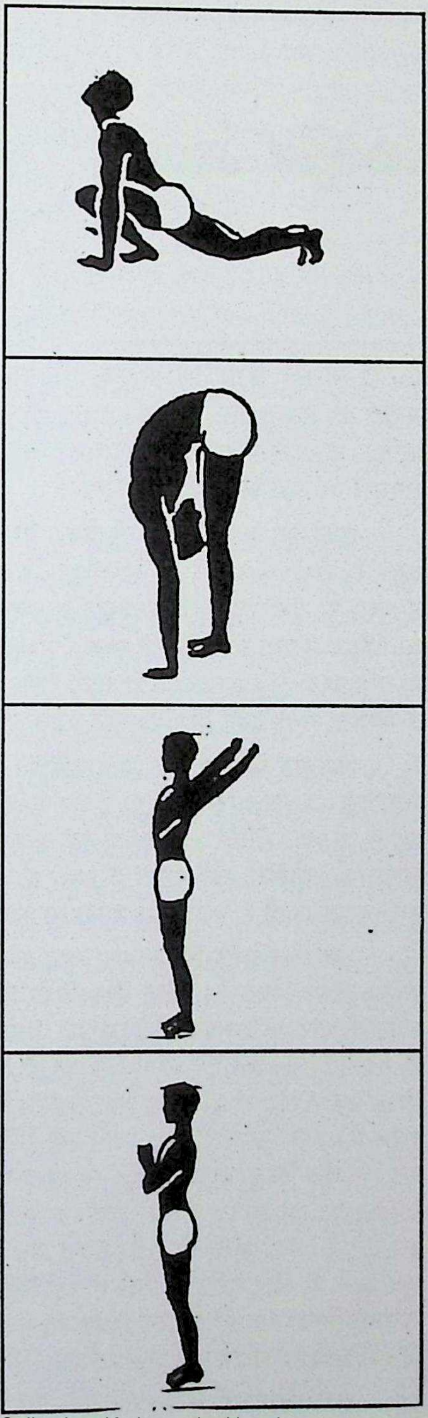

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

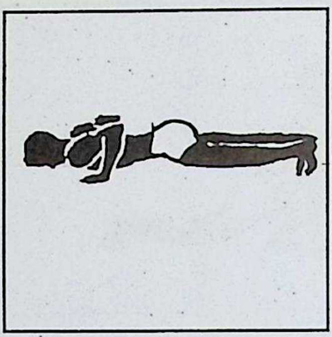

पीछे फेंकी गई थी। फिर बायीं टाँग भी आगे ले आयें। फिर दोनों भुजायें सीधे खड़े होकर सिर के ऊपर तान दें। फिर उन्हें नीचे करके जाँघों की सीध में ले आयें और पुनः नमस्कार मुद्रा वाले आसन को पीछे बताये अनुसार पूरा करें। इस प्रकार 12 आसनों में एक सूर्यनमस्कार आसन का चक्र पूरा होता है, परंतु इसमें दाहिनी टाँग को पीछे की ओर पहले फेंका गया था अतः बायीं टाँग को पहले फेंकने वाला आसन पूरा करने के लिए पूरे 12 आसनों का चक्र फिर से करें। इस प्रकार 12–12 आसनों के दो चक्रों में एक सूर्यनमस्कारासन पूरा होता है। ऐसे कम से कम दो चक्र अर्थात 48 आसन करने चाहिए। इतना करने में कुल समय 2 मिनट से अधिक नहीं लगाना चाहिए। प्रारंभ में थोड़ा समय अधिक लग सकता है, परंतु अभ्यास होने पर दो मिनट से भी कम समय में यह सभी आसन पूरे हो जायेंगे।

उगते हुए सूर्य की रश्मियाँ अथवा छिपते हुए सूर्य की रश्मियाँ यदि शरीर पर पडे, तो बहुत से रोगों के जर्म्स को मारती हैं। वैसे स्वास्थ्य के हिसाब से भी सूर्य रश्मियों का उपयोग है। इसीलिए सूर्य नमस्कार आसन को उगते/पिछले लाल सूर्य के सम्मुख करने का विधान बनाया गया जिससे साधक आसन करने के समय में ही सूर्य रश्मियों वाला लाभ भी उठा सके चूँकि आसन करते समय शरीर पर कम से कम वस्त्र रहते ही हैं। सूर्यनमस्कार के पश्चात् सर्वांगासन तथा शवासन करना उपयुक्त रहता है।

अब बात प्राणायाम पर आ जाती है। दैनिक अभ्यास में प्राणायाम अधिक समय नहीं लेता वैसे जब तब जाग रहे हैं तक श्वास के आने जाने पर ध्यान रखना है। जब श्वास अंदर जा रही है, तो ध्यान दें कि 'श्वास अंदर गई' और जब श्वास बाहर जा रही है तो ध्यान दें कि श्वास बाहर गई। चौबीसों घंटे श्वास के बाहर और अंदर जाने पर ध्यान देना है। इससे श्वास में ताल-बद्धता आती है, जो कि प्राणायाम का एक महत्वपूर्ण सूत्र है।

एक थोड़े समय किया जाने वाला अभ्यास भी है जो प्रातः, सांय अथवा संध्याकाल में करना उचित रहता है। इसके लिए किसी भी सुखासन में बैठें, और पाँच मिनट तक गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। उसके पश्चात् श्वास को तीव्र गति से छोड़ें और तीव्र गति से ही श्वास खीचें। इस पूरे अभ्यास में यह चिंता न करें कि श्वास कौन से स्वर से आ रही है। केवल श्वास खींचने और तीव्र गति से छोड़ने पर ध्यान दें। श्वास की गति तीव्र करते समय शरीर को ढीला छोड़ दें, परंतु ध्यान रखें शरीर लुढ़के नहीं, गिरे नहीं। ऐसी क्रिया तब तक करें जब तक कि पूरे शरीर में झन–झनाहट न होने लगे। लगभग दो मिनट तक शरीर में होती झनझनाहट का आनंद लें और अचानक–श्वास लेना छोड़ दें, अपनी ओर से श्वास खींचना बंद कर दें। ऐसा करते ही शरीर ढीला होने के कारण सिर आगे की ओर झुक जाएगा, उसे झुक जाने दें, और शरीर के अंदर हो रही झनझनाहट आदि का आनंद लेते रहें। लगभग पाँच या सात मिनट तक आनंद लेने के पश्चात् 4-6 गहरी श्वास लें और आसन छोड़ दें। इस प्रकार दिन में 20-22 मिनट का अभ्यास प्रातःकाल में करें और इतना ही सांयकाल में ।

इस अभ्यास के पश्चात् शवासन कर सकते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राणायाम के अभ्यास के साथ ही मुद्राओं का क्रम प्रारंभ होता है, जिसमें मस्तिष्क संबंधी प्रभाव के लिए वज्रोली/अश्विनी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। यूँ यह जननांग संबंधी मुद्रा है, जिसमें गुप्तांग को घोड़ी की योनि के समान बार-बार संकुचित किया जाता है इसीलिए इसे अश्विनी मुद्रा कहते हैं, अश्विनी का अर्थ है घोड़ी। वज्रोली मुद्रा अश्विनी मुद्रा ही है, परंतु जब इस क्रिया को पुरुष करता है तो वज्रोली कही जाती है। वज्र को उठाने वाली–वज्र अर्थात वीर्य। इस क्रिया की प्रधान क्रिया गुदा संकुचन है, फिर भी किसी योग्य और विश्वासी व्यक्ति के संपर्क में क्रियात्मक रूप से सीखना युक्ति संगत ही होगा। गुप्तांग के संदर्भ में हमारे साधक बहुत ही महत्वपूर्ण क्रियाओं के प्रति संकोच कर जाते हैं इससे हानि ही होती है। 'सेक्स' साधना की शक्ति होता है, जो सेक्स को नहीं समझता, वह साधना की पूर्णता नहीं पा सकता। इस संबंध में एक कहानी प्रचलित है कि जगत् गुरु शंकराचार्य ने जब मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में हराकर अपनी विजय दुंदुभी बजानी चाही, तो उनकी पत्नी ने उन्हें रोक दिया और जगत् गुरु को सेक्स साधना में अपूर्ण घोषित कर दिया। बाद में शंकराचार्य जी ने त्रिपुर सुंदरी साधना सिद्ध की और "जगत् गुरु" की उपाधि पाई चूँकि मंडन मिश्र की पत्नी भी 'संभोग से समाधि' वाली बात नहीं जानती थीं।

प्रत्याहार प्राणायाम से आगे की सीढ़ी है। इसका अर्थ है–मन की विषयाभिमुखी गति को अंतुर्मुखी बनाना। हमारा मन विभिन्न वासनाओं से प्रेरित होकर इधर-उधर भटकता है और हमें आवश्यक कार्य करने से रोकता है। ऐसे में संकल्पपूर्वक हमें मन को उस कार्य में लगाना है, जो हमें करना है। इस क्रिया में कभी हमें मन का पूरा विरोध करना होगा, तो कभी आधा सहयोग देना होगा। यह अभ्यास तो चौबीसों घंटे ध्यान में रखने का है कि मन कब क्या करना चाहता है और हम क्या कर सकते हैं, अतः प्रत्याहार पूर्णतः मानसिक साधना है।

प्रत्याहार के साथ ही आहार अर्थात् भोजन की भी बात आवश्यक हो जाती है। यहाँ भोजन के विषय में दो ही सूत्र महत्वपूर्ण हैं। जो भी खाओ, रूचिकर खाओ। केवल वह खाओ, जिसमें आनदं आये और केवल उतना खाओ, जितने में आनंदित बने रहो। यह नहीं कि अभी ठूँसकर खा लिया, फिर पेट पर हाथ फेरते रहे, या रात को ही वमन करने लगे। यदि दावत में गये हों तो, या तो थोड़े-थोड़े सभी व्यंजन चखो (खाओ मत) अथवा एक या दो व्यंजन वह खाओ जो आपकी रूचि के हों। परंतु कुल मिलाकर भोजन की मात्रा केवल उतनी ही हो जो आप सामान्यतः खाते हैं। लोग घर में एक दाल या एक सब्जी या दोनों के साथ चार रोटी खाते है। दावत में भी वे चार रोटी का माल ले लेते हैं, परंतु वे भूल जाते हैं कि यहाँ सब्जी चार हैं, दही/रायता है, सलाद है, पुलाव है और अंत में मिठाई भी है। यदि सभी चीजें मात्र चखने के लिए लें तो चार रोटी का माल वैसे ही पूरा हो जाता है। खाने के लिए तो स्थान ही नहीं बचेगा। इसलिये दावत में भोजन खाओं नहीं, मात्र चखो। दूध के विषय में भी ऐसा ही सिद्धांत है कि दूध पीओ नहीं, खाओ। अर्थात् दूध को इतने आराम से ग्रहण करो जैसे चबाकर खा रहे हो। भोजन से पूर्व, मध्य में अथवा अंत में जल ग्रहण न करें तो अति उत्तम है। यदि जल लेना आवश्यक ही हो तो एक या दो घूँट लेकर ही काम चलायें। भोजन से कम से कम आधा घंटा पूर्व अथवा एक घंटा बाद में जल पीना लाभप्रद है।

धारणा के अभ्यासों में त्राटक की क्रिया प्रधान है। बहुत से लोग त्राटक के अभ्यास के लिए मोमबत्ती, अगरबत्ती अथवा अन्य उपकरणों पर सीधे ही त्राटक करना आरंभ कर देते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई हिप्नोटिज्म/मेस्मरिज्म की पुस्तकें पढ़कर त्राटक आरंभ कर देते हैं और 20–30 मिनट तक अभ्यास करते रहते हैं, बिना यह जाने कि इस प्रकार करने से कितना भयानक नुकसान हो सकता है। आँखों की ज्योति जा सकती है और व्यक्ति पागल तक हो सकता है। अतः त्राटक की अपेक्षा बाह्य त्राटक (मोमबत्ती आदि) में मस्तिष्क पर अधिक जोर पड़ता है। यू भी त्राटक का सारा खेल मानसिक है।

आप जानते हैं कि मस्तिष्क पर जोर देने वाला कोई भी कार्य करने से मस्तिष्क गर्म होने लगता है। मस्तिष्क की इस गर्मी को शांत करना ओज (मस्तिष्क में भरे हुए द्रव पदार्थ) का कार्य है। यह ओज वीर्य/रज से बनता है जैसे रक्त से वीर्य बनता है। यदि हम मस्तिष्क के

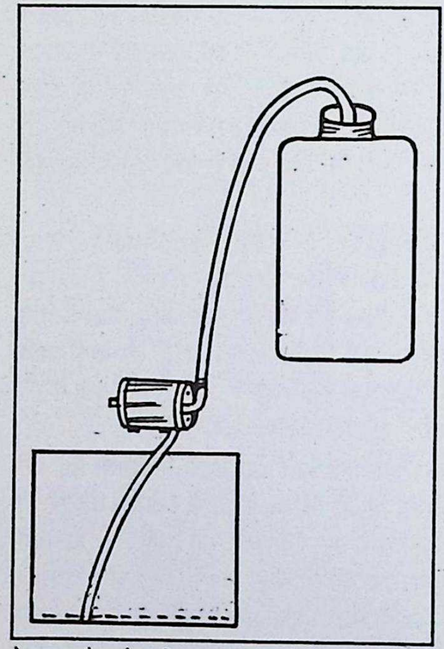

ओज की अधिक खपत करना चाहते हैं, तो हमें वीर्य का संचय करना पड़ता है, जिससे अधिक मात्रा में ओज निर्मित हो सके। इसीलिए अधिक मस्तिष्क संबंधी कार्य करने वाले को ब्रह्मचारी बने रहने की सलाह दी जाती है। वीर्य/रज का निर्माण जननांगों में होता है। वहीं ओज का निर्माण भी होता है। नीचे अर्थात् मूलाधार से ऊपर अर्थात् मस्तिष्क अथवा सहंस्त्रार तक ओज को पंप करने की (ऊर्ध्व गति देने की) प्रक्रिया का नाम कुंडलिनी साधना है। सामान्यतः आवश्यक मात्रा में ओज स्वतः ही मस्तिष्क तक मेरूदंड के मार्ग से चढ़ता रहता है, परंतु यदि नीचे ओज तैयार ही न हो तो चढ़ेगा क्या ? यदि कोई व्यक्ति वीर्य संचय न कर पा रहा हो, तो उसके शरीर में ओज की मात्रा में कमी आ जाना स्वाभाविक है और वह ओजहीन हो जायगा। ओज ही मेरूद्रव है, जो मस्तिष्क तक पहुँचता है। ओज की कमी वाला व्यक्ति जब मानसिक कार्य करेगा तो मस्तिष्क की नाड़ियों का ठंडा करने वाला द्रव न होने के कारण मस्तिष्क में शुष्कता बढ़ जायगी, परिणामतः मस्तिष्क की कार्य क्षमता में कमी होने के साथ-साथ गड़बड़ी भी होने लगेगी और व्यक्ति मानसिक विकारग्रस्त अथवा मनस्तापी होता जायगा और अंततः उसमें पागलपन के लक्षण-प्रकट होने लगेंगे।

पागलपन से मिलती जुलती बहुत-सी बीमारियाँ मस्तिष्क संबंधी होती हैं, जिनका प्रधान कारण ओज में कमी आना होता है। चिढ़चिढ़ापन, आत्मगलानि, निराशा, घबराहट, आत्महत्या के विचार, मानसिक निर्बलता, संकल्प शक्ति की कमी, अधिक क्रोध, अपने विचारों पर दृढ़ न रह पाना, हतोत्साहित हो जाना, उद्वेगपूर्ण और शक्तिहीन-सा दिखाई देना आदि ऐसे लक्षण हैं जो ओज की कमी का प्रकट करते हैं। मानसिक चिंता भी ओज की इतनी खपत कर लेती है कि व्यक्ति के अन्य सामान्य कार्य ठीक से नहीं हो पाते। ऐसे में चिंता का त्याग आवश्यक है। चिंता का त्याग करने के लिए एक सूत्र ध्यान में रखना है कि उतना सोचो जितने में तुम कुछ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर सकते हो और तदनुरूप कार्य कर डालो, परंतु जहाँ तुम कुछ कर नहीं सकते, उसको सोचना बेकार है। आप सोचें तब भी उतना ही होना है और न सोचे तब भी उतना ही होना है, फिर सोच-सोचकर अपने को घुला देने से क्या लाभ है ? शरीर को इतना क्षमतावान बनाये रखना है कि जब कोई अनहोनी अथवा ऐसी घटना घटे, जिसमें आप कुछ नहीं कर सकते तो वह झेल सकें और इस सूत्र के आधार पर जहाँ तक हो सके चिंता मुक्त बने रहना है।

ओज की कमी को पूरा करने के लिए ओजबर्द्धक अथवा वीर्यबर्द्धक वस्तुएँ भोजन में उपयोग की जाती हैं, जैसे—मालपुए (बहुत से परिवारों में मृत्यु भोज के समय मालपुए तथा खीर खिलाने की विशेष परंपरा है। यह ओजवर्द्धक पदार्थ हैं। किसी व्यक्ति की मृत्यु होने के कारण परिवार के व्यक्तियों में भविष्य की चिंता हो जाना स्वाभाविक है और चिंता ओज को खा जाती है अतः ओजवर्द्धक पदार्थों का उपयोग ऐसे में किया जाता है)। खीर भी वीर्यवर्द्धक खाद्य है। सभी मेवे (Dry fruits) वीर्यवर्द्धक होते हैं। अधिक चिकनाई (वसा) युक्त वस्तएँ भी वीर्यवर्द्धन करती हैं। परंतु वीर्यवर्द्धक वस्तुएँ गरिष्ठ भी होती हैं अतः इनका सेवन उतना ही करना है, जितना ठीक से पचा सकें अन्यथा बीसियों प्रकार के उदर रोग प्रारंभ हो जायेंगे। ऐसे भोजनों के भली प्रकार पाचन हो जाने पर ही रक्त एवं वीर्य की वृद्धि शरीर में होती है।

वीर्य की वृद्धि होने पर जननांगों की नस नाड़ियों में यदि वीर्य को संचित किये रहने की शक्ति नहीं होगी, तो वीर्य स्वप्न दोष आदि के रूप में निकल जायगा और यदि व्यक्ति में संकल्प शक्ति की कमी हुई, तो वह स्वयं हस्तमैथुन अथवा मैथुनादि क्रियाओं से उसे निकाल फेंकेगा और वीर्यपूर्ण भोजन का कोई महत्व नहीं रह जायगा। तपस्या और साधना आदि में वीर्य की अधिक आवश्यकता रहती है इसलिए व्रत, उपवास, तपस्या आदि के भोजन भी वीर्य-वर्द्धक होते हैं। व्रत उपवास संबंधी त्योहारों के भोजन अधिक पुष्टिदायक एक और कारण से भी रखे जाते हैं—व्रतोपवास तपस्या का ही एक अंग है और तपस्या में ओज का मस्तिष्क तक ऊर्ध्वगमन कराना प्रमुख कार्य होता है। ऊर्ध्वगमन कराने वाली क्रिया में प्राणायाम भी कराया जाता है। भस्त्रिका प्राणायाम की क्रिया कुछ इस प्रकार की है कि यदि पेट भरा हो, तो साधक को वमन होने की संभावना रहती है और यदि पेट खाली हो तो सूखी उलटी (शुष्क वमन) अथवा उबकाई आने की संभावना रहती है अतः इस प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है जो शरीर को शक्ति और ऊर्जा तो अधिक दे, परंतु पेट में अतिअल्प मात्रा में माल पहुँचे। ऐसा भोजन मेवा मिष्ठान, घी, दुग्ध, खोआ (मावा) आदि युक्त ही होता है। जो लोग ऐसे भोजन को पचाने की क्षमता नहीं रखते उन्हें व्रतोपवास आदि नहीं करने चाहिए। रोगी व्यक्ति यदि ऐसा करता है, तो उसके कष्टों में वृद्धि ही होती है। यहाँ यह समझने की भूल न करें कि तपस्या का अर्थ है कष्ट भुगतना। रोगी व्यक्तियों के लिए किसी भी प्रकार की तपस्या का निषेध है। जीवन का उद्देश्य आनंदपूर्वक स्वयं जीने और आनंदपूर्वक दूसरों की जीने देने में ही पूरा होता है। आनंद के मार्ग से हटकर जितना हम आगे बढ़ते हैं, वह मकड़े का सा जाल है, जिसे हम स्वयं निर्मित करते हैं और उसमें फँसकर रोते हैं। जीवन को सीधा जीओ, सहज जीओ और अपने चारों ओर निर्मित मकड़े के जाल जैसी असहजता का उखाड़ फेंकने की साधना करो, यही सच्ची तपस्या है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

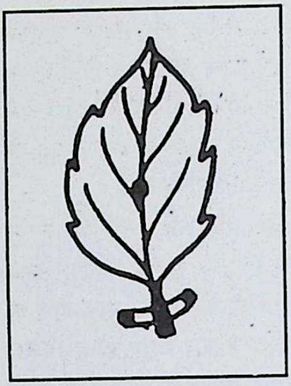

धारणा का अभ्यास प्रारंभ करने के लिए सर्वप्रथम नीम की पत्ती का उपयोग करें। नीम की एक पत्ती लेकर उसके मध्य में पैन से या पिन से एक बिंदु बना दें और पत्ती के तीन चार फुट की दूरी पर बैठ जायं। पत्ती का बिंदु अपनी आँख की ऊँचाई की सीध में रखे और उस बिंदु पर त्राटक करें। इसके लिए बिंदु को लगातार बिना पलक झपकायें निहारते रहें। ऐसा करने से यदि आँखों में पानी आये तब भी पलक न झपकाये। यदि पास में पंखा चल रहा हो, तो पंखा बंद करा दें अथवा उसकी स्पीड इतनी कम कर दें कि हवा आँखों में न लगे। पहले, दिन चार बार आँसू आने तक अथवा अधिक से अधिक पाँच मिनट तक त्राटक करें। उसके पश्चात आँखों पर हथेली इस प्रकार रखें कि आँखों पर भार न पड़े। थोड़ी देर बाद 4-6 लंबी–लंबी श्वासें लेकर हंथेलियाँ आँखों पर से हटा लें और त्राटक के आसन से उठ जायँ।

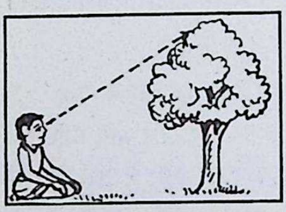

एकाग्रता के साथ-साथ परिवर्तनशीलता के लिए एक और अच्छा अभ्यास है–किसी खुले मैदान में बैठ जाओ और सामने बहुत दूर पर किसी पेड़ की चोटी और आकाश के मिलन बिंदु पर त्राटक करो और लगभग पाँच मिनट तक का समय दो धीरे-धीरे समय में वृद्धि करते जाओ।

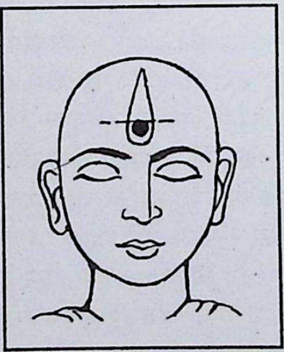

त्राटक के लिए अपने गुरू का ऐसा फोटो लें, जिस पर एक लंबा तिलक लगा हो और तिलक के बीच एक बिंदी लगी हो। यदि यह तिलक गौलोचन का हो और बिंदी रोली की हो तो अति उत्तम है। फोटो काली सफेद (Black & white) या, रंगीन हो; और फोटो का चेहरा कम से कम तीन इंच वर्गाकार में हो। अब फोटो को अपनी आँख की ऊँचाई की सीध में रखकर रोली की बिंदी तथा गौलोचन के तिलक के मिलन स्थल पर त्राटक करें। थोड़ी देर बिंदी के मध्य में भी त्राटक कर सकते हैं।

मस्तिष्क के तनाव रहित होने का व्यक्ति की एकाग्रता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। तनाव मुक्त होने के लिए एक सूत्र बहुत प्राचीन काल से प्रयोग में लाया जा रहा है–**ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होइ**। आत्मीयता का भाव सभी के प्रति रखना है। आत्मीयता से तात्पर्य सहानुभूति (Sympathy) का भाव उत्पन्न करना नहीं है अपितु समानुभूति (Impathy) का भाव उत्पन्न करना है। सभी जड़ अथवा चेतन वस्तुओं के प्रति प्रेमपूर्ण बनना होगा। यदि किसी को मारते हैं, तो यह सोचकर मारिये कि मार आप में पड़ रही है। आत्मीयता के भाव में दूसरा तो है ही नही, अतः आपका चाँटा या मुक्का केवल उतनी ही शक्ति से उठे जितन आप स्वयं सह सकते हैं। मैंने बहुत से माँ बाप को बच्चे की पिटाई करने के बाद अपने हाथों के दर्द के लिए बच्चे को कोसते देखा है। आप किसी को गाली देते हैं, तो पहिले तो उसका अर्थ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समझिये। बहुत से लोग गाली देते हैं और बिना सोचे समझे बके चले जाते हैं। दूसरे, यह साचेकर गाली दीजिये कि यही गाली आपको दी जाती, तो आपको कैसा लगता ? यदि कोई गाली बिना आपके ज्ञान के आपके मुँह से निकलती है तो इसका अर्थ है कि आपके अंदर वीर्य की अर्थात् ओज की कमी हो रही है। आप तुरंत इस ओर ध्यान दीजिये। यह तो हुई जानदार चीजों की बात, अब उन वस्तुओं के बारे में भी सुनिये, जिन्हें हम जड़ कहते हैं। वैसे अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में जड़ और चेतन में कोई अंतर नही है चूँकि कण-कण में वही शक्ति व्याप्त है, तो फिर कैसा जड़ और कैसा चेतन। जब हम अपनी चलती ट्रेन में से दूसरी तेज जाती हुई ट्रेन

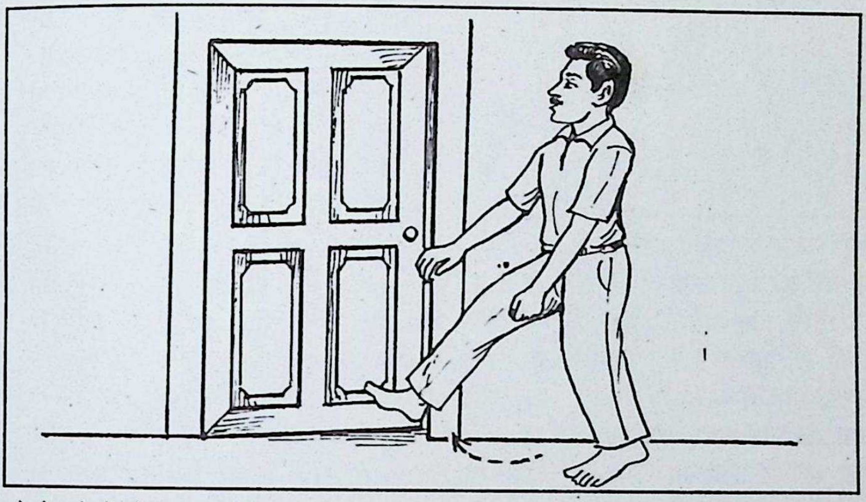

को देखते हैं तो लगता है कि हमारी ट्रेन खड़ी है और सामने वाली चल रही है। बस इतना ही देखने वाले की समझ का अंतर है जड़ और चेतन में। जो आज चेतन दिख रहा है, कल जड़ कहा जायगा। अतः जड़ के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा का भाव न रखें; वह भी आत्मीयता चाहता है, आपके ही जीवन का अंग है। आप घर के दरवाज़े को जोर से लात मारकर खोलते हैं, यदि कोई आप को उतने ही जोर से लात मारकर अपने रास्ते से हटाये तो आप को कैसा लगेगा ? निश्चित ही ऐसा करने वाला आपसे बलवान होगा। पुस्तकें रखते हैं, तो इस भावना से कि उनको चोट न लगे। एसे नित्यप्रति के अभ्यास धीरे-धीरे आपके अंदर अद्वैत के भाव का स्फुरण करेंगे, परंतु इसके लिए 24 घंटे शरीर और मन की क्रियाओं पर आपको ध्यान देना होगा। इस अदैृत भाव के अभ्यास में ही अहिंसा की साधना पूरी होती है।

एकाग्रता बढ़ाने के लिए अगला अभ्यास है व्यक्तित्व के परिवर्तन पर ध्यान देना। यह क्रिया भी 24 घंटे शरीर और मन की क्रियाओं पर ध्यान देने से पूरी होती है। व्यक्तित्व (Personatity) परिवर्तन से तात्पर्य यह है कि यदि आपका मालिक अथवा बड़ा अधिकारी सामने आ जाय, तो आपका व्यक्तित्व व्यवहार या चेहरा दूसरे प्रकार का हो जाता है और जब कोई चपरासी सामने आ जाता है, तो चेहरा दूसरे प्रकार का हो जाता है, कोई नवयौवना सामने आ जाय तो चेहरा दूसरे प्रकार का हो जाता है और जब आपका बच्चा सामने हो, तो दूसरे प्रकार का व्यक्तित्व हो जाता है और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि आधे घंटे में ही बीस बार चेहरा बदलता है। कभी साहब आ जाता है, तो कभी चपरासी, कभी ग्राहक आ जाता है, तो कभी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेवक, कभी कुत्ता आ जाता है तो कभी भिक्षुक, कमी महात्मा आ जाता है तो कभी शराबी, सभी के साथ व्यक्तित्व में परिर्वतन होना है, चेहरा बदलना है। चेहरा बदलने को मना नहीं है व्यक्तित्व परिवर्तन करना मना नहीं है चाहे जितने चेहरे बदलें, चाहे जितने मुखौटे (Persona) बदले, परंतु चेहरा बदलने के क्षण पर ध्यान दे लें कि अब चेहरा बदल रहे हैं। चेहरा बदलने के क्षण का ज्ञान होने के पश्चात् जो कुछ आप करेंगे वह 'एक्टिंग' होगी कर्म नहीं; लीला होगी। जैसे आप राम लीला में राम बने हैं और लक्ष्मण के लिए विलाप कर रहे हैं अर्थात् राम का चेहरा लगाकर एक्टिंग कर रहे हैं। ऐसी लीला अर्थात् ऐसे कर्म का बंधन नहीं लगता और आत्मा कर्म बंधन मुक्त रहती है इसलिए ऐसे कर्म को कर्म नहीं लीला कहा जाता है। कृष्ण का पूरा जीवन ही "लीला" था। लीला का अभ्यास धीरे-धीरे व्यक्ति को "अस्तेय" में पूरा उतार देता है। अस्तेय का सामान्य अर्थ है चोरी न करना। परंतु जो अद्वैत का अभ्यास कर चुका है, उसके लिए 'दूसरा' तो है ही नहीं, और अपने माल को ले जाना चोरी नहीं कहलाता अतः अपने से छुपाकर जो कार्य कर लिया जाता है अथवा जो कार्य अपने जाने बिना हो जाता है वही चोरी है–चेहरे की चोरी। यदि उस पर ध्यान दे लिया तो 'अस्तेय' की साधना पूरी हो जाती है।

एकाग्रता के अभ्यास में अपरिग्रह की साधना बड़ी महत्वपूर्ण है। परिग्रह का अर्थ है स्वत्वाधिकार (Possessivenss) मालकियत की भावना (Feeling of bossing over)। जो यह मालकियत की भावना निकाल दे वह 'अ–परिग्रही' है। अधिकार किसी पर मत लादो। मित्र भाव सब में रखो। आप मालिक किसी के नहीं, मित्र सबके हैं, जो बात मानेगा, लाभ उठायेगा, जो नहीं मानेगा अपने आप भुगतेगा, आपने सलाह दे दी, आपका कार्य समाप्त हुआ। अपरिग्रह के नाम पर लोग घर बार त्यागते हैं, संसार त्यागने की बात करते हैं, परंतु ज्योहीं आप अपनी मालकियत की भावना का त्याग करते हैं, संसार ही बदल जाता है। आप एक दम तनावरहित, द्वंद्वरहित संसार में आ जाते हैं। फिर आपके चारों ओर जीवन में घटित होने वाली घटना का उतना ही प्रभाव होगा, जितना सिनेमा के पर्दे पर होने वाली घटना का होता है। मालकियत की भावना का होना मन की रिक्तता को प्रकट करता है। जितना मन खाली होगा उतना व्यक्ति अपना अधिकार दूसरों पर दिखाता है। मन की रिक्तता के कारण लालसा और लोलुपता का जन्म होता है–धन की लालसा पद की लालसा, यश की लालसा। मन की पूर्णता पा लेने वाला व्यक्ति किसी वस्तु की मांग लालसा के कारण नहीं करता, आवश्यकता के कारण करता है।

अब सब से प्रमुख साधना ब्रह्मचर्य की बात करते हैं। यूँ तो ब्रह्मचर्य का अर्थ ब्रह्म के अनुसार आचरण अर्थात् आत्मा के अनुसार आचरण होता है। ऐसा आचरण जिससे आत्मोन्नति हो ब्रह्मचर्य कहलाता है। आप सोचते होंगे कि ब्रह्मचर्य का अर्थ तो "सैक्स से विरोध", 'काम से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

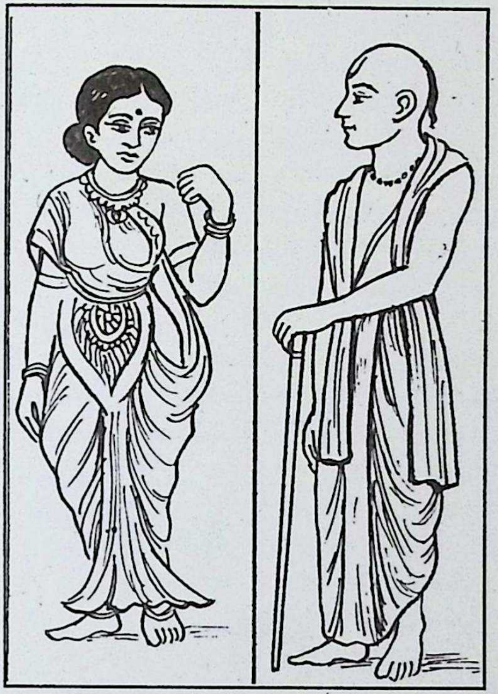

विरोध' सुना है। यदि काम से, सैक्स से वंचित अथवा सैक्स का जीवन में उपयोग न करने वाले को ब्रह्मचारी कहा जाता, तो अपने यहाँ हिजड़ा (क्लीब) शब्द न होता। नपुंसक के प्रति दया भाव उमड़ता है और ब्रह्मचारी के प्रति सम्मान भाव। एक के पास धन नहीं है, और दूसरे के पास धन है, परंतु लुटाता नहीं है। दूसरी बड़ी व्यावहारिक बात, जो जितना वीर्यहीन, कम वीर्य वाला, कम पौरुष वाला व्यक्ति होगा उतना ही वह अधिक कामुक होगा। हिजड़े लोग जितनी कामुक चेष्टाऐं कर लेंगे उतना सामान्य व्यक्ति नहीं कर पायेगा और जितना सामान्य व्यक्ति कामुक चेष्ठा कर पायेगा उतना एक ब्रह्मचारी व्यक्ति नहीं। जितना पौरुष अर्थात् वीर्य बढ़ेगा कामुकता कम होगी। काम (सैक्स) तथा कामुकता (सेक्सुअलिटी) में अंतर है। कामपूर्ण व्यक्ति पौरुषवान् ही होता है, परंतु वह कामुक नहीं होता। पौरुषक्षीण व्यक्ति ही कामुक होता है और उसकी कामुकता शब्दों में गाली के रूप में प्रकट होती है गंदी कामपूर्ण चेष्टाएँ अर्थात् व्यवहार में भी प्रकट हो उठती हैं। पौरुषक्षीण होना, नपुंसक होना एक अपमानजनक बात है, एक गाली है।

यदि आप अपने को कामुकता से बचाना चाहते हैं, तो आपके लिए यह सोचना कि "सैक्स से बचना है" उतना ही हानिकारक है, जितना यह सोचना कि "सैक्स में उतरना है।" इसलिए आप सैक्स का, काम का विरोध मत कीजिये, नियोजन कीजिये। इसके लिए अपने को 'व्यस्त' रखिये। इतना व्यस्त कि इधर-उधर सोचने की फुर्सत ही न मिले। व्यस्त रहने के लिए आप कोई भी ऐसा कार्य अपना सकते हैं, जिसमें आपको आनंद आये, चाहे लाभ कुछ भी न हो। पेंटिंग (चित्रकारी), डांसिंग (नाचना) गुनगुनानाना आदि ऐसे बहुत से कार्य हैं, जिनमें अपने को व्यस्त रखा जा सकता है। ऐसे कार्यों को 'हॉबी' कहा जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि नाचना आपको आता ही हो, गाना आपको आता ही हो, चित्रकारी आती ही हो, नाचने के स्थान पर भले ही आप मटकते हों, परंतु हो वह स्वांतः सुखाय, अपने को आनंद देने वाला। ऐसे कार्य तनाव मुक्त करते हैं और तनाव से ही व्यक्ति कामुक होता है चूँकि तनाव मस्तिष्क के ओज को खाता है और व्यक्ति में वीर्यक्षीणता के लक्षण मुखर होने लगते हैं।

अभी तक हम आपको अष्टांग योग के "यम" नामक अभ्यास के पाँचों विभागों अहिंसा, अस्तेय, परिग्रह एवं ब्रह्मचर्य की क्रियात्मक सहज साधना बता रहे थे अब "यम" के अंतिम विभाग 'सत्य' की चर्चा करते हैं। जिस व्यक्ति ने अहिंसा के अभ्यास द्वारा द्वैत भाव से उत्पन्न होने वाला तनाव समाप्त कर लिया, अस्तेय के अभ्यास द्वारा व्यक्तित्व परिवर्तन से होने वाला

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

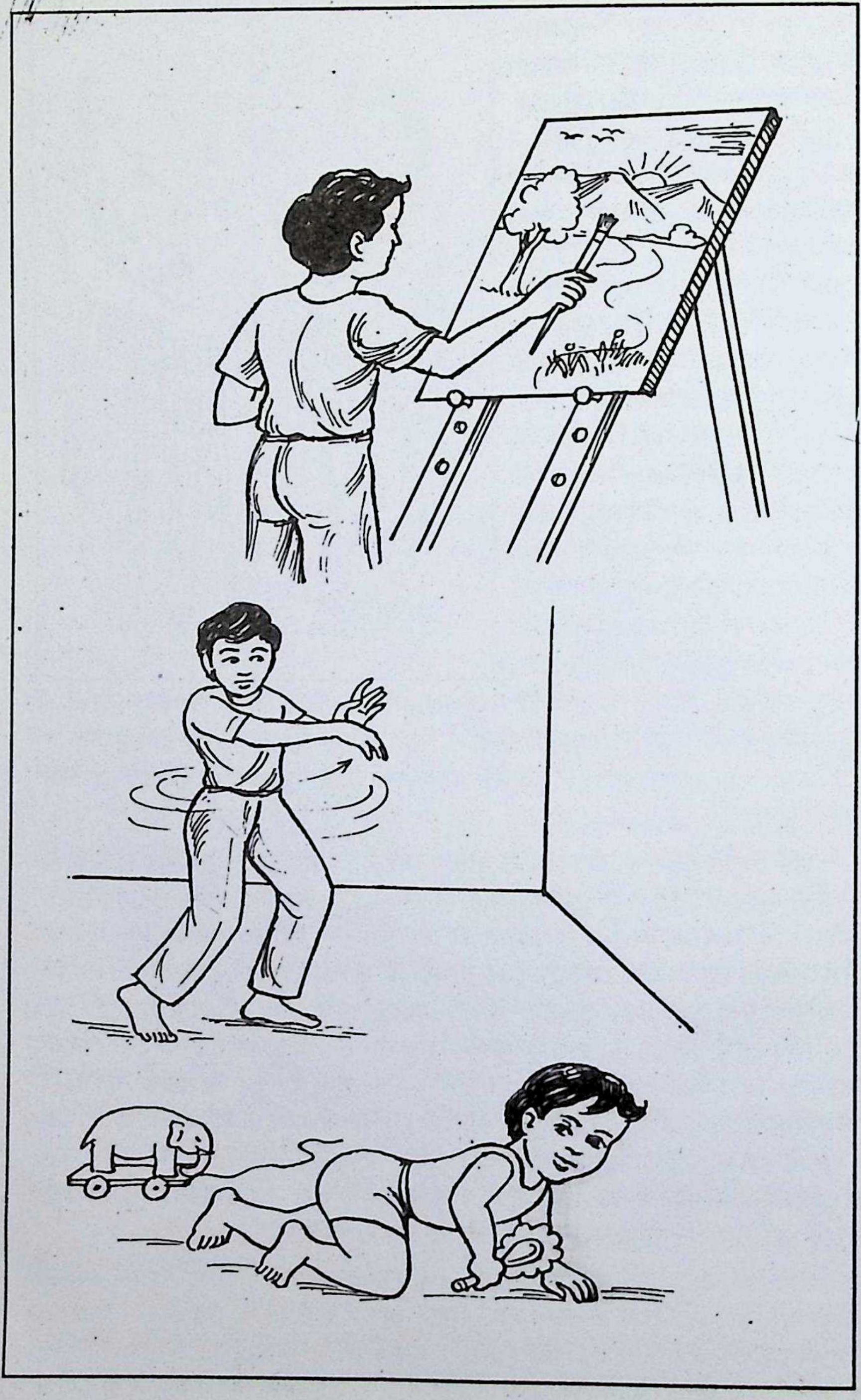

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तनाव समाप्त कर लिया, अपरिग्रह के अभ्यास द्वारा मालकियत की भावना से उत्पन्न तनाव समाप्त कर लिया, आनंदपूर्ण ललित कलाओं के अभ्यास द्वारा यौन संबंधी तनाव समाप्त कर लिया, तो हमारे पास जीने के लिए बचा क्या ? तनावरहित ईश्वर प्रदत्त वह जीवन जो जन्म के समय था हलका-फुलका फूल-सा जीवन। यही 'सत्य' है। सारे तनाव हमारे थोपे हुए थे जो जन्म के बाद हमने थोप लिए थे। इन तनावों से मुक्त होने के बाद जो बचा वही 'सत्य' है–एक सहज और सरल जीवन, एक दम प्राकृतिक, तनाव रहित, कुंठामुक्त (Complexless) निर्ग्रंथ जीवन। ऐसे व्यक्ति को हिंदूपुराणों में 'विदेह' कहा गया है और जैन लोगों में निर्ग्रंथ। इस स्थिति के उपरांत व्यक्ति जो कुछ करता है वह परिस्थितिजन्य (due to inspiration) होता है। जैसे एक शिशु क्रीड़ा करता है।

सत्य जीवन तक पहुँचने के लिए 'सत्य क्षण' को पकड़ना सीखना होगा। सत्य वह क्षण है, जो वर्तमान में आपके हाथ में है चूँकि इस क्षण से एक क्षण पूर्व का समय भूतकाल में चला गया और वर्तमान क्षण से एक क्षण बाद आने वाला समय भविष्यत काल की बात है, पता नहीं हाथ लगे या न लगे, परंतु अभी जो क्षण हमारे हाथ में है वह 'वर्तमान' है। वर्तमान का उपयोग करना हमारे हाथ की बात है उसे व्यर्थ न होने दें और जो करना है तुरंत, अभी, इसी क्षण करें। वर्तमान क्षण को पकड़ें। वर्तमान का आनंद लें। एक क्षण के लिए अभी तनावमुक्त होकर देखें। जो कार्य कर रहे हैं, करते रहें केवल तनाव छोड़ें। आप देखकर आश्चर्य करेंगे कि तनाव से आपके कार्य का कोई संबंध नहीं है। तनाव और कार्य दो अलग बातें हैं। बिना तनाव के भी आप कार्य कर सकते हैं। विराट् सत्य का अनुभव करने के लिए यह आवश्यक है कि आप सारे मानसिक तनाव छोड़कर वर्तमान में रहे हैं उसका आनंद लें, उस समय न भूतकाल में किये गये कार्यों का मनन करें, न भविष्य में किये जाने वाले कार्यों का चिंतन करें। दिन में कई बार ऐसे करने का अभ्यास करें। धीरे-धीरे आपको तनावरहित रहते हुए प्रत्येक कार्य करने का अभ्यास हो जायगा।

सहज सरल प्राकृतिक जीवन जीने वाले शीघ्र ही एकाग्र चित्त हो जाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आप एक धोती लपेटकर जंगल में जाकर धूनी रमायें अथवा आदिवासियों के समान नग्न होकर घूमें, जंगली फल खायें और विज्ञान के विकास से कोई संबंध न रखें। सहज सरल प्राकृतिक जीवन के बारे में स्पष्ट विवेचन दिया जा चुका है। इस सहजता से वस्त्रों का संबंध नहीं हैं रामनामी दुपट्टा डाले आज भी बहुत से डाकू घूमते हैं। जो अच्छे काम करते हैं, वे स्वयं भी अच्छे हों यह आवश्यक नहीं है। एकाग्रचित्त होने के लिए अच्छा बनना पड़ता है, अच्छा ओढ़ लेने से उसका काम नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलता। भले-बुरे का अधिक विचार करने वाले व्यक्ति भलाई-बुराई में इतने फँस जाते हैं कि वह उनके लिए तो उनके लिए, दूसरों के लिए भी तनाव का कारण बन जाती है। फिर भी परिणाम यह होता है कि उनकी बुराई बाहर से तो रुक जाती है और अंदर इकट्ठी होने लगती है। अतः सामान्य शुचिता (सफाई) **(Cleaning)** धुलाई **(Washing)** तथा पवित्रीकरण **(Purification)** का ध्यान रखें।

कहा जाता है "संतोषी सदा सुखी"। सुखी रहने के लिए, तनाव रहित जीवन यापन करने के लिए संतोष एक अच्छा शस्त्र है। परिस्थिति अनुसार संकट प्रत्येक व्यक्ति पर आते हैं। ऐसे में 'समझौता वाद' का सूत्र लाभप्रद रहता है। उस समय जो हो रहा है उसे स्वीकार कर लो और अपने शरीर के स्वयं दृष्टा बन जाओ। अपने शरीर को देखो वह कैसा परेशान हो रहा है, क्या कर रहा है। इस प्रकार आत्मकेंद्रित होने का प्रयत्न करो। अपने शरीर की बेचैनी का आप स्वयं आनंद लेने लग जाओ।

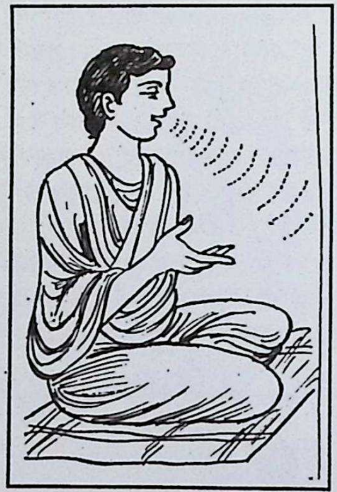

तपस्या का प्रभाव भी चित्त की चंचलता पर पड़ता है। इस विषय में सहज विधि यह है कि अपने ग्रह से संबंधित मंत्र का जप करें। तंत्र में कुछ मंत्र गुह्यांग संबद्ध होकर सिद्ध किये जाते हैं, तो कुछ श्मशान घाट पर जाकर। दुरूह साधनाओं में जाने की आवश्यकता सामान्यजन को नहीं पड़ती। आनंदपूर्ण साधनायें जल्दी फलवती होती हैं। संसारी कामना पूरक मंत्र कामपूर्ण होकर पूरे संकल्प के साथ करने से शीघ्र परिणाम देते हैं। आत्मशुद्धि हेतु जपे जाने वाले मंत्र निष्काम भाव से ही फलप्रद होते हैं। मंत्र जप में जप की संख्या आदि का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। मंत्र के उच्चारण के आधार पर मंत्र की स्वर लहरी निर्मित होती है। यदि स्वर लहरी सही रूप में प्रसारित नहीं होगी, तो परिणाम हानिप्रद भी हो सकते हैं।

मंत्र और यंत्र का चोली दामन जैसा साथ है। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि यंत्र, मंत्र का इष्ट रूप होता है। इष्ट की मूर्ति देवता का त्रिआयामी चित्रण है, तो यंत्र रेखांकन है। तंत्र कुछ विशिष्ट जीवटदार वस्तुओं के माध्यम से यंत्र-मंत्र की प्रक्रिया को अधिक प्रभाव युक्त बनाने की विधि बताता है। कुल मिलाकर यह देखा गया है कि दर्शन **(Philosophy)** की अपेक्षा तंत्र अधिक विज्ञान सम्मत स्पष्टीकरण देता है। सांसारिक अथवा मायिक तंत्र की अपेक्षा आध्यात्मिक तंत्र अधिक स्पष्ट और वैज्ञानिक है। कामनापूरक यंत्र के रूप में श्रीयंत्र का विशिष्ट स्थान है। विभिन्न प्रकार से श्रीयंत्र का उपयोग तांत्रिक एवं सिद्ध लोग करते हैं। सिद्ध पंथ कहता है—आत्मिक उन्नति उन्हीं उपायों से प्राप्त करनी चाहिए, जो उसके पतन का कारण हैं। तंत्र में कामवासना पर व्यावहारिक संयम और नियंत्रण की तथा नारी आराधना की एक विशेष विधि है जिसका मूल मानवीय अनुराग के दिव्यीकरण में है। संपुटिका में कहा गया है कि 'अतिश्रेष्ठ, शाश्वत और अविनाशी योग का उद्भव लैंगिकता से होता है' क्योंकि 'यौन' मानव स्वभाव का एक अनिवार्य अंग है, जिसे दमित अथवा अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। शशिभूषण दास गुप्त ने अपनी पांडुलिपि में स्पष्ट किया है कि 'सत्य की अनुभूति के लिए यौन भावना को योगिक क्रियाओं में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

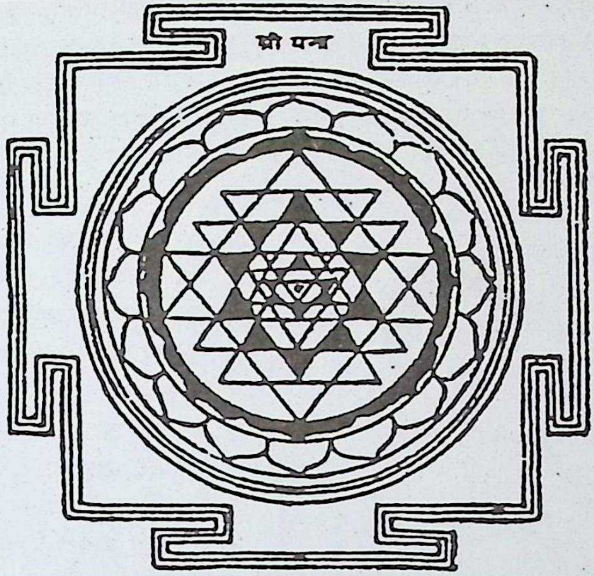

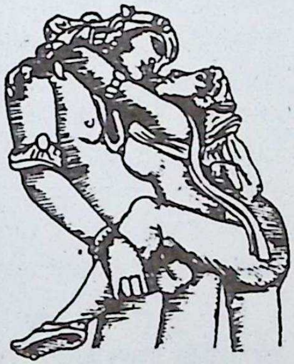

परिवर्तित करना ही श्रेयस्कर है।' वैसे योग तथा यौन का संबंध तो मध्य युग में निर्मित अजंता, एलोरा, कलिंग, बंग आदि की गुफाएँ एवं मंदिर स्पष्ट कर ही रहे हैं। मंदिरों में रखी शिवलिंग मूर्ति तथा कुंडलिनी के षड्चक्रों में मूलाधार आदि सभी में ॐ का चित्रण है, प्रकट में भले ही हम इस तथ्य से अनजान बने रहें। अर्धनारीश्वर पौरुष की पराकाष्ठा है, जहाँ पुरुष को नारी की आवश्यकता नहीं रहती। वह अपने में पूर्ण हो जाता है। समस्त उपासना का ध्येय आद्यपूर्णता की पुनर्स्थापना है, जिसका महान् प्रतीक तंत्र में अर्धनारीश्वर और जनसामान्य में मिथुन है चाहे वह शिव शक्ति के आलिंगन के रूप में हो अथवा राधा-कृष्ण के आलिंगन के रूप में हो, हेरक और प्रज्ञा के आलिंगन में हो या कामदेव और रति के रूप में। पूर्णत्व की ओर जा रहे मनुष्य में 'नारी की लालसा' समाप्त हो जाती है, भोग लिप्सा समाप्त हो जाती है, इसका यह अर्थ नहीं कि वह नारी को प्यार देना छोड़ देगा। कोई यह समझने की भूल न करे कि बुढ़ापे में तो नारी छूट ही जायगी। नारी छूट जाना अलग बात है और भोग लिप्सा छूटना अलग बात है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वाध्याय का एकाग्रचित्त होने में विशेष महत्व है। स्वाध्याय अर्थात स्व-अध्ययन दो प्रकार का है—किसी विषय का स्वयं अध्ययन (Self Study) करना, और दूसरा, स्वयं का अध्ययन (आत्म अध्ययन) करना है। अध्ययन का अर्थ पठन (Reading) नहीं है कि कहीं किसी पुस्तक या शास्त्र से पढ़ लिया और बात समाप्त हो गई। अध्ययन में मनन, निरीक्षण, परीक्षण, पठन और निष्कर्षन तथा सभी क्रियाएँ सम्मिलित हो जाती हैं। इस प्रकार इस स्वाध्याय में दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाना दूसरों से ज्ञान लेना आदि भी सम्मिलित है।

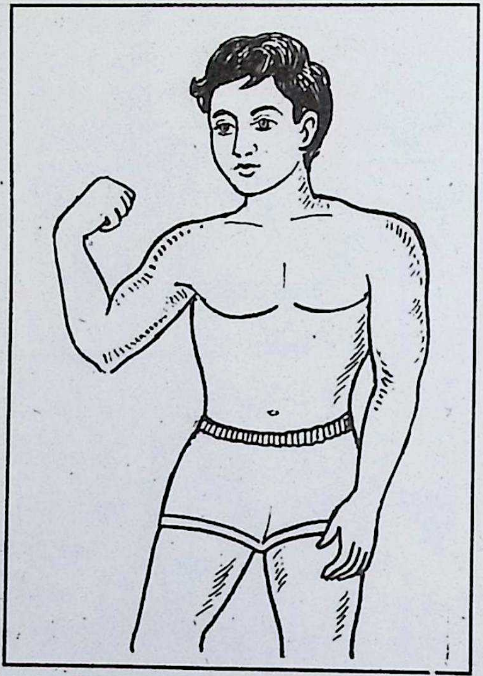

स्वयं के अध्ययन में सर्वप्रथम अपनी दिनचर्या पर ध्यान दीजिये। आपका स्वास्थ्य इसी पर निर्भर है, शरीर के अंगों पर ध्यान दीजिये। शरीर भगवान का मंदिर है उसकी सफाई और सजावट करना आपका धर्म है। यदि आप नास्तिक हैं तब तो आपको अपने शरीर पर और भी अधिक ध्यान देना पड़ेगा चूँकि उसका रखवाला आपके सिवाय कोई नहीं है। व्यायाम, भोजन, श्रम और निद्रा सभी आवश्यक मात्रा में चाहिए। व्यायाम को श्रम से कभी मत तौलिये। बहुत से लोग कहते हैं कि सुबह से शाम तक काम में व्यस्त रहते हैं। व्यायाम क्या करें ? वे नहीं जानते कि भोजन से ऊर्जा तैयार होती है, नींद में उत्पन्न होती है और व्यायाम से सक्रिय होती है, जिसे दिनभर के काम-काज में हम व्यय करते हैं।

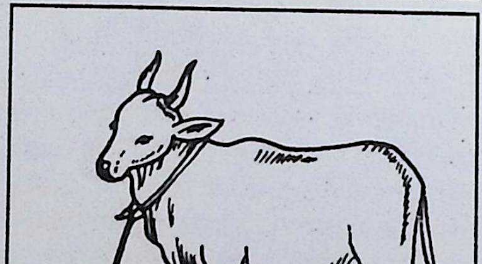

अब शरीर के पश्चात् शरीर के संबंधियों पर विचार करना भी आवश्यक है। सांसारिक नाते-रिश्ते सब शरीर के कारण हैं। यदि शरीर भारत में पैदा हुआ, तो भारत आपका है यदि रूस में पैदा होता, तो रूस आपका होता। ऐसे मायिक संबंधियों के प्रति भी चुपचाप अध्ययनरत रहना है। इसमें सभी जड़ चेतन सम्मिलित हैं। वह घास भी जिसका आप दूध पीते हैं। आप घास का ही दूध पीते हैं। गाय या भैंस तो एक मशीन है, जो घास से दूध बनाकर आपको देती है। आपका दरवाजा जो आपके मकान की रक्षा करता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। धीरे-धीरे यदि आप दृष्टि विस्तृत करते जायँ, तो आप देखेंगे कि संपूर्ण सृष्टि ही आपके अध्ययन क्षेत्र में आ जायगी। प्रारंभ में आप निम्न सूत्रों पर ध्यान देते रहें, तो आपकी समस्या बहुत सीमा तक हल हो सकेगी—

(1) प्रत्येक कार्य को खेल समझकर करें। खेल के नियमों में ढील देने से खेल का मजा मिट्टी हो जाता है।

(2) संबंधियों का जितना हो सके भला करें, परंतु उनसे भलाई की अपेक्षा न करें।

(3) बातचीत प्रेमपूर्वक सलीके से करें। किसी के कहने-सुनने से भयभीत न हों। कहने की परवाह पापी करता है।

(4) यदि क्रोध का अवसर आये तो पूरे जोर-शोर से क्रोध की एक्टिंग करें, क्रोध नहीं।

(5) किसी दूसरे के सहारे जीने की आदत न डालें। नौकर, बच्चे, चाय, सिगरेट, शराब आदि पर आश्रित रहना परतंत्रता है।

(6) दूसरों से कोई कार्य लेना हो तो प्रेमपूर्वक उनके सुख-दुःख पर भी ध्यान दें और अंत में उन्हें धन्यवाद देना न भूलें।

(7) आपको कोई भी आनंदपूर्ण कार्य ऐसा न हो, जिससे किसी दूसरों को कष्ट हो।

(8) अपनी वस्तुएँ धीरे से, सलीके से और चमाचम रखें और कभी उनका दुष्प्रयोग न करें।

(9) आपको हानि पहुँचाने वाले व्यक्तियों, जानवरों, कीड़ें-मकोड़ों आदि से बचने के उपाय काम में लायें—हन्ते को हनिये, पाप-दोष न गिनिये।

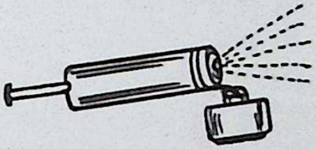

(10) जीवन में सदैव धनात्मक (आशावादी) पक्ष को लेकर चलें। धनात्मक की बात करें और धनात्मक कार्य करें।

(11) जब तक आप समाज से ऊपर नहीं उठ जाते, सामाजिक नियंत्रण का ध्यान रखें।

(12) एकाकीपन और लज्जा को त्यागकर क्रियाशील बनने का प्रयत्न करें।

(13) उद्दंडता अपने व्यवहार में न आने दें, नम्र बने रहें।

(14) भय के समान अधर्म नहीं है। भय का अनुशासन पशुओं को शोभा देता है। समझ से उत्पन्न होने वाला अनुशासन टिकाऊ रहता है।

(15) आलोचकों से चिढ़िये मत, दोष ज्ञान वे ही कराते हैं, परंतु ऐसे कार्य करिये कि प्रशंसकों की संख्या बढ़े।

एकाग्रचित्त होने के विषय में धर्मशास्त्रों में 'ईश्वर प्राणिधान' की बात आती है। ईश्वर प्राणिधान, ईश्वरार्पण, ब्रह्मार्पण, आत्मार्पण आदि सभी पर्यायवाची हैं। जो भी कर्म करो ईश्वरार्पण अर्थात् आत्मार्पण होकर करो। आत्मार्पण से तात्पर्य है अपनी ओर देखते हुए, अपने गुण—अवगुणों, क्षमता आदि पर ध्यान देते हुए पूरे मनोयोग से कार्य करना और जब पूरे मनोयोग से आपने अपनी ओर से कोई कार्य कर दिया, तो जो भी परिणाम आये, उसमें संतुष्ट होना है, चूँकि इससे अधिक आप कुछ कर ही नहीं सकते थे। यहाँ पाठक समझौतावाद एवं ईश्वरार्पण को एक ही समझने की भूल न करें। समझौतावाद अपने को परिस्थिति के अनुकूल ढालने के लिए अपनाया जाता है और ईश्वरार्यण भाव परिस्थिति को बेअसर करने के लिए, चूँकि आप अपनी ओर से जो कर सकते थे कर चुके, अब ईश्वर जाने।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मसमर्पण अथवा ईश्वरार्पण होने का अभ्यास गुरु के प्रति समर्पित होकर भी किया जाता है। अंतर्दृष्टि युक्त गुरु के प्रति यदि आप पूर्ण समर्पित न हों, तो आप गुरु के ज्ञान और अनुभवों से पूरा लाभ नहीं उठा पायेंगे। अंतर्दृष्टि एक मनोवैज्ञानिक समझ है, कोई जादूगरी वाली बात नहीं, जो गुरु आपके भूत, भविष्य का बखान कर रहा हो

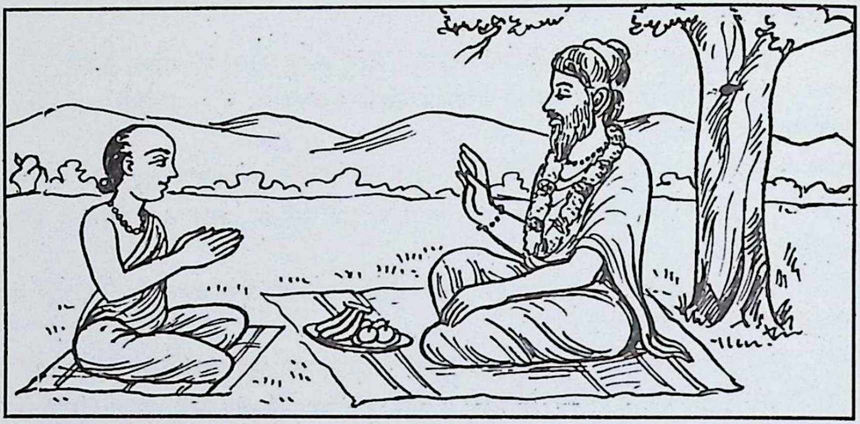

उसे अंतर्दृष्टि युक्त गुरु समझने की भूल न कर बैठना। आध्यात्म में कहीं भी छूमंतर और जादू नहीं है, यह तो सतत साधना का मार्ग है जो स्वयं अपने बल पर ही तय करना पड़ता है। एक बात और ध्यान रखने की है—न गुरु से स्वयं बंधो और न गुरु को स्वयं से बांधो। बंधन मुक्ति हमारा ध्येय है, यह नहीं कि लोहे की बेड़ी खोलो और सोने की बांध लो, संतान से बंधना और भगवान से बंधना आध्यात्म की दृष्टि में बंधन ही है।

एकाग्रता के अभ्यास में "ईशित्व सिद्धि" की बात भी आती है। 'ईशित्व' का अर्थ है मालकियत प्राप्त होना। पीछे हम मालकियत की भावना त्यागने की बात कर आये हैं, यहाँ मालकियत प्राप्त करनी है, मालकियत की भावना नहीं। एक व्यक्ति को आप अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए लगा देते हैं, तो वह मालकियत की भावना रखकर दूसरों से उस संपत्ति को बचाता है, परंतु वह उस संपत्ति का मालिक नहीं है, जो मालिक है उसे भावना रखने की अवश्यकता नहीं पड़ती। तो हमें 'मालकियत' प्राप्त करनी है। मालकियत किसकी ? हम दुनिया के मालिक बन जाते हैं, पर अपने मालिक नहीं बन पाते। इसीलिए दुनिया के मालिक बन जाने पर भी मन आगे ही दौड़ता है, उसकी रिक्तता नहीं भरती और आप जानते हैं—**मन के हारे हार है, मन के जीते जीत**। मन पर काबू कर लेना ही ईशित्व सिद्धि है। मन को अपना सेवक बनाकर रखिये। अपने को मन का सेवक मत बनने दीजिये। मालिक आप हैं, मन नहीं। मन चाहे या न चाहे यदि कोई लाभकारी कार्य आपको करना है, तो वह करना ही है, मन का कोई महत्व नहीं। जब चोर घर में घुस आता है, तो चारपाई से उठने में आप 'मूड' नहीं देखते। घर में आग लग जाती है तो 'मन' का इंतजार नहीं किया जाता। मन कुछ नहीं है। काम हमें करना है, तो मन को आर्डर दो कि अपनी इंद्रियों के साथ काम पूरा करे। वह आपका सेवक है। मन की सेवादार 'इद्रियां' है, परंतु चूँकि मन आपका सेवादार है अतः इंद्रियाँ भी आपकी आज्ञा से परे नहीं जा सकतीं। इंद्रियाँ आज्ञा की अवहेलना उसी स्थिति में करती हैं जब आप स्वयं ढीले पड़ जाते हैं। यदि डाक्टर ने चार मिठाई बंद करा दी हैं, तो जीभ की क्या मजाल जो बिना आपकी शह के मिठाई को चख भी सके। आपकी शह पर आपके हाथ उठेंगे, मिठाई के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थाल तक जायेंगे, मुँह खुलेगा और तब जीभ को माल मिलेगा। जीभ के कार्य से पहले तो बहुत सारे कार्य हो गये और आप बदनाम करते हैं जीभ को। हो रहा है सब आपकी अपनी मर्जी से, बदनाम इंद्रियों का मालिक 'मन' हो रहा है। यह तो अन्याय है। इस बदनामी को अपने सिर लीजिये। कहिये, मैं स्वयं चटोरा हूँ और अपने चटोरापन पर अभी से अंकुश लगाता हूँ। इस प्रकार अपनी गलती को स्वयं स्वीकार करो। मन और इंद्रियों के मत्थे मत मढ़ो। जब व्यक्ति को पता लग जाता है कि वह कीचड़ में पड़ा है, तो उसे उठने में देर नहीं लगती। अपनी कमियों को पहचानो और उन्हें स्वयं ही, अपनी परिस्थिति के आधार पर दूर करने की प्रक्रिया खोजो तब आप ईशित्व सिद्धि पायेंगे, अपने मन के स्वयं राजा होंगे। आप अपने भाग्य के स्वयं विधाता होंगे। इसके लिए एक ही सूत्र है—मौन भाव से अपने मन का मनन करते रहिये और मन की प्रत्येक क्रिया पर दृष्टि रखिये।

एकाग्रचित्त होने की साधना में ध्यान का विशेष महत्व है। सामान्यतः लोग धारणा ध्यान और समाधि में अंतर नहीं कर पाते। धारणा (Concentration) है अपनी शक्ति को पूंजीभूत करके प्रसारित करना। ध्यान (Meditation) है अपने को निर्विचार (Thoughtless) बनाना, जिससे हमारे चारों ओर ब्रह्मांड में व्याप्त शक्ति हमारे अंदर आ सके। जब तक विचार चल रहे हैं आपकी शक्ति प्रसारित हो रही है जब प्रसारण बंद हो तब ग्रहणन (रिसेप्शन) प्रारंभ हो। जब आप बोलना बंद कर देते हैं, तभी तो दूसरे की सुन सकेंगे। अपना ट्रांसमीटर बंद करें, तो रिसीवर का कार्य प्रारंभ हो। निर्विचार होते समय मस्तिष्क की बहुत-सी नाड़ियाँ विश्राम में आ जाती हैं, जो अभी तक निरंतर कार्य में लगी हुई थीं। विश्राम से उन्हें शक्ति मिलती है और मस्तिष्क और अधिक कार्य करने लायक बन जाता है। अधिक अच्छा सोच पाता है। अधिक एकाग्र रह पाता है।

जब तक साधक एकाग्र न हो पाये, 'शून्यस्थ त्राटक' के कुछ अभ्यास करते रहने चाहिए।

1. गंध चेतना

साधक एक साफ सुथरे सुरक्षित स्थान पर किसी भी सुखासन में आँख बंद करके बैठे और ध्यान करे कि उस स्थान पर कौन-सी गंध आ रही है। अपनी ओर से किसी गंध की कल्पना न करें। जब उसके आस-पास की गंध आने लगे, तो इस अभ्यास को आगे बढ़ाये और वहीं बैठे-बैठे किसी दूर के स्थान वाले मंदिर, उपवन अथवा रसोई आदि के स्थान पर उठ रही गंध को पकड़ने का प्रयत्न करे। निरंतर ध्यान करते रहने से गंध पकड़ में आ जायगी, परंतु पहिले से ही किसी गंध की कल्पना मन में न लाये। मन में तो केवल शून्य उत्पन्न करना है कि पता नहीं कौन सी गंध है? जब गंध आने लगे, तो उस स्थल पर जाकर परीक्षा भी करनी चाहिए कि साधक ने जो गंध अनुभव की उसमें और जो गंध वास्तव में उस स्थान पर है, उसमें कितना अंतर शेष रहा। धीरे-धीरे गंध चेतना अधिक चैतन्य होती जायगी।

2. ध्वनि चेतना

ज़िस प्रकार गंध चेतना में वृद्धि करने के लिए किसी दूर के स्थल की गंध पकड़ने के अभ्यास के लिए मन में शून्य निर्मित किया गया था, उसी प्रकार मन में पास की सड़क, चौराहा, मंदिर, दुकान आदि किसी स्थल का ध्यान करता हुआ, शून्यस्थल होकर साधक यह सोचे कि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वहाँ क्या-क्या आवाजें आ रही हैं। यदि ऐसा स्थल पास में ही हो, तो साधक को वहाँ जाकर परीक्षा भी कर लेनी चाहिए कि उसकी पकड़ कहाँ तक ठीक रही।

3. दृष्टि चेतना

साधक एक कोने में बैठ जाय और उसका साथी दूसरे कोने में। साथी कोई अंक स्लेट पर बनाये और साधक ध्यान में स्लेट लाकर उस पर लिखे अंक को बंद आँखों में देखने के लिए शून्य निर्मित करे कि स्लेट पर कौन-सा अंक लिखा है। धीरे-धीरे साधक के शून्य मन में एक अंक उभरने लगेगा। फिर अपनी परीक्षा स्लेट पर लिखे अंक को देखकर करे। इससे मानसिक दृष्टि की चैतन्यता में वृद्धि होती है।

अष्टांग योग की सभी बातों के चलते यह कुछ जमता नहीं है कि 'समाधि' की बात न की जाय। 'समाधि' है 'अति चेतन अवस्था' (**Super Conscious state**) जो शून्य की स्थिति में ही फलित होती है–

ऊर्ध्व शून्यमधः शून्यं मध्य शून्यं यदात्मकम्।
सर्व शून्यं स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम्।।

(उत्तर गीता)

और इस स्थिति में आने के लिए 'एकाग्रता' एक मात्र उपकरण है–

सर्वतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणामः।

(पातंजल योग सूत्र 3/11)

श्रद्धा और वीर्य (सामर्थ्य) के आधार पर व्यक्ति शून्यस्थ हो समाधि लाभ करता है। ऐसे व्यक्ति की बुद्धि ऋतंभरा सत्य को ग्रहण करने वाली/हो जाती है। उसमें संशय और भ्रम नहीं रहता। ऐसी बुद्धि को समाधि प्रज्ञा भी कहते हैं। यदि ऋतंभरा बुद्धि वाला अपने संस्कारों का विरोध कर ले, तो वह कैवल्य की ओर बढ़ता है। पुरुषार्थ शून्य गुणों का प्रकट होना ही कैवल्य है। पुरुषार्थ शून्य से तात्पर्य है कर्माशय शून्य। कर्माशय ही संस्कार हैं, जो आवगमन का कारण अर्थात् बीज है। इसलिए कैवल्य निर्बीज समाधि है। इसीलिए योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण अर्थात् न अच्छे, न बुरे बताये गये हैं। अतः योगी वासना मुक्त होता है। कुछ लोग जन्म से ही 'मुक्त कर्म' होते। ऐसी साधना रहित निर्बीज अवस्था 'भव प्रत्यय' कहलाती है। जो इतना पाने के पश्चात् भी अपनी महिमा के प्रति विरक्त रहे वह 'धर्म मेघ समाधि' सिद्ध कहलाता है और जीवन्मुक्त बना रहता है।

OO

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

10 स्वास्थ्य और योग

संसार में जितने भी सुख के साधन हैं, उन संपूर्ण साधनों का सार शरीर का निरोगी रहना ही है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों की जड़ निरोगता ही है। इसी कारण से संपूर्ण सुखों का सार काया का निरोगी रहना कहा गया है। वास्तव में शरीर सुख (आरोग्य) के पीछे अन्य सुख आश्रित हैं। स्वास्थ्य के विषय में अंग्रेजी में कहा जाता है–

"First wealth is health"

अर्थात् 'पहला धन तंदुरुस्ती है।' यदि मनुष्य निर्धन होकर भी स्वस्थ है, तो वह अपने जीवन में सुखी रह सकता है, परंतु मनुष्य धनवान्, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् तथा समस्त पृथ्वी का राजा होकर भी, यदि रुग्ण रहता है तो दुःखी है। इसी बात को एक शायर ने कहा–

''एक तंदुरुस्ती हजार नियामत''

नियामतों (धन दौलत) का ढेर लगा हो, अगर तंदुरुस्ती ठीक नहीं तो सब बेकार है–

जितने भी सखुन हैं, सबमें यही सखुन दुरुस्त।
भगवान आबरू से रक्खे और तन्दुरुस्त।।

कहने का भाव सबका एक ही है कि बिना तंदुरुस्ती के संपूर्ण सुख साधन बेकार हैं, चाहे लोक की प्राप्ति हो अथवा परलोक की, सबका एक मात्र साधन हमारा स्वास्थ्य ही है।

स्वास्थ्य ही इस लोक और, परलोक सुख का सार है।
रोगी तन-मन है तो सब, संसार सुख बेकार है।।

अगर हमारे शरीर, मन दोनों में से कोई भी रोगी है, तो हम स्वप्न में भी सुखी नहीं रह सकते। निःसंदेह हमारे समस्त लोक तथा परलोक से संबंध रखने वाले कर्मों का आधार स्वास्थ्य ही है। कहा भी है–

''शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्।''

दूसरे शब्दों में यही बात किसी अंग्रेज विद्वान् के मत से–

"Health is primary requisite of Dharma"

स्वास्थ्य खोकर विद्या लाभ करना व्यर्थ है, स्वास्थ्य को गँवाकर धनी होना भी व्यर्थ है। एक राजा का सारा राज्य, सुख, कोष व उसके अधिकार व्यर्थ हैं यदि वह रोगी है। सुख का बहुत-सा सामान जमाकर लेने से कोई सुखी नहीं हो सकता। बहुमूल्य पदार्थों से सजे हुए सुंदर कमरे में बैठा हुआ मनुष्य भी सुखी नहीं हो सकता, यदि उसका मन या शरीर रोगी है लेकिन एक खुले मैदान में घास पर बैठा हुआ धनहीन, अधिकारहीन मनुष्य भी सुखी हो सकता है, जिसके मन और शरीर में कोई रोग नहीं। उपर्युक्त कथन से पाठक भली प्रकार समझ गये होंगे कि स्वस्थ रहना मानव जीवन के मूल उद्देश्य की प्राप्ति का प्रमुख साधन है; इसलिए

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रत्येक सुख चाहने वाले प्राणी का कर्तव्य है कि वह शरीर तथा मन से स्वस्थ रहे। स्वस्थ, शब्द 'स्व', और 'स्थ', इन दोनों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ होता है–'अपने में स्थित रहना' आचार्य सुश्रुत ने कहा है–

सम दोषः समाग्निश्च समधातु मल क्रियः।
प्रसन्नात्मेद्रियमनाः स्वस्थ इत्यमिधीयते।।

हमारे स्वास्थ्य अथवा आरोग्य की सीमा में आत्मा, प्राण, मन (अंतःकरण) तथा शरीर की प्रसन्नता का समावेश है। शरीर, प्राण, मन (अंतःकरण) तथा आत्मा की प्रसन्नता ही स्वास्थ्य है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक, इन तीन दंडों की कसौटी पर जो खरा साबित होता है, वही पूर्ण स्वस्थ है। इनमें से एक की भी कमी उसके अस्वास्थ्य की सूचक है। शारीरिक स्वास्थ्य का मतलब है धातु साम्य रहना, अर्थात् वात, पित्त, कफ की समानता। व्यावहारिक सिद्धि हस्तगत करने के लिए मनुष्य का शरीर से स्वस्थ होना अनिवार्य है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है चित्त की समता अर्थात् सत्, रज, तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था। मानसिक स्वास्थ्य मनोजगत् की गुप्त अद्भुत शक्तियों की जाग्रति के लिए परम आवश्यक है। इसके बाद नैतिक स्वास्थ्य का मतलब आत्मशक्ति को जाग्रत करना है। नैतिक स्वास्थ्य स्वार्थ तथा कुत्सित भावनाओं का उन्मूलन कर व्यष्टि को समिष्ट की व्यापकता प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं। मनुष्य के अंदर ये तीन शक्ति के घर हैं, जिनको क्रमशः शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति तथा आत्मिक शक्ति कहते हैं। इन तीनों शक्तियों में आत्मिक शक्ति या नैतिक स्वास्थ्य ही प्रमुख है। इसके आ जाने पर वह शक्ति बाकी दोनों का सुधार अपने आप कर लेती है।

स्वास्थ्य को उर्दू में "तंदुरुस्ती" कहते हैं। यह शब्द 'तन' और 'दुरुस्त' से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है "शरीर को ठीक रखना। यह आरोग्य और सुख शांति बाहर की चीज नहीं बल्कि मनुष्य तो स्वभाव से ही सुखी, शांत और आनंदमय है। हमारे समस्त दुःखों और रोगों का मूल कारण हमारा अपना ही अज्ञान व इंद्रिय लोलुपता है। हमें रोग, शोक आकर तभी घेरते हैं। जब हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करते हैं। प्रकृति के नियमों को ठीक से समझकर उन पर चलने वाला रोग ग्रस्त नहीं होता। उदाहरण के लिए, पशु-पक्षी प्राकृतिक नियमों का ठीक अनुसरण करके चलने के ही कारण स्वस्थ रहते हैं। लेकिन अर्वाचीन मनुष्य सभ्यता की सीढ़ी पर जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा है, वह वैसे ही वैसे रोग, शोक ग्रसित होता जा रहा है। जीवन तत्व की धारा, जो कि मानसिक और शारीरिक परिस्थितियों को स्वस्थ्य रखने में समर्थ हुआ करती थी, वह आज प्रायः लुप्त होती जा रही है। फलस्वरूप समाज प्रतिदिन रोगग्रस्त व जीवन शून्य होता चला जा रहा है। आज देखने में आता है कि अधिकांश व्यक्तियों का अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया है। वे शरीरवादी या जड़वादी सभ्यता के उपासक बनकर यम-नियमों तथा सदाचार आदि को तिलांजलि देते हुए विकास बाद की डींग हाँकते हुये अधोगति की ओर बहे जा रहे हैं। लेकिन वे सच्चे अर्थों में शरीरवादी भी तो नहीं हैं, क्योंकि यदि शरीर वादी होते, तो उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ तथा विकसित होने चाहिए थे, पर ऐसा देखने में नहीं आता क्योंकि उनका ध्यान शरीर की पुष्टि की तरफ नहीं है। वह अपने धन और समय का उपयोग शरीर की बाहरी सजावट के कृत्रिम साधनों में लगाकर अपने रूप पर मुग्ध हो रहे हैं। जो धन व समय हमें खान-पान, व्यायाम आदि में खर्च करना चाहिए वह कृत्रिम साधनों में व्यय कर रहे हैं। जितना समय हमारा शरीर की बाहरी सजावट में जाता है, उतना हम व्यायाम में नहीं देते। हम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल कथन मात्र के ही स्वदेशी (भारतीय) हैं, हमारा खान पान, वेशभूषा, बोलचाल आदि सभी विदेशी बनती जा रही है। आज हम अपनी अकल को बेचकर पाश्चात्य सभ्यता की नकल करते जा रहे हैं। हमारी दिनचर्या, ऋतुचर्या व खान-पान आदि प्राकृतिक न रहकर अप्राकृतिक बनते जा रहे हैं। आज का प्राणी बुद्धिजीवी है, अर्थात् उसका जीवन बौद्धिक परिश्रम पर निर्भर है, इस कारण से प्रायः जीवन के हर क्षेत्र से शारीरिक श्रम का अभाव होता जा रहा है। आधुनिक सभ्य प्राणी शारीरिक परिश्रम को हेय की दृष्टि से देखता है और जहाँ तक संभव है, वह शारीरिक परिश्रम से दूर भागता है। इस आराम परस्ती व शारीरिक परिश्रम (व्यायाम) के अभाव से हमारे शरीर दिन प्रतिदिन रोग, शोक के घर बनते जा रहे हैं। आज हम मशीनों की सहायता से अपने अंदर की शक्तियों को कुंठित करते जा रहे हैं। हमारा प्रतिदिन का जीवन मशीनों के ऊपर निर्भर होता जा रहा है।

शरीर स्वास्थ्य की समस्या पर विजय पाने के लिए उत्तम होगा कि सर्वप्रथम रोगों के कारणों को खोज निकाला जाय।

शरीर तथा मन दोनों ही रोगों के आश्रय हैं। कई रोग केवल शरीर का आश्रय लेते हैं जैसे–कुष्ठ और कई रोग केवल मन का आश्रय लेते हैं जैसे–क्रोध आदि। कई रोग मन तथा शरीर दोनों का आश्रय लेते हैं जैसे उन्माद, आलस्य आदि। यह बात ठीक है कि शारीरिक व्याधि का मन पर और मानस व्याधि का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। मन की आरोग्यता के आधार तीन हैं–(1) प्रसन्नता (2) शांति और (3) स्थिरता। मन सदा प्रसन्न रहे, मन में सदा शांति रहे और मन में सदा स्थिरता एवं एकाग्रता रहे, तो मन स्वस्थ रहता है। काम, भय तथा चिंता मन की प्रसन्नता का अपहरण करते हैं। क्रोध व ईर्ष्या मन की स्थिरता को नष्ट करते हैं। मन को स्वस्थ रखने के लिए उक्त विकारों को नष्ट करना होगा। हमारे शुभ तथा अशुभ मनोभावों का शरीर पर तत्काल असर होता है। भय का प्रभाव मन और शरीर की अंतड़ियों और गुर्दे पर शीघ्र ही पड़ता देखा गया है, जिसके प्रभाव से डरे हुये पशु-पक्षी तथा बच्चे मल-मूत्र त्याग देते हैं। ठीक ऐसा ही प्रत्येक पर प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा अत्यंत शोक व चिंता से रक्त में उष्णता पैदा हो जाती है, जिससे रक्त जलने लगता है तथा रक्त की गति मंद पड़ जाती है। इसके विपरीत हर्ष से रक्त की गति तीव्र होकर बढ़ जाती है, लेकिन अति हर्ष व शोक में रक्त की गति रुक भी जाती है, जिससे मृत्यु तक हो जाती है। इसके अलावा लोभ से कफ, क्रोध से पित्त और काम तथा मोह से वात दोष की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार मन के इन विकारों से शरीर में रोग आते हैं। कहना चाहिए कि ये सूक्ष्म मानसिक विकास ही स्थूल शरीर पर रोग के दूसरे रूप में प्रकट होते हैं। वास्तव में विकारों की जड़ तो हमारा मन ही है। इतना शरीर का रोग असाध्य नहीं, जितना कि मन का है। क्योंकि हमारे समस्त मनोभावों का आश्रय हमारा मन ही है। सुख-दुःख, भला-बुरा आदि सबका संबंध मन से ही है। जिसने मन को वश में कर लिया, वह सर्वदा निरोगी है; कहावत भी है–

"मन चंगा तो कठौटी में गंगा। तन चंगा तो सब चंगा ही चंगा।।"

अतः रोगों से बचने के लिए तथा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए मन का सुधार अति आवश्यक है। अगर मन स्वस्थ होगा, तो तन स्वाभाविक स्वस्थ रहने लगेगा।

मन के पश्चात् तन का नंबर आता है। तन के स्वास्थ्य का आधार है–आहार तथा विहार। आहार का मतलब 'भोजन' तथा विहार का मतलब है, 'रहन-सहन'।

शरीर में जो दोष आते हैं वह दूषित आहार से तथा अनियमित दिनचर्या से आते हैं।

"सर्वे शरीर दोषाभवन्ति ग्राम्याहाराद्"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् स्वभाव विरुद्ध आहार से शरीर में दोष आते हैं, और वही विकार रोगों का कारण बनते हैं। समस्त रोगों का निदान करते हुए आयुर्वेद शास्त्र में लिखा है–

"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितो मलः।"

अर्थात् समस्त रोग, मल के कुपित होने पर होते हैं। समस्त रोगों का प्रथम और सबसे बड़ा कारण भीतरी मल का संचित होना है। समस्त रोगों की एक ही चिकित्सा है 'मल को दूर करना'। सब रोगों की जड़ यह मल ही है। जो शरीर में कुपित होने पर वहाँ पड़ा सड़ता रहता है और विषैले कीटाणुओं को जन्म देता है। आयुर्वेद में व्याधिओं के तीन कारण और भी मिलते हैं–(1) असात्म्येंद्रियार्थ संयोग, (2) प्रज्ञापराध, (3) परिणाम। असात्म्येंद्रियार्थ संयोग का मतलब है 'इंद्रियों का गलत उपयोग', अति तथा कम उपयोग से भी व्याधियों की उत्पत्ति होती है। प्रज्ञापराध का मतलब है 'शारीरिक, बाचिक एवं मानसिक कार्यों में गलती', अधिक एवं कम प्रवृत्ति से भी रोगों की उत्पत्ति होती है, जैसे झूठ बोलना, कलह आदि। परिणाम का अर्थ है 'ऋतु दोष, इसकी वजह से भी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। सामाजिक नैतिक नियमों के विरुद्ध मनुष्य जो अधार्मिक कृत्य करता है, उसके परिणामस्वरूप भी रोग पैदा होते हैं।

रोग है कोषों की कमजोरी, जिसके कारण शरीर के कोश अपना काम ठीक तौर से नहीं कर सकते। भिन्न-भिन्न अंगों के कोश-समूह की दुर्बलता से विभिन्न प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं, जिससे व्याधियों का वंश इतना बड़ा हो गया है। पर वास्तव में बीमारी एक ही है–कमजोरी। कब्ज है मल बाहर निकालने वाले अंगों की कमजोरी। यही बात और रोगों के बारे में भी समझिए।

पर कमजोरी को असली मर्ज बताने के माने यह नहीं हैं कि तगड़े होने को हम तंदुरुस्ती मान लें। एक अंग के कोषों को कमजोर बनाकर दूसरे अंग का थोड़ा अधिक पुष्ट हो जाना स्वास्थ्य नहीं है। स्वास्थ्य के माने तो हैं, शरीर के सभी अंगों का मेल के साथ एक-दूसरे के पोषक–सहायक होते हुए बढ़ना और पुष्ट हो एक का शोषण करके दूसरे का पोषण किया जाय, स्वास्थ्य इसे सहन नहीं कर सकता। ऐसा ही स्वास्थ्य हमारी मानसिक शक्तियों के विकास में सहायक हो सकता है और उसी को साधना प्रांरभिक पढ़ाई के समय से कर्तव्य है।

सृष्टि का पहला नियम है कि प्रतिरोध पर विजय पाने से बल की उत्पत्ति होती है। क्रिया चेष्टा जीवन है, निष्क्रियता, गतिहीनता का फल मृत्यु है। चोट लग जाने के कारण हम अपने किसी अंग से कुछ दिन काम न ले सकें, तो उसमें कमजोरी महसूस करने लगते हैं। खेल-कूद और अनियमित व्यायाम आदि से सच्चा स्वास्थ्य नहीं मिल सकता। ऐसा स्वास्थ्य तो व्यक्ति विशेष की शारीरिक स्थिति और आवश्यकता के अनुरूप नियमित, संतुलित, सारे शरीर का बल बढ़ाने वाले व्यायाम अर्थात् वैज्ञानिक योगासन और इस प्रकार की दूसरी क्रियाओं से ही मिल सकता है। शरीर को ऐंठने, तोड़ने-मरोड़ने वाली कसरतें और शरीर बल की प्रतियोगिताएँ उसके रहे-सहे सामंजस्य को भी नष्ट कर देती हैं। हम खेल-कूद की निंदा नहीं करना चाहते, पर यह तो कहना ही पड़ेगा कि विज्ञान-सम्मत योगासनों का स्थान वे नहीं ले सकते। इनकी आवश्यकता शरीर के उन भागों को सबल बनाने के लिए होती है, जिनकी हमारे खेलों में उपेक्षा की जाती है। शीर्षासन से मस्तिष्क की, सर्वांगासन से कंधों की, नौलि से पेट की पुष्टि होती है। प्राणायाम नाक और फेफड़े के लिए हितकर है, गोरक्षासन से वीर्य की रक्षा होती है। विदेशों के प्रगतिशील व्यायाम-विशारद भी ठीक इसी विधि का अनुसरण कर रहे हैं। टाट हेड्रेन, ब्रैडमैन आदि ने अपनी व्यायाम पद्धति में जिन कसरतों को अपनाया है, वे योगासनों से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बहुत अधिक मिलते हैं। योगासन कोई जादू-मंतर नहीं बल्कि शरीर और मन का वैसा ही सच्चा विज्ञान है जैसा 'गणित' अंकों का विज्ञान है। उसका प्रधान उद्देश्य आध्यामिक उत्कर्ष है, पर चूँकि इसके लिए शरीर और मन का थोड़ा-बहुत सुधार भी करना ही होगा इसलिए उसने इसकी एक पद्धति प्रस्तुत कर ली है और वह इतनी सूक्ष्म है कि और कोई साधना-प्रणाली इस गुण में उसका मुकाबला नहीं कर सकती। केवल बुद्धि बढ़ाने का उपाय करना एकांगी विकास होगा। व्यापक दृष्टि से शिक्षा का अर्थ होगा संस्कृति और सभी शारीरिक-मानसिक शक्तियों का नियमन और अनुशासन। शरीर, मन, आचार, व्यवहार सब सुंदर होना उसका उद्देश्य होना चाहिए। इस कसौटी पर कसने से योग संपूर्ण शिक्षा-पद्धतियों में सर्वश्रेष्ठ निकलेगा।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि मुख्य रूप से रोगों का प्रथम कारण हमारा अप्राकृतिक आहार विहार है, रोगों का दूसरा कारण है व्यायाम का अभाव, तीसरा कारण है इंद्रिय लोलुपता तथा चौथा कारण है वीर्य नाश, पाँचवाँ फैशन तथा विलासी जीवन, छठा कारण अपनी सहज बुद्धि का अनुसरण न करना व अपने शारीरिक व मानसिक वेगों को रोकना, सातवाँ कारण है दवाओं का अत्यधिक सेवन। अधिकतर रोग पेट की खराबी से होते हैं और पेट की खराबी रसना की दासता से होती है। रसना की दासता ही मनुष्य के बेईमानी, भ्रष्टाचार, अनाचार आदि दुर्गुण करने के लिए बाध्य करती है। रसनेंद्रिय पर विजय प्राप्त कर लेने से शेष इंद्रियाँ स्वतः ही पराजित होकर वश में हो जाती हैं।

अब हम थोड़ा रोगों के वास्तविक रूप से विचार करेंगे। आज संसार में रोग को एक हउआ समझा जाता है। इसके नाम से बहुत कुछ डरे होने के नाते रोग को बड़ी आपत्ति समझते हैं यह सब गलतफहमी इसीलिए है कि हम रोग के वास्तविक रूप को नहीं समझते। आज संसार में जिसे रोग कहा जाता है वह रोग नहीं, वह तो शरीर का धर्म और स्वास्थ्य तथा जीवन का लक्षण है। पर मनुष्य इस वास्तविक तथ्य को समझकर शरीर के इस सामयिक परिवर्तन और गति को देखकर इसे रोग मानकर भयभीत हो जाता है। यदि रोग को रोग न मानकर शरीर का धर्म तथा इसे एक प्रकार का सामयिक परिवर्तन मान लिया जाय, तो रोग के भय से जो हानि होती है वह नहीं होगी। आप अपने मकान में सामयिक परिवर्तन करते हैं। उदाहरण के लिए, घर की सफाई, गंदी-नालियों का साफ करना व अन्य टूटी-फूटी दीवाल आदि की मरम्मत कराना। ठीक इसी प्रकार प्रकृति भी स्वाभाविक रूप में समय आने पर कभी-कभी शरीर की सफाई आरंभ करती है। वह शरीर से विजातीय दूषित विकारों को बाहर निकालने लगती है। हम प्रकृति के इसी सफाई के कार्य को रोग कहते हैं। पर सच्चाई यह है कि यह रोग नहीं, किंतु शरीर की सफाई है। शरीर का एक प्राकृतिक धर्म है, जो समय आने पर आवश्यक होता है। जिस व्यक्ति के शरीर में जितनी अधिक जीवनी शक्ति होती है, उसके शरीर में प्रकृति की ओर से सफाई का उतना ही अच्छा प्रबंध होता है। हमारे शरीर में यह अवस्था तभी आती है, जब हमारा जीवन प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध चलता है। इसके फलस्वरूप रोग के रूप में हमें दंड मिलता है। यह दंड हमें भूल सुधार के लिए दिया जाता है। हमारी सहज प्रकृति हमें सदैव क्रियाशीलता तथा उचित आहार-विहार के लिए चेतावनी देती रहती है, लेकिन हम इंद्रिय लोलुपतावश उस चेतावनी की अवहेलना करके उसको ठीक न समझकर रोग शोक को आमंत्रित करते हैं। जिस प्रकार चुंबक की आंतरिक प्रभुता सुई के सिरे को सर्वदा उत्तर की ओर रखती है उसी प्रकार हमारे जीवन का आत्मरक्षक तत्व हमें सर्वदा स्वास्थ्य के पथ पर चलने की प्रेरणा देता रहता है। हम उस पर ध्यान, दें यह हमारी अपनी ही ना-समझी है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संसार में रोग और शोक केवल ईश्वर के नियमों को ठीक न समझने के ही कारण हैं। प्राकृतिक (स्वाभाविक) नियमों का उल्लंघन करने पर ही प्रकृति हमें रोग के कारागार में डालकर बंदी बना लेती है। रोगी मनुष्य प्रकृति का अपराधी है। प्रकृति ने जो हमें मनुष्य शरीर दिया है प्रकृति विरुद्ध चलकर उसका दुरुपयोग करने से हम प्रकृति माता के अपराधी होकर रोग के कारागार में कुछ दिन अपराध के अनुसार बंदी बना लिए जाते हैं। वास्तव में यह रोग शोक हमारी अज्ञानता के फल हैं। हमारे समस्त दुःख या रोगों का अस्तित्व अज्ञान पर ही निर्भर है। मनुष्य जब तक अहम्मन्यता के संसार में विचरण करता है तभी तक उसे बीमारियाँ और दुःख सताते हैं। यह हमारी इंद्रिय लोलुपता ही समस्त शारीरिक और मानसिक रोगों की जड़ है। मनुष्य की जीवन संबंधी गलत धारणाओं ने ही आज उसे इस स्थिति में ला दिया है कि वह रुग्ण है, दुखी है। मनुष्य का अज्ञान व भ्रम ही उसे दुःख दरिद्रता के दल-दल में फँसाये हुए है।

'रोग' जैसा कि अधिकांश लोगों की धारणा है, अभिशाप नहीं अपितु प्रकृति माता का शुभ आशीर्वाद है। शरीर में संचित दूषित विजातीय द्रव्य जो रोग का मूल कारण है, उसे शरीर से बाहर निकालने के लिए ही हमारी स्नेहमयी प्रकृति माता हमें रोगी बनाकर शरीर संचित मल को बाहर निकालती है। इस प्रकृति के सफाई कार्य से होने वाले कष्ट से हम भयभीत होकर रोग को अपना दुश्मन समझकर इससे बचाव के भाँति-भाँति के उपाय करते हैं। जीवन शक्ति जो अंदर की गंदगी को बाहर निकालती है, उसके कार्य में हम सहायता न करके उलटा उसके मार्ग में एक दवा रूपी रोड़ा अटका देते हैं। परिणामस्वरूप जीवनी शक्ति दवाइयों के सेवन से कमजोर पड़ जाती है, जिससे रोगों से मुकाबला करने व उसको शरीर से बाहर निकालने की शक्ति उसमें नहीं रहती।

आज हमारे अंदर दिनोंदिन स्वास्थ के संबंध में दिलचस्पी का अभाव, दूसरों पर निर्भर रहने की प्रकृति तथा ओषधियों में सरल विश्वास देखने को मिलता है। लेकिन हमें ओषधियों के अंतिम परिणाम का जरा भी ज्ञान नहीं। आज संसार में जितने भी इलाज के तरीके प्रचलित हैं अर्थात् जिन-जिन तरीकों से इलाज होता है उनमें से कोई भी डॉक्टर या वैद्य संचित मलों की शुद्धि पर भली-भाँति ध्यान नहीं देता, और न रोगों कारणों पर इनका ध्यान जाता है, फलस्वरूप मलों की शुद्धि भली प्रकार नहीं हो पाती और न भविष्य में होने वाले रोगों की रोकथाम हो पाती है। आजकल के डॉक्टर तो मल निकासी के वेग से जो शरीर में कष्ट या पीड़ा होती है उसको समाप्त कर रोगियों को भ्रम में डाले हुए हैं। आजकल इस प्रकार के नशीले इंजैक्शन व गोलियाँ प्रचलित हैं कि डॉक्टर लोग उनको रोग से पीड़ित भाग में लगाकर या खिलाकर उस स्थान को सुन्न कर देते हैं, इस प्रकार रोग का ऊपरी इलाज करके रोगी को सांत्वना दे देते हैं कि तुम्हारा रोग ठीक हो गया। जब बीमारी से होने वाले कष्ट का निवारण हो जाता है, तो मरीज भी समझता है कि मैं ठीक हो गया। लेकिन भविष्य में वही दवा से दबाया हुआ रोग भीतर ही भीतर शरीर में अपनी शक्ति बढ़ाकर एक भयंकर रोग के रूप में पैदा होकर रोगी के लिए प्राणघातक बन जाता है, क्योंकि जब तक शरीर में विजातीय पदार्थ (मल) रहेगा तब तक जीवनी शक्ति (प्रकृति) उसे निकाले बिना चुपचाप नहीं बैठ सकती।

आज संसार में डॉक्टरों और वैद्यों की बाढ़ सी आई हुई है लेकिन इनके इतनी अधिक संख्या में होते हुये भी देश में रोग और रोगियों की संख्या नित्य प्रति बढ़ती ही ज़ा रही है। **''मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की''** मनुष्य जैसे-जैसे रोग शोकों से बचने के लिए उपाय करता जा रहा है ये कम या खत्म होने के बजाय बढ़ते ही जाते हैं। रहीम जी के कथनानुसार–

''रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छोड़े साथ।
खग, मृग बसिहि अरोग बन, हरि अनाथ के साथ।।''

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हम आधि-व्याधियों की रोकथाम के लिए बहुत से उपाय करते पाये जाते हैं लेकिन व्याधियाँ हमारा पीछा नहीं छोड़तीं खग, मृग, पशु पक्षी प्रकृति के अधीन होकर निरोगी जीवन व्यतीत करते हैं, क्योंकि उन अनाथों के नाथ ईश्वर हैं। हम उसी विश्व प्रकृति को भूलकर रोगी बनते जा रहे हें। हम जैसे-जैसे प्रकृति से अलग होते जा रहे हैं वैसे ही वैसे रोग, शोक हमें घेरते जा रहे हैं। इस प्रकार की स्थिति को देखते हुए यह बात, अवश्य विचारणीय है कि क्या ऐसी विषम परिस्थिति में कोई और भी आरोग्य तथा सुख का साधन है, जिसके द्वारा हम रोग रहित होकर पूर्णतः सुख और शांति से अपना जीवन व्यतीत करते हुए आत्मिक और शारीरिक उन्नति कर सकें। हम आज यह मान बैठे हैं कि बिना दवा के रोग नहीं जाता या दवा के अतिरिक्त रोग निवारण का और कोई उपाय ही नहीं है। यही हमारी भूल है। इस भूल के कारण हमने जितना दुःख उठाया है तथा उठा रहे हैं उतना अन्य कारणों से नहीं। आपको एक ऐसी महान् विद्या से जानकारी करायें, जो शरीर और मन के स्वास्थ्य को कायम रखती हुई आपको मानव जीवन के लक्ष्य, आत्मसाक्षात्कार तक पहुँचावे। वह सभी विद्याओं की जननी सर्वश्रेष्ठ ''योग विद्या'' है। यह विद्या हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों की शरीर उत्थान तथा आत्मउत्थान के लिए अनुपम देन है।

प्राचीन भारत इस योग बल के ही कारण ज्ञान, विज्ञान में सर्वश्रेष्ठ, जगत् गुरु एवं सुख संपन्न देश माना जाता था। तुमने योग विद्या के द्वारा ही आध्यात्मिक मानसिक तथा शारीरिक उन्नति का उज्ज्वल ज्वलंत उदाहरण संसार के सामने उपस्थित किया था। आज तुम उसी भारत माँ की कोख में जन्म लेकर योग विद्या को भुलाकर सब प्रकार से क्षीण होकर आधुनिक रूप में परिणित हो गये हो, आज तुम इसी कारण सब प्रकार के रोग शोकों से ग्रसित हो पतन की पराकाष्ठा तक पहुँच चुके हो। अपनी प्रतिभा त्यागकर तुम विषय भोगों के जाल में फँस, रोगी, शोकी बनकर ज्योतिर्मय जीवन को अंधकारमय बना करके मानवता के पथ से भ्रष्ट होते जा रहे हो। यदि तुम पुनः अपने उच्च पद को तथा सुख शांति के जीवन को प्राप्त करना चाहते हो, तो इस भूली हुई विद्या को अपनाकर अपने जीवन को कल्याणमय बनाओ, इस पर विश्वास जमाकर इसे अपने घरों, विद्यालयों तथा समाज में स्थान दो, तभी तुम अपनी खोई हुई आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक उन्नति कर सकोगे।

स्वर चिकित्सा

श्वास चिकित्सा अथवा स्वर चिकित्सा एक ऐसा निरापद रोग निवारक उपाय है कि कोई भी निर्मल चित्त भक्त, जिसे अपने इष्ट पर विश्वास हो, उपयोग में ला सकता है। ऐसे स्वर योगी को कुछ विशेष दैवी गुण अपने अंदर विकसित करने आवश्यक हैं जिससे 'स्वर' का प्रभाव रोगी पर शीघ्र हो।

को लाभ होने लगे, तो अपने अंदर यह अभिमान मत आने दो कि तुम एक 'सिद्ध' हो गये हो अभिमान के दबाव से सिद्धि खिसकने लगती है और प्रेम तथा सेवा के भाव से सिद्धि विकसित होती है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक सीमा होती है, उससे आगे वह कुछ नहीं कर सकता अतः कभी शेखी मारने की कोशिश न करो चूँकि स्वस्थ होना रोगी की अपनी जीवनी शक्ति पर निर्भर होता है, तुम तो उसे केवल एक सहायता देते हो, रोग को निकाल फेकंने के लिए उत्साहित करते हो। एक दम हतवीर्य और मरणासन्न व्यक्ति को कोई ओषिधि लाभ नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दे पाती और कोई कोई बीमार मामूली ओषधि से ही स्वस्थ होने लग जाता है। यह रोगी का विश्वास है जो उसे चंगा करता है। अतः अपने को "सिद्ध" या "महात्मा" मान लेने की कभी भूल मत करना। अपने का जनता जनार्दन का एक सेवक समझना। किसी रोगी का किसी भी प्रकार का शोषण त्याज्य है। प्रत्येक प्रकार की चिकित्सा पद्धति रोगी की जीवनी शक्ति को रोग निकाल फेंकने में सहायता करती है और वही तुम कर रहे हो। स्वरचिकित्सा शरीरशास्त्र और मानवशास्त्र के गूढ़ सिद्धांतों पर निर्मित शास्त्र है इसे जादू टोना या दैवी चमत्कार समझ लेना उचित नहीं है। हाँ ! यह अवश्य देखा गया है कि स्वरविज्ञान के आधार पर उपचार रत रोगी अपेक्षाकृत शीघ्र स्वस्थ हो जाते हैं।

स्वर चिकित्सक को अपने लिए प्राणशक्ति का उपार्जन करना भी आवश्यक है अतः प्राणायाम की साधना अवश्य करनी चाहिए। यदि स्वर चिकित्सक की अपनी प्राणशक्ति कमजोर है, तो उसके स्वर का प्रभाव रोगी पर बहुत कम होगा। यदि प्राणशक्ति रोगी के विषाणुओं को न रोक पायेगी तो चिकित्सक स्वयं रोगी हो जायेगा।

पुस्तक में विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ और विधियाँ लिखी गई हैं, उनमें सब क्रियाएँ सबके लिए एक समान प्रभाव देने वाली नहीं होंगी। सभी जीवित प्राणी एक समान नहीं होते। जीवित प्राणियों की तो बात अलग है जड़ पदार्थों के कण भी आपस में एक समान नहीं होते चूँकि प्रत्येक अणु अपने रूप में उसी प्रकार समष्टि में विकसित होता है जैसे अन्य जीव कोई पदार्थ एक व्यक्ति को सुखकर होता है, तो दूसरे को कष्टकारी। प्राणशक्ति भी व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न परिमाण में पाई जाती है। किसी के मार्जन प्रभावशाली होते हैं, तो किसी की श्वास अधिक प्रभावशाली होती है। यह सब धीरे-धीरे अनुभव से ज्ञात होने वाली बातें हैं। किसी के परामर्श का अंधानुकरण न करो, परंतु दूसरे के अनुभव के आधार पर स्वयं अनुभव और परीक्षण करके अपने निर्णय पर स्वयं पहुँचो।

निर्बलता आधी बीमारी समझी जाती है। निर्बलता भी दो प्रकार की होती है, एक तन की और एक मन की। मन को सशक्त बनाये रखना आवश्यक है। एक बार एक साधू के पीछे शैतान लड़का लग गया और जिद करने लगा कि मुझे वशीकरण मंत्र सिखा दो। साधू ने उसके मन की थाह ली, तो पता लगा कि यह सीधे सच्चे लोगों और भोली लड़कियों को ही तंग करेगा। उन्होंने उसका मन कच्चा करने की एक तरकीब निकाली और बोले कि मंत्र तो यह है, परंतु जाप के समय बंदर का ध्यान नहीं आना चाहिए। लड़का खुश हो गया, बोला बंदर से तो कोई संबंध ही नहीं, आप चिंता मत करो मैं जाप पूरे कर लूँगा। अब जब लड़का जाप करने नहा धोकर अगरबत्ती जलाकर बैठा तो ध्यान आया कि बंदर का ध्यान नहीं करना। बस उसको ध्यान में बंदर आना प्रारंभ हो गया। लड़का परेशान हो गया पर बंदर नहीं छूटा। बार-बार मन ताजा करे फिर ध्यान पर बैठे और मन में बंदर आने लगे। वह साधू के पास पहुँचा। बोला महाराज कभी जीवन में बंदर का ख्याल नहीं आया अब बंदर पीछा नहीं छोड़ रहा। साधू बोला, "अभी तुम्हारे मन में चंचलता है, बंदर कूद है, इसीलिए अभी वशीकरण मत सीखो। बाद में सीखना।" तो मन को सशक्त बनाये रखना है। यह मत सोचो कि इस क्रिया से रोगी ठीक होगा या नहीं होगा। दृढ़ होकर अपना कार्य करो। रोगी अवश्य ठीक होगा प्रतिदिन अपनी श्वास साधना करो भोजन करते समय जल या दूध आदि पेय पीते समय धीरे-धीरे आनंद लेते हुए ग्रहण करो। शीघ्रता में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गटगट कर पानी आदि पीना इतना लाभदायक नहीं होता। किसी निर्जन स्थान में जाकर लज्जानिवारक वस्त्रों के अलावा सभी वस्त्र उतारकर भूमि पर लेट जायें और आकाश की ओर देखते हुए खूब छककर श्वास खींचे और अनुभव करें कि आकाश से प्राण तत्व श्वास के साथ संपूर्ण शरीर में व्याप्त होकर शरीर के प्रत्येक कोष को चैतन्य बना रहा है। उसके पश्चात् शरीर को ढीला छोड़कर निर्जीव से पड़ जाओ। 10-15 मिनट तक पड़े रहने के बाद उठो और शरीर के प्रत्येक अंग पर अपना हाथ तेजी से घुमाते जाओ जैसे सूखी मालिश करते हैं। उसके पश्चात् खूब जोर से हँसना प्रारंभ करो और जितना जोर से हँस सकते हो आवाज के साथ हँसो।

उपवास

हमारे शरीर में जो क्रियाएँ होती रहती हैं उनमें शरीर के निरुपयोगी और हानिकारक द्रव्यों के बाहर निकाल देने की एक महत्वपूर्ण क्रिया प्रत्येक क्षण जारी रहती है। इस शरीर यंत्र को व्यवस्थित रूप से चलाने की जिम्मेदारी विशेषकर रक्त पर है। रक्त के लाल कण नए-नए कोषों की रचना करते रहते हैं और श्वेत कण शरीर के हानिकारक या निरुपयोगी अंशको बाहर निकालने का काम करते रहते हैं शरीर में अधिक परिमाण में संचित हुए किसी हानिकारक पदार्थ को बाहर फेंकने की जोरदार कोशिश को ही आमतौर से लोग बीमारी कहते हैं। बीमारी दरअसल शरीर के लिए हानिकारक नहीं होती बल्कि अंदर के कूड़े को बाहर निकालने का जो प्रयत्न है, उसी का वह दिग्दर्शन मात्र है। बीमारी का यह असली स्वरूप समझ लेना बहुत जरूरी है और यह वास्तविक स्वरूप ध्यान में आने के बाद आरोग्य प्राप्ति के लिए हमें क्या करना चाहिए इसकी सही-सही कल्पना हो जायेगी। कोई भी चिकित्सा-पद्धति हो, उसमें शरीर स्वभावतः निरोगी होने का प्रयत्न करता है और दवा या इलाज केवल उसकी सहायता करते हैं, ऐसा माना जाता है। अब कितनी और किस हद तक प्रकृति को सहायता देनी चाहिए इस संबंध में जो भेद है वही भिन्न-भिन्न चिकित्सा पद्धतियों का भेद है।

बीमारी से मुक्त होने का शरीर सदा प्रयत्न करता है; और यह काम शरीर के रक्त द्वारा होता है इसको ध्यान में रखकर ही इलाज करना चाहिए और इस दृष्टि से उपवास का बड़ा महत्व है। जो भोजन किया जाता है, उसमें से पोषक भाग लेकर रक्त की शक्ल में बदल देने का काम भी रक्त को ही करना होता है। इस काम से रक्त को विश्रांति आराम देना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है और इस कारण ही शास्त्रीय दृष्टि से किया हुआ उपवास आरोग्य-दायक होता है।

उपवास के माने आरोग्य के लिए किया हुआ शास्त्रीय उपवास भोजन न करना है। जिसे लंबा उपवास करना हो उसकी नाड़ी और हृदय की जाँच करने के बाद उपवास शुरु करना अच्छा है। उपवास में शरीर का निर्वाह शरीर में संचित शक्ति से होता है। इस निर्वाह के लिए एक तरह की उष्णता की आवश्यकता होती है। उचित उष्णता और शक्ति कायम रहना आरोग्य का लक्षण है। शारीरिक व्यापार के लिए पानी की अत्यंत आवश्यकता है इसलिए उपवास करने वाले को नियमित रूप से दिन भर में कम से कम दो-तीन सेर पानी पीना ही चाहिए। खाना बंद कर देने से पानी की जरूरत भी कम-सी जान पड़ती है, पर न पीना ठीक नहीं है। शरीर को भरपूर और नियमित पानी मिलना ही चाहिए, नहीं तो शरीर में से पानी का स्टाक खर्च होने से शरीर की उष्णता बढ़ जायेगी और आँतें सूख जायेंगी। पानी न पीने से शरीर को नुकसान पहुँचने के उदाहरण जैन उपासकों में पाये जाते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भरपूर पानी पीना जिस प्रकार जरूरी है वैसे ही नियमित मल विसर्जन होना भी जरूरी है। साधारणतः जो पखाना होता है उसमें पेट में गये हुए अन्न के दबाव का उपयोग होता है, पर उपवास करने वाले आदमी के पेट में अन्न न होने की वजह से जितना दबाव पड़ना चाहिए उतना नहीं पड़ता और इसकी वजह से पखाना नहीं होता। पर पखाना न लाने के माने हैं तंदुरुस्ती के बिगाड़ने में मदद करना। अतः लंघन करने वाले को एनिमा लेकर मल निकाल डालना चाहिए। बहुतों का ख्याल है कि पेट में जब नया अन्न गया ही नहीं तो मल कहाँ से आयेगा ? लेकिन यह ख्याल गलत है बहुत बार मल बड़ी आँत के किनारे चिपका रहता है और भोजन न करने पर भी आँतों में जो क्रिया होती है, उसके परिमाण स्वरूप पैदा होने वाले कचरे के निकालने की भी जरूरत है।

उपवास जारी रहने पर आदत के मुताबिक खाने-पीने के वक्त पर भूख लगी-सी जान पड़ती है और उस वक्त शरीर ढीला-सा हुआ जान पड़ता है और कभी-कभी आस-पास वाले कहने लगते हैं 'अब कुछ खाना जरूरी है' यह सुनकर भूख का ख्याल आने से भी कमजोरी-सी जान पड़ती है। पर यह सच्ची भूख नहीं है यह आदत से पैदा हुई झूठी भूख है यह ध्यान में रखकर उपवास को चलाना चाहिए।

खाने-पीने की आदत हमारे रग-रग में घुसी हुई होने की वजह से उपवास के पहले दिन उपवास करने वाले को कुछ खोया-खोया-सा लगता है, लेकिन समय निकल जाने पर यह भी ख्याल नहीं रहता कि हमने खाया है या नहीं।

उपवास कितने दिन का करना चाहिए, यह रोगी की प्रकृति और आवश्यकता पर अबलंबित है। साधारणतः किसी को भी पाँच-सात दिन का उपवास करने में हर्ज नहीं है उपवास शुरु करने के बाद साधारणतः तीसरे दिन और कभी-कभी चौथे दिन थकावट-सी आती है, उबकाई-सी आती जान पड़ती है। इसका कारण यह है कि पित्ताशय एवं अंतड़ियों में आने वाला पित्त अन्न का संयोग न होने के कारण काम में नहीं लगता और शरीर को यथेष्ट पानी न मिलने तथा शरीर के सब अवयवों की एकदम शुद्धि शुरु हो जाने से भी उबकाई आती है। उबकाई से परेशान न होकर उसके कारण दूर करने चाहिए। यदि रोगी काफी पानी पीता रहे और एनिमा लेता रहे तो उबकाई नहीं आवेगी, आवेगी तो एनिमा और पानी के प्रयोग से जरूर कम हो जायेगी। उबकाई में रोगी को खट्टा नीबू चूसने को दिया जाय। इससे भी फायदा होगा तीन-चार दिन के बाद तो पित्ताशय पित्त बाहर निकालता ही नहीं और उबकाई अपने आप चली जाती है।

उपवास में भी रोगी अपने साधारण काम नियमित रूप से कर सकता है। शरीर हलका जान पड़ता है और उत्साह बना रहता है। साधारणतः सात से दस दिन का उपवास करके भी रोज के नियमित काम मजे में चलाने का मुझे स्वयं अनुभव है। उपवास करने वाला आदमी भोजन न करने के कारण खाट से सट जाता है यह समझना गलता है उपवास में पानी और एनिमा के बारे में जितनी सावधानी रखने की जरूरत है उतनी ही सावधानी उपवास तोड़ते समय रखनी चाहिए। उपवास से अन्न ग्रहण करने की और पचाने की अग्नि कम हो जाती है और आँतों को खाली रहने की आदत पड़ जाती है, उपवास जितना लंबा होता है उतनी ही आदत जोरदार हो जाती है इसलिए तोड़ते समय पानी के समान तरल पदार्थ लेकर तोड़ना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फायदेमंद होता है। आँतों की जल ग्रहण करने की शक्ति उपवास काल में व्यवस्थित रहने की वजह से तरल भोजन लेने पर आँतों को उसका भार नहीं प्रतीत होता। पर भोजन का तरल होना ही काफी नहीं है, पचने में भी हलका होना जरूरी है। इस ख्याल से फलों का रस या तरकारियों का सूप बहुत फायदेमंद है। उपवासी के लिए पका हुआ भोजन एक बारगी न लेना अच्छा है। यह पाँच दिन या इससे ज्यादा के लंघन के बारे में कहा जा रहा है।

उपवास चिकित्सा कितनी प्रभावशाली है यह साधारण लोगों को मालूम नहीं है। वे समझते हैं डॉक्टर अथवा वैद्यों की दवा के बिना बीमारी कैसे दूर होगी ? पर यह ख्याल शारीरिक कार्य पद्धति के अज्ञान या ओषधियों के प्रभाव के बारे में फैली हुई भ्रमात्मक कल्पना के कारण पैदा होता है। उपवास से शरीर का रक्त बिलकुल शुद्ध हो जाता है इसलिए जिन-जिन रोगों में रक्त शुद्धि की आवश्यकता मानी जाती है उन सब में उपवास कारगर साबित होता है। पिछले 16-17 वर्षों में हमने अनेक प्रकार के रोगियों पर इसे आजमाया और लाभदायक पाया है। आध्यात्मक के क्षेत्र में तो उपवास का विशेष महत्व है। स्वरोदय शास्त्र की सिद्धि में उपवास का अपना महत्व है। तत्वों की परीक्षा यदि उपवास की स्थिति में षण्मुखी मुद्रा लगाकर की जाय, तो स्पष्ट दर्शन होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

11 स्वर शक्ति और रोग उपचार

मंत्रित श्वास

मनुष्य के प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ उसके विद्युत् प्रवाह से प्रभावित हो जाती हैं। किसी महात्मा ने किसी विशेष स्थान पर पूजा या तपस्या की होती है उसे सामान्यतः तीर्थ कहा जाता है और यह मान्यता की जाती है कि उस स्थान पर उस महात्मा की पूजा तपस्या अथवा विद्युत् लहरों का प्रभाव है। पहने हुए कपड़े, अन्न जल कागज पत्र आदि सभी प्रयोक्ता के औरा से प्रभावित हो जाते हैं। सूत, ऊन तथा रेशम आदि ऐसी वस्तुएँ जिन पर विद्युन्मय औरा का प्रभाव नहीं होता इसीलिए उन्हें अपेक्षाकृत अधिक पवित्र माना जाता है। 'औरा' का प्रभाव सुहबत का असर भी प्रकट करता है। ऐसे ही सिद्धांतों के आधार पर कुछ लोग वस्तुएँ मंत्रित करके दिया करते हैं।

वस्तुएँ मंत्रित करके देते समय 'स्वर' का विशेष ध्यान रखा जाता है। उग्र कार्यों के लिए दाहिने स्वर के समय वस्तुएँ मंत्रित करें और सौम्य कर्मों के लिए बायाँ स्वर अभीष्ट रहता है।

कुछ लोग फलालेन आदि मंत्रित करके पीड़ित अंग पर बाँधने के लिए देते हैं। सूती फलालेन में 24 घंटे तक प्रभाव रहता है और ऊनी फलालेन दो सप्ताह तक प्रयोग की जाती है। सूती की अपेक्षा ऊनी फलालेन देर में प्रभावित होती है। फलालेन के टुकड़े पर ठंडा या गर्म स्वर जैसी आवश्यकता हो प्रयोग में लायें। यदि फलालेन पेट और वक्ष स्थल को ढक ले तो 90% रोगों का पलायन करा सकते हैं। फलालेन मंत्रित करने से पूर्व आधा घंटा धूप में भली प्रकार सुखा लें। अन्यथा आग पर थोड़ी दूरी से गर्म कर लें जिससे वह अब तक के प्रभावित विचारों से मुक्त हो जाये। श्वास चिकित्सा करने वालों को ऐसी फलालेन आदि पहले से ही तैयार करके रख लेनी चाहिए।

मंत्रित श्वास का उपयोग भी ऐसे रोगियों के लिए किया जाता है, जो अपने को किसी दूसरे के द्वारा प्रभावित हुआ समझते हैं। उचित मंत्र पढ़कर रोगी के मस्तष्कि, वक्ष के मध्य, ह्रदय और कलेजे पर फूँक मारनी चाहिए। फूँक मारने के लिए श्वास दाहिने नथुने से भरे और मुख से फूँक मारें।

रोग निवारक क्रियाएँ

उष्ण श्वास—रोगी के पीड़ित अंग पर एक हलका साफ कपड़ा या रूमाल फैला दें फिर अपने दाहिने स्वर से श्वास भरें और मुख से उस कपड़े पर फूँक मारें। फूँकते समय होठों को शीटी बजाने जैसी अवस्था में कर लें और लगभग छः इंच की दूरी से धीरे-धीरे फूँक मारें।

शीतल श्वास—श्वास को शीतल बनाने के लिए जीभ को उलटी करके तालू से सटा दिया जाता है। अतः शीतल श्वास फूँकने के लिए पीड़ित अंग पर कपड़ा डालकर बायें स्वर से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्वास भरें और जीभ के अग्र भार को पलट कर तालू से सटा कर होठों को सीटी बजाने की अवस्था में लाकर धीरे-धीरे फूँक मारें।

कई बार ऐसा होता है कि चिकित्सक रोगी के पास नहीं जा पाता या रोगी चिकित्सक के पास नहीं आ पाता ऐसी स्थिति में उष्ण अथवा शीतल श्वास क्रिया वाली पद्धति नहीं अपनाई जा सकती। ऐसी स्थिति में रोगी को जल अथवा तेल आदि को श्वास फूँक कर दे दिया जाता है।

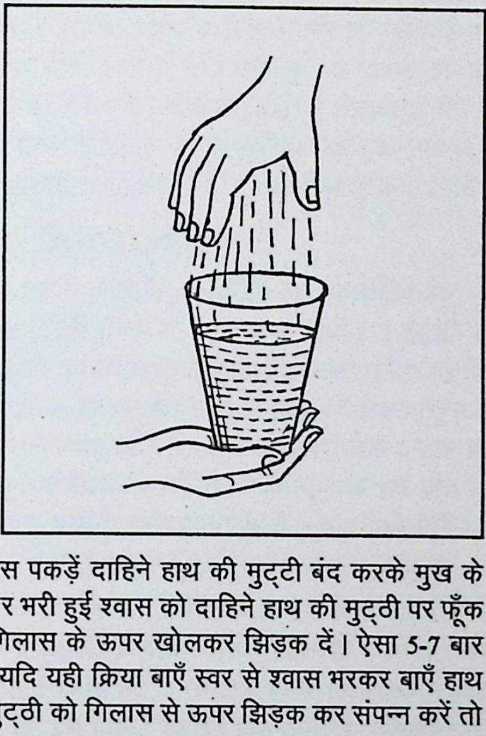

जल फूँकने के लिए बाएँ हाथ की हथेली पर एक काँच का गिलास शुद्ध जल से भरकर रख लें और उँगलियों से पकड़ लें। दाहिने हाथ की उँगलियों को गिलास पर एक इंच ऊपर रखकर पाँच-सात बार झिड़क दें जैसे कि उँगलियों तक आई प्राणशक्ति को नीचे गिलास के जल में गिरा रहे हों।

दूसरी विधि में शुद्ध जल भरा काँच का गिलास सीधे हाथ में पकड़ें। दाहिने स्वर से श्वास भरें और गिलास से छः इंच की दूरी पर मुँह रखकर उष्ण या शीतल श्वास पीछे बताये अनुसार सीटी बजाने के समान होंठ बना कर जल में फूँक मारें।

तीसरी विधि में बाएँ हाथ में गिलास पकड़ें दाहिने हाथ की मुट्टी बंद करके मुख के सामने लायें। दाहिने स्वर से श्वास भरें और भरी हुई श्वास को दाहिने हाथ की मुट्ठी पर फूँक मारें फिर फूँक मारी हुई बंद मुट्ठी को गिलास के ऊपर खोलकर झिड़क दें। ऐसा 5-7 बार करें। जल उष्ण स्वभाव का बन जायेगा। यदि यही क्रिया बाएँ स्वर से श्वास भरकर बाएँ हाथ की मुट्ठी पर फूँक मारकर बाएँ हाथ की मुट्ठी को गिलास से ऊपर झिड़क कर संपन्न करें तो शीतल स्वभाव का जल बन जायेगा।

ऐसे प्राणशक्ति युक्त जल को हाथ से न छुऐं, धातु से न छुऐं, 48 घंटे से अधिक देर का रखा जल उपयोग में न लें अन्यथा वह बेकार हो जायेगा। कुछ लोग गिलास या शीशी के जल में नली डालकर फूँक मारते हैं वह चिकित्सकीय दृष्टिकोण से उचित नहीं है चूँकि फूँकने वाले के मुख की वायु सीधी जल में जाने से उसके जीवाणु (बैक्टीरिया) अथवा थूक लार आदि भी चले जाना संभव होता है।

चौथी विधि में पीड़ित भाग पर रूमाल बिछाकर ऊपर से फूँक मारते हैं और भावना करते हैं कि रोगी शीघ्र लाभ प्राप्त करे। ऐसा करने से भी निर्मल स्वच्छ प्राणशक्ति रुग्ण भाग पर अपनी क्रिया करके उसे स्वस्थ बनाती है।

पाँचवी विधि में पीड़ित अंग से मुख को लगभग एक फुट दूर रखकर फूँक मारी जाती है। फूँक मारते समय दोनों हाथों से मुँह के आगे भोंपू जैसा बना लेते हैं, जैसा कि किसी को आवाज देते समय कभी-कभी कर लेते हैं। ऐसा करने से रोगी शीघ्र ही शीतलता अनुभव करने लगता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छठवीं विधि में रुग्ण अंग के बिलकुल पास मुख रखकर गर्म-गर्म फूँक मारी जाती है, परंतु श्वास लेते समय नाक को कम से कम छः इंच दूर रखना चाहिए और श्वास छोड़ते समय रुग्ण अंग के पास पूरा मुख खोलकर श्वास निकाल देनी चाहिए।

तैल मंत्रण—कभी-कभी रोगी को तेल मंत्रित करके देने की भी आवश्यकता होती है। सामान्यतः तिल का तेल प्रयोग में लिया जाता है, परंतु नारियल अथवा सरसों आदि के तेल का भी मालिश में उपयोग किया जाता है और उन्हें मंत्रित करके अपेक्षाकृत अधिक सक्षम बनाया जाता है। सिर पर लगाने के लिए ब्राह्मी, आँवला अथवा घृतकुमारी आदि का तेल भी प्रयोग किया जा सकता है। यूरोपीय देशों में प्राण चिकित्सक ऐसे तेल में लार मिलाकर प्रयोग में लाने की बात करते हैं चूँकि उनके अनुसार तेल इतना गाढ़ा द्रव्य है कि फूँक मारने से काम नहीं करत्ता, परंतु डा० ल्यूविस का मानना है कि किसी नली को तेल में डालकर फूँक मारें और दस मिनट तक बुलबुले उठाते रहें। ऐसा प्राण शक्तियुक्त तेल अवश्य लाभ देता है।

श्वास प्रभावी बनाना

स्व-चिकित्सा—स्व-चिकित्सा की आवश्यकता ऐसे समय में पड़ती है जब प्रयोगकर्ता स्वयं पीड़ित हो अथवा रोगी स्वयं ही अपनी चिकित्सा करना चाहे। ऐसे में शरीर को ढीला करके चित्त लेट जाओ और अपनी संपूर्ण चेतना पीड़ित अंग पर ले आओ। गहरी श्वास लो और अनुभव करो कि प्राण वायु पीड़ित अंग पर अपनी प्राण ऊर्जा दे रही है और श्वास छोड़ते समय भावना करो कि पीड़ा श्वास के साथ बाहर जा रही है। साथ ही पीड़ित भाग पर अपना सीधा हाथ बार-बार घुमाते जाओ, जिससे ढीले पड़े हुए कोश भी सूखी मालिश द्वारा जाग्रत होकर निर्बलता त्याग सकें और आप शीघ्र ही पीड़ा मुक्त हो सकें।

अपनी श्वास को प्रभावी बनाये रखने के लिए जहाँ तक हो सके चौबीसों घंटे श्वास के आने जाने पर ध्यान रखे रहें, जिससे श्वास की लय बँधे। लययुक्त श्वास ही प्रभावपूर्ण होती है। दूसरी साधना है भस्त्रिका श्वास अर्थात् दोनों नथुनों से तीव्रता से श्वास अंदर खींचना और तीव्रता से श्वास को बाहर फेंक देना। यह क्रिया 5 से 10 मिनट तक करके शरीर को पूर्णतः ढीला छोड़कर 10 मिनट तक बैठे रहें अथवा लेटे रहें। भस्त्रिका के समय भी श्वास के बाहर आने और अंदर जाने पर ध्यान रखें।

स्वर और मार्जन

यूँ तो स्वर चिकित्सा के लिए बहुत-सी विधियों का उपयोग किया जाता है जिनमें मार्जन, श्वासोच्छ्वास, स्पर्श, कंपन, वस्तुएँ मंत्रित करना, मनश्चिकित्सा आदि प्रमुख हैं। मार्जन भी अवस्थानुसार कई प्रकार के हैं जैसे—स्पर्श मार्जन, तिर्यक मार्जन, बेधक मार्जन, वृत्त मार्जन, प्रगाढ़ स्पर्श मार्जन, अँगुलि प्रसारण मार्जन, थपकी मार्जन, संपूर्ण मार्जन आदि। श्वासोच्छ्वास में भी उष्ण, शीतल, अमृतश्वास आदि का उपयोग होता है स्पर्श क्रिया लगभग दस प्रकार से की जाती हैं। कंपन देने के लिए भी विभिन्न विधियों का प्रचलन है और वस्तुएँ मंत्रित करके रोगी को देने के लिए भी स्वरों का समुचित उपयोग किया जाता है। सामान्यतः कठोरपन, शोथ के लिए श्वासोच्छ्वास, गाँठों के लिए स्पर्श, ऐंठन के लिए कंपन, सर्दी के लिए मालिश और गर्मी के लिए मार्जन का प्रयोग किया जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मार्जन (Pass)

रोग सदैव बाहर से शरीर के अंदर की ओर गति करता है अथवा नीचे से ऊपर की ओर चलता है। जब रोग अच्छा होने लगता है, तो रोग की गति अंदर से बाहर की ओर तथा ऊपर से नीचे की ओर हो जाती है। डाक्टर का कार्य रोगी की जीवनी शक्ति की सहायता करना है, जिससे वह रोग को जड़ से निकाल सकें। यह समझना भूल है कि कोई ओषधि रोग को निकाल रही है ओषधि तो केवल द्वार खोलती है, चोर को धक्के मारकर निकालने वाले तो आप हैं जिस आदमी की जीवनी शक्ति निर्बल हो जाती है उसे अच्छी से अच्छी ओषधि और ऊँचे से ऊँचा डाक्टर भी नहीं बचा पाता।

स्वर साधना व्यक्ति में एक प्रकार की विद्युत् उत्पन्न करती है। 'विद्युत्' क्या है केवल इलेक्ट्रोंस की गति। यदि इलेक्ट्रोन गति न करें, तो कोई धारा प्रवाह नहीं हो। करेंट बहना बंद हो जाय। एक विशेष व्यवस्था में श्वास की धारा प्रवाहित करना ही स्वरविज्ञान का कार्य है, जो चुंबक के समान बल उत्पन्न कर देती है। चुंबक में सच पूछो तो अपना कुछ भी नहीं है। किसी भी लोहे अथवा मेगनेटिक द्रव्य के कण एक व्यवस्थित दिशा में आ जायँ, तो वह चुंबक बन जाता है यदि उन्हें फिर अव्यवस्थित कर दिया जाय, तो चुंबकत्व समाप्त हो जाता है। बिजली की घंटी में यही होता है—एक क्षण के लिए विद्युत् चुंबक में करेंट बहती है, जो उसके कणों को व्यवस्थित करके उसे चुंबक बनाती है और दूसरे ही क्षण वह व्यवस्था भंग हो जाती है और चुंबकत्व समाप्त हो जाता है। स्वर शक्ति भी एक प्रकार की धारा शरीर में प्रवाहित कर देती है, जो सामान्य विद्युत् के समान धनात्मक तथा ऋणात्मक आवेशयुक्त होकर विकर्षण तथा आकर्षण की क्रिया करती है। धनात्मक आवेश विकर्षण के द्वारा फेंकने की क्रिया करता है और ऋणात्मक आवेश आकर्षण के द्वारा अपनी ओर खींचने का कार्य करता है। स्वर चिकित्सक रोग को खींचकर बाहर फेंकने के लिए आकर्षण का उपयोग करता है और जीवनी शक्ति को सहायता देने के लिए विकर्षण शक्ति का उपयोग करता है। आकर्षण शक्ति वाले मार्जन को डी मेस्मराइजिंग पास तथा विकर्षण शक्ति वाले मार्जन को मेस्मराइजिंग पास कहा जाता है।

डा. मेस्मर, जिनके नाम से मेस्मरिज्म नामक विद्या का प्रसार हुआ, का मानना है कि व्यक्ति की हथेली में विकर्षण शक्ति और हथेली के पृष्ठ भाग में आकर्षण शक्ति की प्रचुरता होती है। इसीलिए शक्ति प्रवेश कराने वाले 'प्रवर्तक-मार्जन' के लिए हथेली का प्रयोग किया जाता है और खींचने की शक्ति वाले 'निवर्तक-मार्जन' के लिए हथेली के पृष्ठ भाग का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार नीचे से ऊपर की ओर प्रवर्तक मार्जन का उपयोग होता है और ऊपर से नीचे की ओर निवर्तक मार्जन का उपयोग किया जाता है।

मार्जन करने के लिए चिकित्सक को अपना शरीर तैयार करना पड़ता है। उसे सर्वप्रथम हाथ धो पोंछकर अपनी भुजाएँ और हाथ एकदम ढीले छोड़कर लटका देने चाहिए फिर ढीले हाथों को धीरे-धीरे झूले के समान (पूरी भुजाओं के साथ-साथ) झुलायें। थोड़ी देर में उँगलियों के छोर झनझनाने लगेंगे। यदि उँगलियों के पोर झनझनाने में देर लग रही हो, तो भुजाओं को तेजी से झुलायें, परंतु ढीली अवस्था में ही। जैसे हाथी अपनी सूँड़ को झुलाता रहता है। जब हाथों में पर्याप्त गुदगुदी-सी होने लगे और उष्णता अनुभव होने लगे तो समझलें कि आप मार्जन कर सकते हैं। यदि दूसरे रोगी का मार्जन करना हो, तो हाथ भली प्रकार पुनः धो पोंछ कर दुबारा तैयारी करें और तब दूसरे रोगी पर मार्जन करें। मार्जन के लिए हाथ तैयार हो जाने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर अपनी मुट्टी बंद कर लें और केवल पास देते समय ही अपनी मुट्ठी खोलें। पास या मार्जन पूरा हो जाने पर पुनः मुट्ठी बंद कर लें और फिर दूसरा पास दें (उसी रोगी को)। मार्जन या पास पूरा होने पर प्रत्येक बार हाथ को ऐसे झाड़ दें जैसे गंदे पानी से भीगे हाथ को झटक देते हैं। आप जानते हैं विद्युत् प्रवाह सदैव छोरों से होता है और छोरों पर ही सबसे अधिक विद्युत् संचय होता है अतः हाथ की उँगलियों के नाखून कटे हुए साफ होना आवश्यक है। मार्जन के लिए **हाथ झुलाते समय जो स्वर चल रहा हो उसी से हाथ आगे की ओर जाते समय पूरक करें अर्थात् श्वास खींचे और हाथ पीछे की ओर जाते समय श्वास छोड़ें, जिससे श्वास और शरीर एक ताल में आकर प्राणधारा को व्यवस्थित रूप में प्रवाहित कर सकें।** मनोचिकित्सकों का मानना है कि मार्जन के समय जब उँगलियों से रोग को खींचा जाता है तो ईथरिक मैटर रोगी के शरीर से बाहर आता है यदि उसे झटका न जाय और बिना हाथ धोए चिकित्सक अपने शरीर से हाथ लगा ले या कुछ खा पी ले, तो वह रोग युक्त ईथरिक मेटर (आकाश तत्व) चिकित्सक को रोगी बना सकता है। अतः मार्जन पूरा होने के पश्चात् चिकित्सक को हाथ धोने में आलस नहीं करना चाहिए।

मार्जन की क्रिया करते समय उँगलियों को थोड़ा झुकाना पड़ता है जैसे कि किसी समतल स्थान में फैली चीजों को एक स्थान पर एकत्र करते समय उँगलियों को थोड़ा-सा झुका दिया जाता है। यदि रोग कठिन हो, अधिक पुराना हो या रोगी अधिक आयु का हो, तो सभी उँगलियाँ मिलाकर मार्जन करें इससे मार्जन शक्तिपूर्ण हो जाता है। यदि रोग सामान्य हो या रोगी हल्की प्रकृति का हो अथवा बच्चा हो, तो उँगलियों के मध्य थोड़ा खुला स्थान रखें इससे मार्जन की शक्ति मध्यम श्रेणी की हो जायगी। अँगूठा मोड़कर हथेली से सटाकर रखना ही उचित है। यदि दोनों हाथों की शक्ति एक साथ करके मार्जन अत्यंत प्रबल बनाना हो, तो दोनों अँगूठे एक के ऊपर दूसरा सटाकर रखें जायेंगे। सभी उँगलियाँ रोगी के शरीर से आधा इंच से दो इंच की दूरी पर रखी जायेंगी। जहाँ तक हो सके मार्जन करने वाले भाग पर कपड़ा नहीं होना चाहिए। गुप्तांग तथा खराब मौसम में अत्यधिक निर्बल रोगी को नंगा नहीं किया जा सकता ऐसे में हल्के वस्त्र से उन भागों को ढक दें, परंतु पेटी, धोती की गाँठ, बटन घुंडी आदि उचित नहीं है, न रेशमी या ऊनी वस्त्र उचित हैं।

पूरे शरीर पर मार्जन करने के लिए संपूर्ण मार्जन का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए रोगी को मेज या तख्त पर चित्त लिटा दें और फिर सिर से पैरों तक पूरे शरीर पर हाथों की उँगलियों से हथेली रोगी की ओर रखते हुए मार्जन करें। इसे लोंगिट्यूडिनल या लोन्ग पास भी कहा जाता है। यही क्रिया संपूर्ण मार्जन कहलाती है।

किसी लोहे की छड़ को चुंबक बनाने के लिए लोहे की छड़ को नीचे रखकर किसी छड़-चुम्बक का एक सिरा खड़ाकर लोहे की छड़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक स्पर्श कराते हुए ले जाते हैं और फिर दूसरे सिरे पर चुंबक उठाकर पहले सिरे पर पूर्ववत रखते हैं बार-बार ऐसा करने से लोहे की छड़ एक चुंबक बन जाती है। इसी प्रकार की क्रिया स्पर्श मार्जन में होती है अतः ऐसे मार्जन को 'मेगनेटिक फ्रिक्शन्स पास' बोलते हैं। इस विधि में चिकित्सक की उँगलियाँ रोगी के शरीर को स्पर्श करती हुई ऊपर से नीचे की ओर चलती हैं, शेष क्रिया वही रहती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

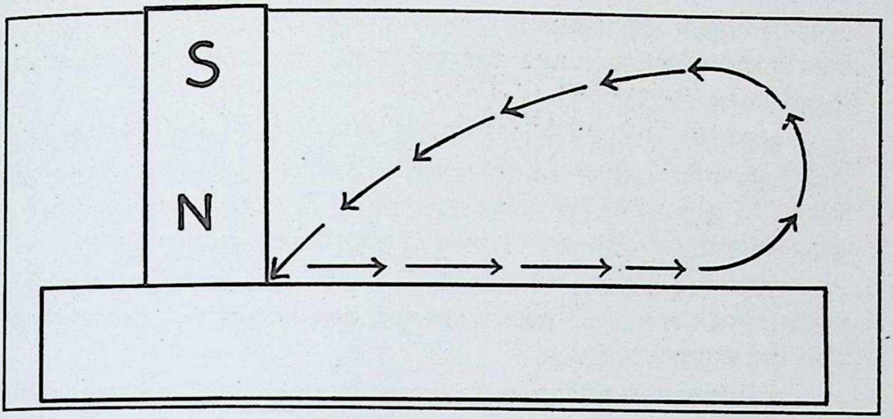

तिर्यक मार्जन अर्थात् तिरछे पास वक्ष पीठ और पेट पर दिये जाते हैं इस क्रिया विधि में रोगी के दाहिनी ओर से हथेली चलेगी और बाईं ओर को ले जायेंगे। रोगी की ओर हथेली वाला भाग रहेगा।

बेधक मार्जन अर्थात् छेद करने वाली मार्जन क्रिया से तात्पर्य उस मार्जन से है, जिसमें हाथ की तर्जनी उँगली या दो तीन अँगुलियाँ रोगी के शरीर से छः इंच की दूरी पर रखकर बर्मे के समान वृत्ताकार इस प्रकार घुमाई जाती हैं मानो तुम रोगी के शरीर में छेद करने जा रहे हो।

थपकी मार्जन की प्रक्रिया में एक विशेष स्थान को तर्जनी अथवा अधिक उँगलियों से धीरे-धीरे पीड़ित क्षेत्र पर चोट देते हैं। इससे पीड़ित क्षेत्र गर्म और लाल हो उठता है वहाँ के सैल्स उत्तेजित हो उठते हैं और चैतन्यता आती है।

निवर्तक मार्जन उलटा चलता है। रोगी की ओर हथेली की पीठ रहती है और हाथ भी प्रवर्तक मार्जनों की अपेक्षा उलटी दिशा में चलते हैं। प्रगाढ़ मार्जन में स्थान विशेष को उँगलियों के पोरों से आटे के समान गूँधते हैं। अँगुलि प्रसारण मार्जन के लिए दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियाँ फैलाकर उँगलियों के पोरों को पीड़ित भाग से छः इंच दूर रखकर कुछ मिनटों तक प्राण बल प्रेरित करो।

स्वर और स्पर्श चिकित्सा

स्पर्श चिकित्सा करने वाले डाक्टर भी स्वरविज्ञान के आधार पर अपने रोगियों से स्वर चलवाते देखे गये हैं, यहाँ तक कि डाक्टर स्वयं अपने स्वर को भी चिकित्सा करते समय नियंत्रित करते देखे गये हैं। स्पर्श चिकित्सा (Touch heeling) स्वयं में एक अत्यंत चमत्कारी चिकित्सा पद्धति है, परंतु इसमें स्वर के आधार पर जब प्राणशक्ति सम्मिलित कर दी जाती है तब अधिक प्रभावी बन जाती है। रेकी (Reiki) पद्धति में भी स्पर्श चिकित्सा की जाती है अर्थात् रोगी को स्पर्श करके ठीक किया जाता है, परंतु उसमें रोगी को दूर से भी उपचार देने का प्रावधान होता है। प्रबुद्ध लेखक अल्पिनी ने लिखा है कि मिश्र के पुरोहित लोग एक विशेष प्रकार की मालिश द्वारा बहुत से रोगों को ठीक कर देते थे। हिपोक्रेटीज नामक चिकित्सक अपनी मालिश के लिए बहुत प्रसिद्ध था। पैर दबाना, सिर दबाना, तलवे मालिश करना, शरीर में तैल मालिश कराना आदि सभी विधियाँ "स्पर्श चिकित्सा" के अंतर्गत आती हैं। मालिश के साथ यदि प्राणशक्ति का समन्वय स्वरविज्ञान के आधार पर हो जाय, तो मालिश करते समय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जोर-जोर से दबाने और मलने की आवश्यकता नहीं रहती। केवल हल्के हाथ से सुखकर और कंपन के साथ मालिश करना यथेष्ट रहता है। पेट दर्द के समय उदर पर हाथ घुमाना आदि क्रियाएँ कम पढ़े लोग भी जानते हैं।

दाहिने स्वर से श्वास भरते हुए दोनों हाथों की हथेली आपस में रगड़ें जिससे वे गर्म हो जायेंगी और गर्म-गर्म हथेली जब पीड़ित भाग पर रखी जायेंगी, तो रोगी को बहुत आराम मिलेगा। दो मिनट के अंतराल से यही क्रिया दुहाराते रहें। आँखें दुखने, सिर में दर्द होने अथवा कहीं हल्की चोट आदि लगने के समय यह उपचार अत्यंत सुखकर रहता है।

दाहिने स्वर से श्वास भरें और तर्जनी और अँगूठे से आध इंच त्वचा की चिकोटी भरें। उस पर धीरे-धीरे श्वास फूँकें। इसके पश्चात् दूसरे स्थान को इसी प्रकार चिकोटी में भरकर फूँके। ऐसा शीघ्रता से करते चलें।

कुछ चिकित्सक दाहिने स्वर से श्वास भरकर पीड़ित हाथ पर फूँक मारते हुए हाथ और उँगलियों से गोलाकर स्पर्श देते हैं और रोगी से कहते हैं कि वह बाएँ स्वर से श्वास निकालना रहे। हाथ को दाहिनी ओर से बाईं ओर को अर्थात् दक्षिणावर्त ही घुमाया जाता है।

चारों उँगलियों और अँगूठे के सभी पोर एक साथ मिलाकर पीड़ित अंग पर या सम्पूर्ण शरीर पर हल्के स्पर्श के साथ घुमायें। यदि पूरे शरीर पर एक साथ न घुमा सकें, तो पहले सिर से उदर तक और फिर उदर से पैर तक हाथ चलायें। इस क्रिया को करते समय दाहिने स्वर से श्वास भर कर उँगलियों के पोर पीड़ित अंग पर रखें और क्रिया पूर्ण होने तक धीरे-धीरे श्वास बाहर जाने दें।

रुग्ण भाग को आटा गूँधने के समान गूँधने से मांसपेशियों और नाड़ियों की जकड़न समाप्त की जा सकती है। ऐसे में रोगी दाहिने स्वर से श्वास ले और बाएँ स्वर से बाहर निकाले।

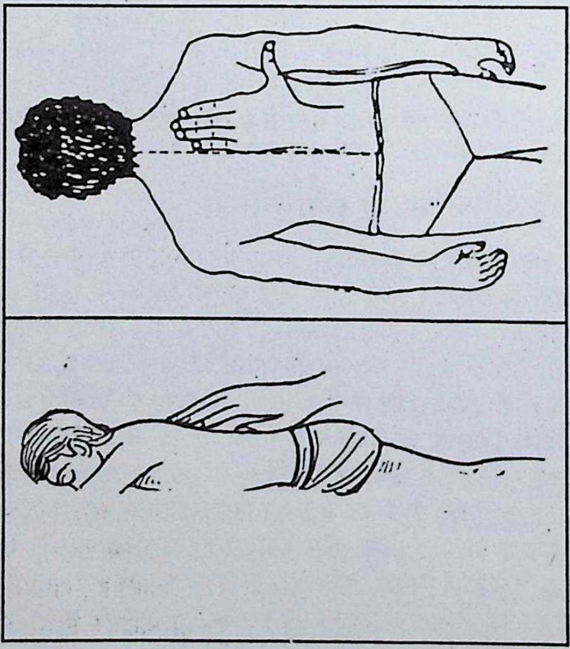

रुग्ण भाग पर खड़ी हथेली द्वार बार-बार प्रहार करने से उस भाग की पेशियों में रक्त संचार में तीव्रता आती है और रोगी को आराम मिलता है। हथेली खड़ी से तात्पर्य है हथेली के उस भाग से प्रहार करना जिधर कनिष्ठका (छोटी उँगली) होती है।

खोखली हथेली से बार-बार थपकी देना भी बहुत प्रकार की पीड़ा दूर करने में लाभदायी रहता है। इन सभी प्रकार के उपचारों के समय रोगी को दाहिने स्वर से श्वास लेनी चाहिए और बाएँ स्वर से बाहर निकालनी चाहिए, अर्थात् सूर्य स्वर से पूरक करे और चंद्र स्वर से रेचक।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कंपन उत्पन्न करना

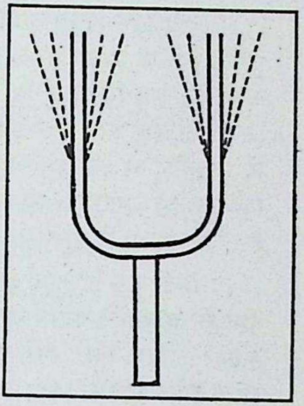

ट्यूनिग फॉर्क धातु का बना होता है। उसके एक ओर हल्की चोट देने से कंपनों को दूसरी ओर अनुभव किया जा सकता है। पतली छड़ या बेंत की पतली लकड़ी को यदि झटक दें तो वह भी कुछ देर तक कंपकंपाती रहती है। ऐसी ही कंपकंपाहट हाथ में उत्पन्न की जाती है। इसके लिए कलाई से कोहनी तक की पेशियों को कड़ी करके हाथ को सीधा खड़ा करके इस प्रकार धीरे-धीरे कंपकंपाते रहते हैं, मानों वह किसी यंत्र द्वारा कंपाया जा रहा हो। धीरे-धीरे यह कंपकंपाहट थरथराहट का रूप ले लेती है। उपचार की दुनिया में ऐसी थरथराहट का विशेष महत्व है।

इस थरथराहट को उत्पन्न करने के लिए सीधे हाथ की चारों उँगलियों को अँगूठे सहित पीड़ित भाग पर रखें अथवा उँगलियों और हथेली सहित पीड़ित भाग पर रखें और फिर हाथ में कुहनी तक थरथराहट उत्पन्न करें। ऐसा अभ्यास करें कि हाथ एक जैसी गति से बिना थके देर तक थरथराहट देता रहे। जिस अंग पर कंपन देना है उस पर हाथ का अधिक दबाव देने की आवश्यकता नहीं है। रोगी को इतना स्पर्श करो कि उसे कंपनों का अनुभव हो। यह हल्के स्पर्श वाले कंपन भी पूरे शरीर के कोषों तक पहुँच जाते हैं।

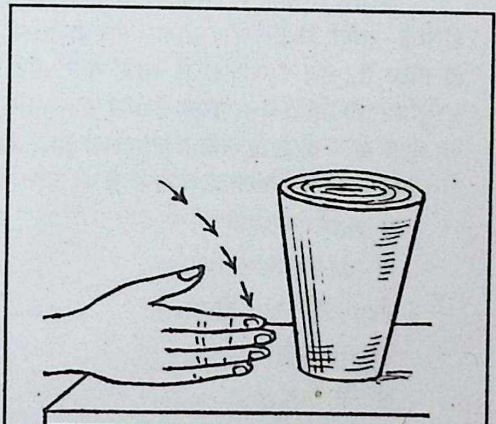

अभ्यास के लिए एक छोटी मेज पर जल भरा गिलास रख लो और हाथ को मेज पर गिलास के पास रखकर थरथराहट दो, थोड़ी देर में हाथ के कंपनों के कारण गिलास के जल में कंपन दिखाई देने लगेंगे। जब कंपनों के आघात से जल के मध्य में कंपन का गुड़ढा-सा बनने लगे तो वह कंपन उपचार के योग्य होते हैं। कंपनों की लय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोगकर्ता की श्वास लय में रहे। लय युक्त श्वास का अभ्यास बहुत सरल है। केवल अपनी श्वास पर ध्यान रखें और देखते रहें कि यह श्वास बाहर गई, यह श्वास अंदर आई। श्वास प्रश्वास के प्रति संवेदनशीलता श्वास की गति को लय में ले आती है।

यदि संपूर्ण शरीर को कंपित करना हो तो प्रयोगकर्ता को दोनों हाथों से थरथराहट देने की प्रक्रिया करनी चाहिए। मस्तिष्क के लिए भी दोनों हाथों के बीच रोगी के सिर को पकड़कर कंपन देना लाभप्रद रहता है। सामान्यतः ऐसे कंपन 2 से 5 मिनट तक दिये जा सकते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर और मंत्राक्षर

जब आप किसी योगी से स्वरों की बात करते हैं, तो वह दाहिने (पिंगला) अथवा बायें (इड़ा) स्वर के आधार पर नासारंध्रों से उच्छ्वित श्वास प्रश्वास के विवरण देने लगता है। यदि स्वरों की बात किसी संगीतज्ञ से करें, तो वह 'स रे ग म प ध नि सा,' अपने सात स्वरों के, आरोह-अवरोह और ताल आदि के वर्णन देने लगता है और यही बात जब किसी हिंदी/संस्कृत के भाषाविद् से की जाती है, तो वह अपनी वर्णमाला के स्वर और व्यंजन के व्याकरणात्मक विवेचन देने लगता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन सभी स्वरों का मूल एक ही है—नासारंध्र से निकलने वाली श्वास, जिसे प्रश्वास कहा जाता है।

अभी कुछ दिन पूर्व बीजाक्षरों की निष्पत्ति के संबंध में एक ग्रंथ में मैंने लिखा पाया—**हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः**। अर्थात् क कार से ह कार पर्यंत व्यंजन बीज संज्ञक है और अ कार आदि स्वर शक्ति रूप है। यही बात समझाने के रूप में दूसरे प्रकार से भी कही जाती है कि स्वर स्त्री रूप है और व्यंजन पुरुष रूप। व्यंजन पुरुष के समान सदैव अधूरा है, जो स्वर शक्ति नारी का सहयोग पाकर पूरा होता है। आप जानते हैं सभी व्यंजन हलंत है, क् ख् छ् ट् आदि और क्+अ=क, ख्+अ=ख आदि बनता है। यह स्वर स्त्री रूप मातृका हैं, जिन्हें सामान्य भाषा में हम मात्रा कहते हैं। जय सेन प्रतिष्ठा पाठ में कहा गया है—

अकारदिक्षकारान्ता वर्ण प्रोक्तास्तु मातृकाः।
सृष्टिन्यास स्थिन्यास सह्रतिन्यासतस्त्रिधाः।।

अर्थात अ कार से क्ष कार पर्यंत मातृका वर्ण कहलाते हैं। इनका तीन प्रकार का क्रम होता है—सृष्टि, स्थिति और संहार। मंत्र बीजाक्षरों का निर्माण उक्त हल् और अचों के संयोग से ही होता है। इन बीजाक्षरों में सृष्टि क्रम और स्थिति क्रम आत्मानुभूति के साथ लौकिक अभ्युदयों की प्राप्ति में सहायक है और संहार क्रम कर्मविनाश को प्रकट करता है। बीज अक्षरों का अर्थ बीज कोश एवं बीज व्याकरण द्वारा हीं ज्ञात किया जा सकता है। फिर भी कुछ बीजाक्षरों का वर्णन करने से बीज मंत्रों की शक्ति को समझने में सरलता रहेगी—

ऐं—वाग्भव बीज
लं—काम बीज
हंसः—विषापहार बीज
स्वा—वायु बीज
हा—आकाश बीज
जं—पाश बीज
वौषट्—पूजा ग्रहण, आकर्षण बीज
ब्लू—द्रावण बीज
क्लू—आकर्षण बीज
वषट्—आह्वानन बीज
क्ष्वीं—विषापहार बीज
घेघै—ग्रहण बीज
वैविंद्यौ—विद्वेषण बीज
हं—गगन बीज
झीं—शक्ति बीज
क्षीं—पृथ्वी बीज
प्हा—माया बीज
झौं—अंकुश बीज
फट—विसर्जन या चालन बीज
सवौषट्—आमंत्रण बीज
ग्लौं—स्तंभन बीज
प्हीं—महाशक्ति बीज
रं—जलन बीज
ड—चंद्र बीज
अ—आकाश बीज, धान्य बीज
आ—सुख बीज, तेजो बीज

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ट्रां ट्रीं क्लीं ब्लूं सः–रोष बीज,

नम–शोधन बीज

ई–गुण बीज, तेजो बीज

वा उ–वाय बीज

जुं–विद्वेषण बीज

स्वीं–अमृत बीज

प्हौं–ऋद्धि सिद्धि बीज

प्हीं–सर्व शांति बीज

हे–दंड बीज

झौं–महाशक्ति बीज

प्हं–मंगल सुख बीज

क्लीं–धन या कुबेर बीज

स्वाहा–शांति, मोहन बीज

स्वधा–पौष्टिक मोहक बीज

प्हूं–ज्ञान बीज

य–विसर्जन, उच्चाटन बीज

पं–वायु बीज

क्ष्वीं–भोग बीज

प्हाँ–सर्व शांति बीज

प्हूँ–सर्व शांति बीज

ख–स्वाद बीज

हल्व्यूं–पिंड बीज

श्रीं–कीर्ति या कल्याण बीज

इन बीजक्षरों में **स्वाहा** स्त्रीलिंग, **वष्ट् फट् स्वधा** पुल्लिंग तथा **नमः** को नपुंसक लिंग माना जाता है। यूँ मंत्र के अंत में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग सामान्यतः होता है जो पापनाशक, मंगलकारक तथा मन की आंतरिक शांति दृढ़ करने वाला माना जाता है। 'हूं' का प्रयोग वश्य, आकर्षण और उच्चाटन में किया जाता है, फट् का प्रयोग मारण में, नमः का स्तंभन, विद्वेषण और मोहन में, वषट् का प्रयोग शांति और पौष्टिक कर्म में किया जाता है।

यदि वर्णों के लिंग का विचार करें, तो अ उ ऊ ऐ ओ औ अं, क ख ग घ, ट ठ ड ढ, त थ प फ ब ज झ य स ष ल क्ष पुल्लिंग वर्ण हैं, आ ई च छ ल व स्त्रीलिंग वर्ण हैं और इ ऋ ॠ ऌ ॡ ए अः ध भ म र ह द ज ण ङ न नपुंसक लिंग होते हैं। मंत्र शास्त्र के आचार्यों ने बीजों के तत्वों का निरूपण करते समय विभिन्न वर्णों को पंच तत्वों के संज्ञक रूप में भी विभक्त किया है–

अ आ ऋ ह श य क ख ग घ ङ	वायु तत्व संज्ञक
इ ई ॠ च छ ज झ ज क्ष र थ	अग्नि तत्व संज्ञक
ऌ व ल उ ऊ त ट द ड ण	पृथ्वी तत्व संज्ञक
ए ऐ थ ध ठ ढ ध न स	जल तत्व संज्ञक
ओ औ अं अः प फ ब भ म	आकाश तत्व संज्ञक

'ऊँ' स्वयं में परिपूर्ण एक संयुक्ताक्षर है जो कि प्रधान बीज अक्षर माना जाता है और सृष्टि का मूल होने के कारण मूलभूत कहा जाता है इसे काम बीज, भाव बीज तथा तेजो बीज भी माना जाता है, चूँकि सृष्टि की उत्पत्ति उसका पोषण और विनाश तीनों क्रियाएँ इसके द्वारा संपादित की जा सकती हैं। वाम मार्गी पंचमकार साधना में इसे मैथुन यज्ञ रूप माना जाता है, जैन साधक 'पंच परमेष्ठी' मानकर इसे समस्त मंत्रों का सार तत्व मानते हैं। यह आत्मवाचक है अर्थात् व्यक्ति को पूर्ण या वर्तुलाकार बनाता है इसी प्रकार अन्य बीजाक्षरों का वर्णन अग्र प्रकार मिलता है–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्री–कीर्ति वाचक
ह्रीं–कल्याण वाचक
श्रीं–शांति वाचक
हं–मंगल वाचक
ऊँ–सुख वाचक
हं–विद्वेष रोष वाचक
प्रौं प्रीं–स्तंभन वाचक
क्लीं–लक्ष्मी प्राप्ति वाचक
श्वीं–योग वाचक
यक्ष यक्षणियों के नाम–कीर्ति और प्रीति वाचक

ऐसे ही बीजाक्षरों के कुछ अक्षरों को संयुक्त करके विभिन्न मंत्रों का निर्माण किया जाता है जैसे–

युग्माक्षरी मंत्र–

(1) अर्हं (2) सिद्ध (3) ऊँ ह्रीं (4) आसा

त्र्याक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ सिद्धं (2) ऊँ अर्हं (3) ऊँ अर्हंत

चतुराक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ सिद्धेभ्य (2) असिसाहु (3) अरिहंत

पंचाक्षरी मंत्र–

(1) असि आउसा (2) अर्हंत सिद्ध (3) हां ह्रीं हूं ह्रौं हः
(4) नम शिवाय (5) णमो सिद्धाणं

षडक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ हां ह्रीं हूं ह्रौं हः (2) ऊँ नम सिद्धेभ्य (3) ऊँ नमः शिवाय

सप्ताक्षरी मंत्र–

(1) नमः सर्व सिद्धेभ्यः (2) णमो अरहंताणं

अष्टाक्षरी मंत्र–

(1) दुर्गा दुर्गति नाशिनी (2) ऊँ णमो अरिहंताणं

नवाक्षरी मंत्र–

(1) ऐं ह्री क्लीं चामुंडायै विच्ये (2) णमो लोए सव्व साहूणम

दशाक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चांमुडाये विच्ये (2) ऊँ अरहंत सिद्धेभ्यो नमः

एकादशाक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ हा ह्रीं हूं ह्रौं हः असि आउसा (2) नमो भगवते वासुदेवाय

द्वादशाक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय (2) अर्हं सिद्ध सयोग केवलि स्वाहा

त्रयोदशाक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ हां ह्रीं हूं ह्रौं हः असि आउसा नमः

चतुर्दशाक्षरी मंत्र–

(1) ऊँ ह्रीं स्वर्हं नमो नमोऽर्हंताणं ह्रीं नमः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी प्रकार के कुछ मंत्रों का निर्माण विभिन्न काम्य उपयोगों के लिए कर लिया जाता है, जिनमें रक्षाकर मंत्र, पवित्रीकरण मंत्र रोग निवारण मंत्र, अग्नि निवारण मंत्र आदि का उपयोग सामान्यतः शाबर अथवा शास्त्रीय पद्धति में किया जाता है। उदाहरणार्थ—जैन पद्धति में रक्षा मंत्र के रूप में पंच नमोकार मंत्र का उपयोग किया जाता है और माना जाता है कि **''ऐसो पंच णमोक्कारों सर्व पावप्पणासणो''** और शरीर रक्षा के लिए उसका न्यास किया जाता है—

रक्षा मंत्र—

ॐ णमो अरहंताणं शिखायाम् (चोटी स्पर्श करें)

ॐ णमो सिद्धाणं (मुख स्पर्श करें)

ॐ णमो अयरियाणं (सारे अंगों को स्पर्श करें)

ॐ णमो उवज्झायाणं—आयुधं (तलवार दिखाने के समान हाथ तानें)

ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं—मौर्वी (अपने आसन को स्पर्श करते हुए शिला की भावना करें)

सव्व पावप्पणासणो—वज्रमय प्रकाराश्चतुर्दिक्षु (अपने चारों ओर उँगली से घेरा बना लें और समझें कि यह वज्रमय कोट है)

मंगलाणं च सव्वेसिं—शिखादि सर्वतः प्रखातिका (समझें कि वज्रकोट के परे खाई है)

षढमंहवई मंगलं—प्रकारोपरि वज्रमय टंकाणिकम् (इति महारक्षा—सर्वोपद्रव विद्रविणी)

(वज्रकोट के चारों ओर चुटकी बजावें और उपद्रवियों को भाग जाने को कहें।)

इस प्रकार के रक्षा मंत्रों द्वारा न्यास आदि करने की प्रथा बहुत से संप्रदायों में प्रचलित है। रामायण के तुलसीदास जी ने कहा है—**''भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणी''**। आप जानते हैं झाड़ी को भूत, रस्सी को सर्प और मूर्ति को देवता बना देने की क्षमता 'विश्वास' में है। केवल विश्वास के आधार पर लोग भय के कारण काल के मुख में चले जाते हैं। **श्रद्धामय विश्वास उत्पन्न करने में ऐसे रक्षा मंत्र बड़े प्रभावी सिद्ध होते हैं।** ब्रह्मचर्य की उपलब्धि के लिए तांत्रिक मैथुन में प्रवृत्त साधक वीर्य क्षरण रोकने के लिए निम्न मंत्र का 108 बार जाप करते हैं—

''ॐ नमो भगवते रुद्राय उड्डामरेश्वराय स्त्रीणां मन्द द्रावय द्रावय स्वाहा ठः ठः''

जब कि सामान्य व्यक्तियों के लिए मैथुन में प्रवृत्ति होकर वीर्य को रोक पाना बहुत कठिन बात है। ऐसे विभिन्न प्रकार के रक्षा मंत्रों के जप लेने से साधक के ध्यान में साँप, शेर, बिच्छू, व्यन्तर, देव, देवी, यक्ष, यक्षिणी, पिशाचनी आदि डरावने वेषधारी भी वज्रमय कोट को पार करके नहीं आ पाते, अन्य घातों से भी ऐसे रक्षा मंत्र वालों की रक्षा होती है। यदि रक्षा मंत्र पर इतना विश्वास न रखा जाय, तो बिना रक्षा मंत्र सिद्ध किये हुए मंत्र सिद्ध करने बैठने वालों के समान कभी- कभी हानि उठानी पड़ती है। ऐसे लोग या तो व्यंतरों तथा व्यवधानों आदि के कारण भयभीत होकर मंत्र जपना त्याग देते हैं या विक्षिप्त हो जाते हैं। मुनि और यति लोग तो मन से ही संकल्प कर लेते हैं अतः यह न्यास तथा रक्षा आदि की क्रियाएँ गृहस्थों तथा कम साधना स्तर वालों के लिए होती हैं।

रोग निवारक मंत्र—रोग निवारण मंत्रों के रूप में भी कुछ मंत्रों का उपयोग किया जाता है। शाबर तंत्र आदि में तो संस्कृत पाली आदि मिश्रित भाषाक्षरों का उपयोग किया जाता है, जैसे—निम्न मंत्र के बारे में लिखा गया है कि इसे 108 बार लिख—लिखकर रोगी के हाथ में रखें, तो सभी प्रकार के रोगों में लाभ हो—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ अवतर-अवतर देवी ममशरीरं प्रविश पुछं
तस्स पविस सव्व जणमय हरीये:
अरहंत सिरिए परमेसरीए स्वाहाः।

मस्तक का दर्द यहाँ तक कि आधाशीशी के दर्द में कुछ लोग एक कटोरी में जल लेकर निम्न मंत्र को उस पर पढ़ते हैं और रोगी को वह जल पिलाते हैं—

ॐ णमो णाणाय, ॐ णमो दंसणाय, ॐ णमो चरिताय।
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यंकरी ह्रीं स्वाहा।।

वशीकरण तथा बंदी खाना निवारण मंत्र के रूप में णमोकार मंत्र के पेंतीस अक्षर लिखकर जप करने का विधान मिलता है। कहा गया है कि चतुर्थी, चतुर्दशी अथवा शनिवार को एक चुटकी में धूल लेकर मंत्र पढ़े और तीन बार फूँक मारकर जिस पर डालें वह वश में हो। बंदी छूटने वाले कार्य के लिए जब समय मिले, जितनी देर तक समय मिले सात दिन, ग्यारह दिन या इक्कीस दिन तक जाप करें। हो सके तो सवा लाख जप करें, तो कैद (बंदी खाने) से शीघ्र मुक्त हो। हित परिवारी भी जप करें, तो अदालत में अपील आदि पर तुरंत लाभ मिले—

णंहूसाववृसएलो मोण, णंयाझाज्वउ मोण।
णंयारिइआ मोण, णंद्धासि मोण, णंताहंरअ मोण।

जिस प्रकार उक्त वशीकरण मंत्र का उपयोग **''बंदी गृह मुक्ति मंत्र''** के रूप में किया जाता है इसी प्रकार एक और बंदी गृह मुक्ति मंत्र है, जो मछली जाल में न फँसने देने के लिए उपयोग में लाया जाता है—

ॐ णमो अहरंताणं ॐ णमो लोए सव्वसाहूणम्।
हुलु हुलु कुलु कुलु चुलु चुलु मुलु मुलु स्वाहा।।

मछली जाल में न फँसने देने के लिए एक कंकरी पर उक्त मंत्र 21 बार पढ़कर फूँका जाता है और चुपचाप जाल पर फेंक दिया जाता है। बंदी गृह मुक्ति के लिए धूप जलाकर जप करें और सवा लाख की संख्या पूर्ण होने तक, जितना समय मिले प्रतिदिन जपें।

अग्नि निवारक मंत्र का उपयोग भी जैन साहित्य में मिलता है। कहा गया है कि अंजली में शुद्ध पवित्र जल लेकर निम्न मंत्र को इक्कीस बार पढ़कर उससे पहले तो लकीर खींच दे जिससे आग आगे न बढ़े, फिर शेष जल के आग पर छींटे मारें, तो अग्नि शीघ्र वश में आ जाती है—

ॐ अर्हं असि आउसा णमो अरहंताणं नमः।

असि आउसा आदि बीजाक्षरों के संयोग से शत्रु तथा भूत व्याधा निवारण भी किया जाता है, मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं अ-सि-आ-उ-सा सर्व दुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय।
मोहय मोहय अन्धय अन्धय मूकवत्कारय कुरु।
कुरु ह्रीं भूतादिक ठः ठः ठः।।

'भूतादिक' के स्थान पर शत्रु का नाम भी लिया जा सकता है अथवा भूतादिक या दुष्टान शब्द का प्रयोग करते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शत्रु के ऊपर इस मंत्र का प्रयोग करने के लिए जब शत्रु हमला करने आवे, तो मुकाबले के लिए जाते समय 108 बार मुट्ठी बाँधकर जप करता जावे, तो दुश्मन निर्बल पड़ जायगा या भाग जायगा।

भूतादिक के सताने पर इस मंत्र को 108 बार मुट्ठी बाँधकर रोगी को प्रातः सांय झाड़ा देने से बहुत से बालक स्त्री अच्छे हो जाते हैं।

वाक्बल अर्थात शुभ-अशुभ जानने के मंत्र के रूप में भी बीजाक्षरों का सुंदर उपयोग होता है—

ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्वीं स्वाहा

ऐसे मंत्रों का उपयोग किसी मुकद्दमे में, किसी चिंता में या बीमारी में शुभ-अशुभ जानने के लिए किया जाता है। इसके लिए रात में संपूर्ण मस्तक पर चंदन लगाकर बैठें, जब चंदन सूख जाय तो 108 बार मंत्र पढ़कर सो जायँ। स्वप्न में शुभ-अशुभ का ज्ञान हो जायगा। उक्त मंत्र को सिद्ध करने के लिए गुरुवार से 110 माला अर्थात 11,000 जाप करे।

इन काम्य मंत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि ऐसे मंत्रों की आवश्यकता संन्यासी और संतों को तो है ही नहीं, माया मोह से परे, वीत राग संन्यासी का न कोई दुश्मन होता है न दोस्त, न कोई कामना रह जाती है न लालच, इन सबका उपयोग तो गृहस्थ और संसारी लोग कर सकते हैं, परंतु उन्हें तो अपने खाने-दाने जुटाने से ही फुर्सत नहीं मिल पाती और सामान्यतः ऐसे मंत्रों की सिद्धि में सवा लाख मंत्रों के जाप तो करने ही पड़ते हैं, इसलिए आचार्यों ने सर्वसिद्धि मंत्रों की रचना कर डाली है, जिससे अलग-अलग प्रकार के मंत्रों को अलग-अलग सिद्ध न करना पड़े। बीजाक्षरों से निर्मित एक 'सर्व सिद्धि मंत्र' देखिये—

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं असि आ उ सा नमः।

एक प्रश्न पाठकों के मन में आ सकता है कि मंत्र सिद्ध करने से क्या तात्पर्य है ? इसके लिए एक उदाहरण देखें—एक मकान की छत पर एक कटोरी पानी फैल जाता है, तो वह पानी की मात्रा इतनी नहीं होती कि वह नाली तक पहुँचे और नीचे गली में गिरे। उस छत पर कोई स्थान ऐसा भी हो सकता है जहाँ एक जग पानी भी फैला दो, तब भी वह नाली तक न पहुँचे और ऐसा स्थान भी हो सकता है कि आधी कटोरी पानी भी नाली तक पहुँच जाय। छत से पानी के नाली में गिरने की अलग-अलग मात्राएँ, स्थान के आधार पर निश्चित होती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि छत में पहले ही इतना पानी डाल दें कि थोड़ा-सा और डाले तो पानी गिरने लगे। सिद्धि का अर्थ है साधक को उस स्तर तक भर दो कि थोड़ा भरने पर ही उसकी ऊर्जा झरने लगे। साधकों का ऊर्जा स्तर अलग-अलग प्रकार का होता है, किसी को अधिक साधना करने पर उतना फल मिलता है, जो दूसरे को कम साधना करने पर मिल जाता है। यूँ यह श्रम साधक की श्रद्धा की गहराई पर भी निर्भर करता है, अधिक श्रद्धावान् साधक शीघ्र परिणाम पा जाता है और कम श्रद्धावान् अधिक समय लगाता है। श्रद्धा का अर्थ है संदेह रहित होकर विश्वास के साथ कार्य करना, इसका अर्थ अंधश्रद्धा या अंधविश्वास नहीं है। पूर्णतः वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तर पाकर संतुष्ट हो जाने पर ही किसी विषय में सच्ची श्रद्धा उत्पन्न होती है। कुछ विषय ऐसे भी होते हैं, जहाँ गुरु के वचन को प्रमाण मानकर भी चलना पड़ता है, वह भी अंध श्रद्धा के रूप में नहीं अपितु इस रूप में कि गुरु को जो अनुभव हो चुका है उसका क्रियात्मक उपयोग तो क्रिया में ढ़ालने पर ही संभव हो सकेगा। जब साइकिल सिखाने वाला गुरु कहता है कि केवल सामने देखो, इधर-उधर देखते ही गिर जाओगे, तो नौसिखिये को सामने देखना ही पड़ता है। कुछ दिन बाद यही नौसिखिया जब सिद्धहस्त हो जाता है, या यूँ कहें कि जब उसे साइकिल सिद्ध हो जाती है तब वह टेढ़ी-मेढ़ी करके किसी भी प्रकार से साइकिल चला लेता है। मंत्र सिद्धि भी इसी प्रकार की क्रिया है। इन मंत्रों में स्थान, समय तथा जप संख्या आदि के विवेचन सामान्यतः दिये रहते हैं, जिससे साधक उचित स्तर की क्षमता का विकास अपने अंदर कर सके। आध्यात्मिक मंत्रों में सिद्धि आदि के चक्कर नहीं पड़ते चूँकि ऐसे मंत्र शाश्वत और चिर कालीन जाप के होते हैं, धीरे-धीरे सिद्ध वे भी हो जाते हैं और साधक उन सिद्धियों को अपने अंदर अनुभव करता है, परंतु उनका उपयोग आदि करना मना होता है अन्यथा आगे का विकास रुक जाता है। यह ऐसे ही है जैसे कोई बीच में पढ़ाई छोड़कर नौकरी या व्यवसाय करने लगे, तो आगे पढ़ाई पूरी नहीं कर पाता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

12 स्वर और ज्योतिष

झूठे व तत्वहीन सिद्धांतों का अस्तित्व अधिक दिनों तक नहीं रहता है। वह सनातन नहीं कहला सकता। ज्योतिष-विद्या भारत में पुरातन काल से चली आ रही है। आज भी अधिकांश व्यक्ति इस पर दृढ़ आस्था रखते हैं। हजारों वर्षों से इस शास्त्र की मान्यता आलोचकों के होते हुए भी चली आ रही है। हमारा दावा है कि यह शास्त्र सर्वमान्य रहा है और रहेगा, क्योंकि यह एक विज्ञान है। इसके अटल सिद्धांत हैं, जो चिर सत्य हैं। इसीलिए इस सर्वमान्य विज्ञान में सत्यता है। आज पाश्चात्य देशों में भी इसकी कद्र है। हमें गर्व होना चाहिए कि इस शास्त्र का उद्‌गम स्थान हमारा ही देश भारत है। **मैक्समूलर** का कहना है कि–**''मनुष्य के मस्तिष्क में जीवन के सबसे बड़े सिद्धांत और सबसे बड़ी युक्तियाँ भारतवर्ष ने ही खोज निकाली हैं।''** आज विश्व में जो भी कुछ वर्तमान है, उसका गणेश भारतीय संस्कृति से ही हुआ है, ऐसा इतिहास के विद्वानों का मत है। **प्रो. वेबर** ने कहा है कि अरब में ज्योतिष विज्ञान का विकास भारतवर्ष से ही हुआ। कोल बुक ने कहा है कि भारतवर्ष ने ही चीन व अरब को ज्योतिष विद्या व अंकगणित दिया। मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि ज्योतिष, अंकगणित आदि का ज्ञान भारतवासियों ने ही यूरोप को दिया। इस विषय पर आज भी पाश्चात्य देशों में अनुसंधान व खोज आदि के कार्य किये जा रहे हैं, किंतु दुःख का विषय है कि भारत में इस विज्ञान के क्षेत्र में शोध आदि के कार्य नहीं किये जाते, बल्कि इसे केवल जीविकोपार्जन का साधनमात्र समझा जाता है। यही कारण है कि लोगों का विश्वास इसके प्रति कम होता जा रहा है तथा इसका क्षेत्र भी संकीर्ण होता जा रहा है, शासन की उपेक्षा भी इसके ह्रास का एक प्रमुख कारण है।

यदि कोई व्यक्ति इस विज्ञान का गहन अध्ययन करे, तो उसे ज्ञात होगा कि इसमें कई सैद्धांतिक तत्वों पर चमत्कार भरा पड़ा है, किंतु हमारे भारतीय ज्योतिषीगण इस तरफ से उदासीन हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन काल में ऋषि-महर्षियों ने जो सिद्धांत निश्चित किये थे, उनमें वर्तमान आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन व नवीनीकरण किया जावे, क्योंकि अभी तक इसका कोई विकास नहीं हो पाया है। विशेष रूप से विवाह आदि के अवसरों पर इसके सिद्धांतों को प्रचलित रीति-रिवाजों पर लागू करने की आवश्यकता है।

आजकल बहुधा इस शास्त्र की आलोचना ही की जाती है–वह भी बड़े माने जाने वाले धुरंधर विद्वानों द्वारा ये आलोचनाएँ अधिकांश बिना सोचे समझे की जाती हैं तथा आलोचक इस शास्त्र का ज्ञाता भी नहीं होता है। ज्योतिषियों की निंदा की जा सकती है, किंतु ज्योतिषशास्त्र की बिना सोचे समझे निंदा करना एक अनाधिकार कृत्य है। डॉक्टर या वैद्य अपने शास्त्र में निश्चित किये गये सिद्धांतों के आधार पर चिकित्सा करते हैं। यदि वे चिकित्सा में असफल रहते हैं, तो वे स्वयं असफल हैं, उनके सिद्धांत या शास्त्र नहीं। वस्तुतः यही स्थिति ज्योतिषशास्त्र की है। अतएव पूर्णरूपेण अध्ययन किये बिना तथा शास्त्र की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गहराई जाने बिना इसे अवैज्ञानिक कह देना या इस शास्त्र की आलोचना करना कभी भी बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। ऋग्वेद से हमें यह ज्ञात होता है कि आज से लगभग 28 हजार वर्ष पूर्व भारतीयों ने खगोल व ज्योतिष- शास्त्र का मंथन किया था। इसके चमत्कारों को समझना व सीखना एक बुद्धिमानी का काम समझा जाता है। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों ने सिद्धांत, होरा व संहिता नामों से त्रयस्कंध में इसकी रचना की थी। कालांतर में इसके पाँच स्कंध हो गये, जो इस प्रकार हैं—सिद्धांत, होरा, संहिता, प्रश्न, शुकुन। फलित ज्योतिष के नवस्कंध प्रमाणीभूत हैं, वे इस प्रकार हैं—

(1) **मेदिनी व राष्ट्र ज्योतिष**—ज्योतिष के प्रथम विभाग को 'मेदिनी' व राष्ट्र-ज्योतिष कहते हैं। इस मेदिनी ज्योतिष से विश्व व राष्ट्र में होने वाली क्रांति, युद्ध, संधि, विग्रह, महामारी, संक्रामक रोग, दुर्भिक्ष, भूकंप, तूफान, बाढ़, दैवी संकट, महाप्रलय, आदि आकस्मिक दुर्घटनाओं का ज्ञान अथवा आभास मिलता है।

(2) **जातकशास्त्र**—फलित ज्योतिष में जातकशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। बृहत् जातक, गर्ग संहिता, पाराशर, होरा आदि ऋषि-प्रणीत महान् ग्रंथ इस विषय में परिपूर्ण हैं। जातकशास्त्र से मानव-जीवन के जन्म से मृत्यु तक के कार्यकलाप, दैविक या पूर्व कर्म के प्रारब्ध की जानकारी सब सुख-दुःखों सहित मालूम हो सकती है।

(3) **मुहूर्त शास्त्र**—सिद्धांतों से हमें ज्ञात हो जाता है कि कौन-सा कार्य किस समय करना उपयुक्त एवं यशकारक हो सकता है। कार्य-साधन के निमित्त निर्दिष्ट किये जाने वाले समय की जानकारी देने वाले ज्योतिषशास्त्र के सिद्धांतों को ही 'मुहूर्त विचार' के नाम से जाना जाता है। शुभ मुहूर्त में कार्य करने से सिद्धि लाभ मिलता है। जिस शास्त्र से मुहूर्तों का ज्ञान होता है, उसे ही 'मुहूर्त सिद्धांत विचार स्कंध' कहा गया है।

(4) **प्रश्न शास्त्र**—जिस समय प्रश्नकर्ता प्रश्न पूछने आता है, उस समय के ग्रहों की स्थिति की कुंडली बनाई जाती है तथा उसी प्रश्न कुंडली के आधार पर प्रश्न संबंधी फलित बताया जाता है।

(5) **वायुवर्षा शास्त्र**—यह ज्योतिष शास्त्र का वह अंग है, जिससे वायु, वर्षा, ज्वारभाटा, तूफान, भूकंप आदि से संबंधित ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हर मौसम में भिन्न-भिन्न प्रकार की वायु गतियाँ जानी जाती हैं, तथा साथ ही साथ वर्षायोग का भी ज्ञान होता है। तूफान, भूकंप आदि हलचलों का ज्ञान प्राप्त करने का एक मात्र यही साधन है।

(6) **अर्थ ज्योतिष**—इससे व्यापारिक वस्तुओं की तेजी मंदी व अन्य किसी प्रकार की स्थिति का ज्ञान मिलता है।

(7) **चिकित्साशास्त्र**—इससे ग्रहों द्वारा रोग निदान, जीवन-मरण की अवधि, ओषधि निर्माण, शारीरिक पोषण के तत्वों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आयुर्वेद में भी इस ज्योतिष चिकित्साशास्त्र का महत्व प्रतिपादित किया गया है। किस प्रकार से पूर्व कर्म के दोष रोग की उत्पत्ति के लिए कारण होते हैं, इस बात का ज्ञान भी यही शास्त्र हमें प्रदान करता है।

(8) **अध्यात्म ज्योतिष**—यह भी फलित ज्योतिष का ही एक अंग है। भारत में ज्योतिष का आविर्भाव योग विज्ञान से ही हुआ है और ज्योतिष का वास्तविक ध्येय हमें आध्यात्मिक जीवन व योग विज्ञान में प्रवृत्त कराना है। इसकी प्राप्ति के लिए वर्तमान जन्म तथा पूर्व जन्म कैसे व कितना सहायक है अथवा नहीं है, इस बात का ज्ञान प्राप्त करना अध्यात्म ज्योतिष का ही विषय है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(9) **रहस्यात्मक ज्योतिष स्कंध**—इससे गुप्त, रहस्यपूर्ण विषयों के अंगों का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार यह नवस्कंध ज्योतिष शास्त्र का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक माने गये हैं। आज का मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान व चिकित्साशास्त्र इत्यादि भी इसी में अंतर्भूत हैं।

सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अग्नि, पाराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, अंगिरा, मनु, लोमश, पूलिश, च्यवन, यवन, भृगु और शौनक, ये 18 महापुरुष ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक .. स्वरोदयशास्त्र के प्रणोता स्वयं भगवान शिव हैं अतः उसमें वर्णित ज्योतिषीय सिद्धांतों के प्रवर्तक भी उन्हीं को मान लेना युक्ति युक्त है।

तिथि के साथ स्वर का संबंध प्रदर्शित करने वाले विवेचन भी स्वरोदय शास्त्र में पाये जाते हैं—

आदोचन्द्रः सितेपक्षे भास्करो हि सितेतरे।
प्रतिपत्तोदिनान्याहुस्त्रीणित्रीणि कृतोदये।।

कृष्ण पक्ष की तृतिया तक तीन दिन सूर्य स्वर का समय जानें और शुक्ल पक्ष की तृतिया तक चंद्र स्वर जानें।

गुरु शुक्र बुधेन्दूनां वासरे वामनाडिका।
सिद्धिदा सर्व कार्येषु शुक्ल पक्षे विशेषतः।।

यदि शुक्ल पक्ष में गुरु, बुध, सोम और शुक्र को बाईं नाड़ी में स्थित करके कार्य करें, तो सिद्धिदायक रहता है।

अर्कांगारकसौरीणां वासरे दक्ष नाड़िका।
स्मर्तव्या चरकार्येषु कृष्ण पक्षे विशेषतः।।

कृष्ण पक्ष में शनि, मंगल, सूर्य वारों में दक्षिण नाड़ी अर्थात् सूर्य स्वर चले, तो शुभ नहीं है।

तत्वों के प्रवाह के विषय में शास्त्र कहता है—

प्रथम वहते वायु द्वितीये च तथानलः।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणी वहेत्।।

सर्वप्रथम वायु तत्व, फिर अग्नि तत्व, उसके पश्चात् पृथ्वी तत्व और तब जल तत्व प्रवाहित होता है—

सार्धद्विघटिके पंच क्रमेणौ वोदयान्ति च।
क्रमादे कैकनाऽयां च तत्वानां पृथगुद्भवः।।

पाँचों तत्वों प्रत्येक स्वर में ढाई घड़ी के क्रम में उदय होते हैं।

अहोरात्रस्य मध्येतुज्ञेया द्वादश संक्रमा।
वृषकर्क च कन्यालि मृगमीना निशाकरे।।

दिन और रात के मध्य में बारह संक्राति होती हैं, जिनमें वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन राशियाँ चंद्रमा की हैं।

मेष सिंहौ च कुम्भश्च तुला च मिथुनं धनम्।
उदये दक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभ विनिर्णयः।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेष, सिंह, कुंभ, तुला, मिथुन और धन सूर्य राशियाँ हैं, इनमें दक्षिण स्वर चले तो शुभ है अन्यथा अशुभ है।

तिष्ठेत्पुर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिम दक्षिणे।
दक्षनाड्याः प्रसारे तु न गच्छेधाम्य पश्चिमे।।

उत्तर और पूर्व में चंद्रमा है और दक्षिण पश्चिम में सूर्य है इसलिए दक्षिण नाड़ी चले, तो दक्षिण पश्चिम में नहीं जाना चाहिए।

वामाचार प्रवाहे तु न गच्छेत पूर्व उत्तरे।
परिपंथिमयं तस्य गतो असौ न निवर्तते।।

बाईं नाड़ी चले तो उत्तर या पूर्व दिशा में नहीं जाना चाहिए। यदि जाता है तो अशुभ है।

पृथ्व्याः पंचह्यपां वेदा त्रयस्ते जो द्विवायुतः।
नमस्येक गुणश्चैव तत्वज्ञानमिदं भवेत्।।

पृथ्वी तत्व के पचास पल, जल तत्व के चालीस पल, अग्नि तत्व के तीस पल, वायु तत्व के बीस पल इस मानव शरीर में होते हैं।

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठा अनुराधा श्रवणं तथा।
अभिजिदुत्तराषाढ़ा पृथ्वी तत्व मुदाहृतम्।।

धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित, उत्तराषाढ़ा यह सात नक्षत्र पृथ्वी तत्व के हैं।

पूर्वाषाढ़ा तथा श्लेषा मूल आर्द्रा च रेवती।
उत्तराभाद्रपदा तोयतत्वं शतृभिषक् प्रिये।।

पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपद, और शतभिषा यह सात नक्षत्र जल तत्व के हैं।

भरणी कृत्तिका पुष्यो मघा पूर्वा च फाल्गुनी।
पूर्वा भाद्रपदा स्वाती तेजस्तत्वमिति प्रिये।।

भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपद, और स्वाँति यह सात नक्षत्र अग्नि तत्व के हैं।

विशाखोत्तर फाल्गुन्यौ हस्त चित्रे पुनर्वसु।
अश्विनी मृगशीर्षे च वायु तत्व मुदाहृतम्।।

विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिर ये सात नक्षत्र वायु तत्व के हैं।

अयन तिथि दिनेशैः स्वीयतत्वे च युक्ते।
यदि वहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम्।
च जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्र स्वरेण।
प्रभवतिन च विघ्नं केशवस्यापि लोके।।

यदि दैव योग से व्यक्ति के अयन, तिथि, दिन, नक्षत्र के स्वामी अपने ही तत्वों में प्रवाहित होते हों, तो वह केवल स्तंभन मात्र से ही अपने शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्व और भविष्य

ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर बात करें, तो पृथ्वी तत्व के शुभ फल देने वाले श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, अभिजित, ज्येष्ठा और अनुराधा नामक नक्षत्र हैं। जल तत्व के मूल, उत्तरा भाद्रपद, रेवती, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा और अश्लेषा नक्षत्र हैं, अग्नितत्व के मघा,पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपद, स्वाति, कृतिका, भरणी और पुष्य नक्षत्र हैं। इसी प्रकार वायु तत्व के नक्षत्र हस्त, विशाखा, मृगशिरा, पुनर्वसु, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी और अश्विनी नक्षत्र हैं। इस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु तत्वों में सात-सात नक्षत्र आ जाते हैं।

जब कोई कुछ प्रश्न करने के लिए आये, तो उत्तरदाता अपने तत्व का निरीक्षण करे। यदि पृथ्वी तत्व चल रहा हो, तो प्रश्नकर्ता के मन में मूल की चिंता है, यदि जल या वायु तत्व चल रहा हो, तो प्रश्नकर्ता के मन में जीव की चिंता है, अग्नि तत्व चल रहा हो, तो धातु संबंधी प्रश्न है और आकाश तत्व हो, तो प्रश्नकर्ता को विचार शून्य समझ लें।

एक महात्मा जी का विचार है कि पृथ्वी तत्व हो, तो बहुत पैरों वाले की चिंता बतायें, यदि जल या वायु तत्व हो, तो दो पैरों वाले की चिंता बतायें, अग्नि तत्व होने पर चौपाये की चिंता और आकाश तत्व होने पर बिना पैर वाले जीव या पदार्थ की चिंता समझ लें।

वायु तत्व हो, तो कलह, शोक, दुःख, भय, उत्पात, मृत्यु आदि घटित होते हैं। यदि प्रश्नकर्ता अग्नि तत्व में प्रश्न करे, तो हानि, राज्य का नाश, दुर्भिक्ष, रोग, आदि त्रास देते हैं। आकाश तत्व हो, तो दुर्भिक्ष घोर, विग्रह, देश भंग का भय और चौपायों का नाश होता है। यदि पृथ्वी और जल तत्व हो, तो वर्षा अच्छी होगी, प्रजा सुखी हो समय अति श्रेष्ठ रहता है। महात्मा चिदानंद जी का मानना है कि यदि पृथ्वी और जल तत्व के साथ चंद्र तिथि का योग हो जाय, तो इसका परिणाम बहुत उत्तम रहता है।

पृथ्वी तत्व में कार्य की सिद्धि शनैः-शनैः होती है, जल तत्व में परिणाम तुरंत मिलता है। पवन तत्व में थोड़ा लाभ होता है, अग्नि तत्व में बना बनाया काम बिगड़ जाता है और आकाश तत्व में कोई कार्य सिद्ध नहीं हो पाता। महात्मा आनंद घनाक्षरी का कहना है कि पृथ्वी तथा जल तत्व में कार्य सिद्धि, अग्नि तत्व में मृत्यु, वायु तत्व क्षयकारी और आकाश तत्व निष्फल है।

यदि कोई युद्ध संबंधी प्रश्न करे और उत्तरदाता का अग्नि तत्व प्रबल हो, तो महायुद्ध में भी शत्रु हार जायगा, ऐसा बता दें। जीवन-मृत्यु, जय-पराजय, अर्थ, लाभ-हानि, पुत्र, मित्र, गमनागमन आदि प्रसंगों में पृथ्वी तत्व श्रेष्ठ फल देता है। वायु तत्व हो, तो परिणाम अच्छा नहीं होगा, अग्नि तत्व तो विनाशकारी है ही। आकाश तत्व तो और भी बुरा है, जो लंबे समय तक दुर्भिक्ष, महामारी, देश भंग आदि का योग प्रदर्शित करता है। पृथ्वी तत्व में घोर संग्राम होकर विजय होती है, जल तत्व में वांछित से भी अधिक विजय हो या संधि होकर शत्रु भंग हो जाय।

स्वर के आधार पर युद्ध की बात करें, तो चंद्र स्वर में युद्ध के लिए जाने पर शत्रु की जीत होगी। सूर्य स्वर में अपनी जीत होती है। यदि अपना और शत्रु दोनों का सूर्य स्वर चल रहा हो तो **'जो पहले मारे सो मीरी'** वाली कहावत चरितार्थ होगी। सुषुम्ना स्वर में युद्ध में जाने से शिरच्छेदन हो जायगा। यदि लड़ाई के लिए दूर देश में जाना हो, तो चंद्र स्वर चलते में जाय और निकट देश में जाना हो, तो सूर्य स्वर में चलें तो विजय होगी।

चंद्र स्वर चलते समय कोई सामने आकर या ऊँचे रहकर युद्ध संबंधी प्रश्न करे और प्रश्न के अक्षर सम संख्या में (2, 4, 6, 8 आदि) हों, तो प्रश्नकर्ता की जीत होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दाहिने अथवा पीछे से कोई विषम अक्षरों (1, 3, 5, 7, 9 आदि) में युद्ध संबंधी प्रश्न करे और सूर्य स्वर चल रहा हो, तो भी प्रश्नकर्ता की जीत होती है।

यदि कोई चलते भरे स्वर की ओर से दोनों पक्षों के लिए युद्ध संबंधी प्रश्न करे, तो जिसका नाम प्रश्नकर्ता पहले बोले वही जीतेगा। यदि प्रश्नकर्ता खाली स्वर की ओर से दोनों पक्षों के लिए प्रश्न करे, तो जिसका नाम वह पहले लेगा वह हारेगा। खाली स्वर में युद्ध के लिए जाने पर महाबली भी अल्पबली से हारता है और पूर्ण स्वर में जाने पर थोड़ी-सी सेना वाला भी बड़ी सेना को हरा कर आ जाता है।

यदि कोई युद्ध में घायल संबंधी प्रश्न को पूर्ण दिशा में आकर पूर्ण दिशा में ही प्रश्न करे, तो बता दें कि घायल के कोई घाव नहीं है, खाली स्वर की ओर घायल व्यक्ति का नाम लेकर प्रश्न करे, तो बतायें कि शरीर में घाव है फिर "तत्व" देखें। यदि प्रश्न पृथ्वी तत्व में किया हो, तो घाव पेट में बतायें, जल तत्व में प्रश्न किया हो, तो पग में घाव होगा, अग्नि तत्व में प्रश्न किया हो, तो हृदय या वक्ष में घाव होगा। वायु तत्व में प्रश्न किया हो, तो जाँघ में घाव होगा और आकाश तत्व में प्रश्न हो, तो सिर में घाव बता दें।

संवत्सर भविष्य दर्शन

चैत्र शुक्ल प्रतिपदि प्रातस्तत्वविभेदतः।
पश्चोद्विचक्षणो योगी दक्षिणे चोत्तरायणे।।

योगी व्यक्ति चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को प्रातः तत्व की परख करे, साथ ही सूर्य की उत्तरायण अथवा दक्षिणायन की स्थिति पर भी ध्यान दे। (सूर्य जब उत्तर-पूर्व दिशा में रहता है, तो उत्तरायण कहलाता है और पूर्व-दक्षिण दिशा में होता है, तो दक्षिणायन कहलाता है)।

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानोअथ तत्वतः।
पृथिव्यापस्थता वायुः सुभिक्षं सर्वसस्यजम्।।

चंद्रस्वर के चलते समय पृथ्वी तत्व हो, जल तत्व हो या वायु तत्व हो, तो उस संवत्सर में अन्न आदि की फसल अच्छी होती है।

तेजोव्योम्नोर्भयं घोरंदुर्भिक्षं कालतत्वतः।
एवं तत्वफलं ज्ञेयं वर्षे मासे दिनेष्वपि।।

चंद्र स्वर के प्रवाह के समय आकाश तत्व हो, तो उस वर्ष दुर्भिक्ष आदि विकट स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी आधार पर वर्ष अथवा दिन का शुभ-अशुभ भी ज्ञान सकते हैं।

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वेषु कर्मसु।
देश भंग महारोग क्लेश कष्टादि दुःखदा।।

सुषुम्ना अर्थात् मध्यम स्वर सभी कार्यों में क्रूर भाव प्रदर्शित करता है। इसका प्रवाह हो, तो देश में विनाश, महामारी, क्लेश, कष्ट आदि के अवसर उपस्थित होते हैं।

मेष संक्रान्तिवेलायां स्वर भेदं विचारयेत्।
संवत्सर फलं बुयाल्लोकानां तत्वचिन्तकः।।

मेष संक्रांति के समय स्वर की परख करनी चाहिए और संवत्सर (वर्ष भर) के शुभ-अशुभ के विषय में तत्व ज्ञानी को भविष्यवाणी करनी चाहिए।

पृथिव्यादिकतत्वेन दिन मासाब्दजं फलम्।
शोभनं च यथा दुष्टं व्योम मारुत वह्निभिः।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिन, महीने और वर्ष का विचार तत्वों से करना चाहिए, आकाश, वायु और अग्नि तत्व का विपरीत फल होता है और शेष जल तथा पृथ्वी का शुभ।

सुभिक्षं राष्ट्र वृद्धिः स्याद् बहुसस्यावसुंधरा।
बहुवृष्टिस्तथा सौरव्यं पृथ्वी तत्वं वहेघति।।

यदि पृथ्वी तत्व प्रवाहित हो रहा हो, तो उस वर्ष राष्ट्र की उन्नति होती है, अधिक पैदावार होती है और सुख संपन्नता में वृद्धि होती है।

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौरव्यमेव च।
बहुसस्या तथा पृथ्वी अप्तत्व वै वहेद् यदि।।

यदि जल तत्व प्रवाहित हो रहा हो, तो उस वर्ष में बहुत वर्षा होती है, रोगों का क्षय होता है, अन्न अधिक पैदा होता है।

दुर्भिक्षं राष्ट्रभंगः स्यादुत्पत्तिश्च विनश्यति।
अल्पादल्पतरा वृष्टिरग्नि तत्वं वहेद् यदि।।

यदि अग्नि तत्व प्रवाहित हो रहा हो, तो उस वर्ष राष्ट्र की हानि होती है, अकाल जैसी स्थिति हो सकती है चूँकि फसल का विनाश हो जाता है, वर्षा अत्यल्प होती है।

उत्पातोपद्रवों भीतिरल्पा वृद्धिः स्युरीतयः।
मेष संक्रांति वेलायां वायु तत्वं वहेद्यदि।।

यदि वायु तत्व प्रवाहित हो रहा हो, तो उस वर्ष अधिक उत्पात होते हैं, वर्षा कम होती है और भय का वातावरण बना रहता है।

मेष संक्रांति वेलायां व्योम तत्वं वहेद् यदि।
तत्रापि शून्यता ज्ञेया सस्यादीनां सुखस्य च।।

मेष संक्रांति वेला में प्रातःकाल के समय यदि आकाश तत्व प्रवाहित हो रहा हो, तो उस वर्ष फसल सूख जाती है और अभाव की स्थिति आ जाती है।

पूर्ण प्रवेशने श्वासे सस्यं तत्वेन सिध्ययति।
सूर्य चन्द्रे अन्यथा भूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः।।

पूर्ण स्वर अर्थात् श्वास के प्रवेश के समय फसल की रोपाई करें और जब स्वर विपरीत चल रहा हो, तो फसल अथवा धान का संग्रह करें।

विषमे वह्नितत्वं स्याज्जायते केवलं नमः।
तत्कुर्याद्वस्तु संग्राहो द्विमासे च मंहर्घता।।

सूर्य स्वर के चलते समय अग्नि तत्व चले और लगे कि आकाश तत्व भी चलने लगा है, तो वस्तुओं को खरीद करके संग्रह कर लें चूँकि दो मास में बाजार में मँहगाई होने की संभावना है।

खौ संक्रमते नाड़ी चन्द्रमंते प्रसर्पिता।
खानिले वाह्नियोगेन रौर वं जगतीतले।।

रात्रि के प्रारंभ में सूर्य स्वर तथा प्रातः के प्रारंभ में चंद्र स्वर चले और इसमें अग्नि तत्व, वायु तत्व या आकाश तत्व का योग हो, तो कई प्रकार के अनर्थ होते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गमनागमन भविष्य

ज्ञानार्णव में कहा गया है—

आयाति गतो वरुणो भौमे तत्रैव तिष्ठति सुखेन।
यात्यन्यत्र श्वसने मृत इति वह्नौ समादेश्यम्।

यदि कोई परदेश में बसे व्यक्ति के विषय में प्रश्न करे, तो अपना तत्व देखें और उसके आधार पर उत्तर दें—जल तत्व में प्रश्न किया गया हो, तो वह मनुष्य वापस आयेगा, ऐसा बता दें, पृथ्वी तत्व में प्रश्न हो, तो वह व्यक्ति सुखपूर्वक वहाँ रह रहा है, ऐसा कहें। पवन तत्व में प्रश्न हो, तो व्यक्ति वहाँ से अन्यत्र गया हुआ समझें और यदि अग्नि तत्व में प्रश्न किया हो, तो व्यक्ति को मृत समझें और परिस्थिति अनुरूप उत्तर दें।

परदेश गमन के समय यदि सूर्य स्वर रहते ही चलना हो, तो विषम पग से आग से चलें और चंद्र स्वर में गमन करना हो, तो सम पग से आगे बढ़ें। इस बात को ठीक से समझ लें—यदि सूर्य स्वर में चलना हो, तो दाहिने पग से एक, तीन, पाँच, सात, कदम चल कर स्वाभाविक चाल चलें, यदि चंद्र स्वर में चलना हो, तो दो, चार, छः, आठ कदम बायें पग से आगे बढ़ें तब स्वाभाविक चाल पर आयें। यदि वार और तिथि का भी स्वर के साथ मेल हो रहा हो, तो ऐसे समय का प्रस्थान सब प्रकार की मनोकामनायें सिद्ध करता है, जैसे कि सोम, बुध, बृहस्पति तथा शुक्रवार आदि कोई दिन हो और तिथि भी चंद्र की हो, तो चंद्र स्वर में सम पग आगे रखते हुए चलना मंगलकारी होगा।

चंद्र स्वर चलते हुए जो व्यक्ति दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर जाता है वह खूब सुख सम्मान भोगकर घर में वापस आ जाता है। इसी प्रकार सूर्य स्वर के चलते पूर्व तथा उत्तर दिशा में प्रयाण करने वाला सफल होता है। अतः विभिन्न दिशाओं में अपनी चलती नाड़ी का ध्यान रखते हुए ही गमन करना चाहिए। नाड़ी से विपरीत दिशा में जाने से कार्य सिद्धि नहीं होती, व्यक्ति कष्ट भी पाता है और कभी-कभी तो मृत्यु भी हो जाती है। चंद्र स्वर में पूर्व तथा उत्तर दिशा में नहीं जाना चाहिए और सूर्य स्वर में दक्षिण और पश्चिम दिशा में।

दूर देश में जाना हो तो प्रबल योग में प्रस्थान करना अच्छा है, निकट ही जाना हो तो मध्यम योग में भी जा सकते हैं। वैसे क्रूर तथा सौम्य कार्यों के आधार पर सूर्य तथा चंद्र स्वर तथा दिशा का ध्यान रख कर कार्य करना भी लाभदायक रहता है। ऊर्ध्व दिशा का स्वामी चंद्र है और अधो दिशा का स्वामी सूर्य।

सुषुम्ना स्वर में परदेश गमन का निषेध है अन्यथा कष्ट, हानि तथा मरण की बात मनीषियों ने लिखी है।

वर्षा भविष्य

वर्षा संबंधी प्रश्न पृथ्वी तत्व में किया जाय, तो वर्षा बरसने का योग होता है। जल तत्व में कोई प्रश्न करे, तो भी मन इच्छित वर्षा होती है, परंतु वायु तत्व के समय प्रश्न किया जाय, तो बादल तो घिरेंगे, परंतु वर्षा नहीं होगी और अग्नि तत्व में प्रश्न पूछने पर अल्पवृष्टि की बात बता दें।

वर्षति भौमे मघवा वरुणेऽभिमतो मतस्तथाजस्रम्।
दुर्दिन घनाश्च पवने वह्नौ वृष्टिः कियन्मात्रा।।

(ज्ञानार्णव प्र० 29)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपज संबंधी भविष्य

सस्यानां निष्पत्तिः स्याद्वरुणे पार्थिव च सुश्लाध्या।
स्वल्पापि न चाग्नेये वायवाकाशे तु मध्यस्था।।

(ज्ञानार्णव)

कोई व्यक्ति अनाज की उत्पत्ति से अर्थात् फसल से संबंधित प्रश्न करे, तो उत्तरदाता अपना तत्व देखे। पृथ्वी तत्व तथा जल तत्व हो, तो फसल अच्छी होगी। वायु तथा आकाश तत्व में मध्यम उपज होगी और अग्नि तत्व हो, तो स्वल्प धान्य भी नहीं होता।

छिपी वस्तु बताना

पवन प्रवेश काले जीव इति प्रोच्यते महामतिभिः।
निष्क्रमणे निर्जीवः फलमपि च तयोस्तथा ज्ञेयम्।।

श्वास अंदर लेते समय यदि कोई किसी छिपी हुई वस्तु के विषय में प्रश्न करे, तो वह जीवित वस्तु होगी और यदि पवन अर्थात् श्वास निकलते समय प्रश्न करे, तो वह निर्जीव वस्तु होती है ऐसा विद्वानों का मत है तथा इसी आधार पर इनका फल बताया जाता है। सुख-दुःख, जय-पराजय, लाभ-हानि भी इसी आधार पर बताये जाते हैं। ज्ञानार्णव में कहा गया है—

जीवे जीवति विश्वं मृते मृतं सूरिभि समुद्दिष्टम्।
सुख दुःख, जय पराजय लाभालाभादि मार्गोऽयम्।।

अधिक सूक्ष्म में जाने के लिए पाँचों तत्वों में पच्चीस भेदों को जानना आवश्यक है उसके लिए मुख के स्वाद की चाह को पहचानने का प्रयत्न करें—

पृथ्वी तत्व में मधुर, जल तत्व में कसेला, वायु तत्व में तीखा, अग्नि तत्व में खारा तथा आकाश तत्व में कड़ुवे स्वाद की चाह होती है, जिस समय जैसे रस के स्वाद की इच्छा मन में हो उस समय उसी तत्व को अपने स्वर में समझ लें।

गर्भ संबंधी भविष्य

यदि कोई गर्भ संबंधी प्रश्न चलते स्वर की ओर से करे, तो बता दें गर्भ नहीं है और यदि बंद स्वर की तरफ आकर प्रश्न करे, तो समझ लें कि गर्भ है। यदि जल तथा पृथ्वी तत्व में प्रश्न किया गया है, तो पुत्र उत्पन्न होता है और यदि अग्नि तथा वायु तत्व में प्रश्न किया गया हो, तो कन्या होती है। खाली स्वर में प्रश्न हो, तो गर्भ नष्ट होने की पूरी संभावना है। यदि प्रश्नकर्ता सन्मुख बैठकर प्रश्न करे, तो संतान नपुंसक होने का योग बनता है। यदि प्रश्न करते समय दोनों स्वर पूर्ण भरे हो, तो दो बालक होंगे। यदि स्वर बदलते समय में प्रश्न हो, तो गर्भ की हानि होती है दोनों ओर सम स्वर चल रहा हो, तो कुशल क्षेम कह दें।

जिस ओर का स्वर चल रहा हो, उसी ओर से प्रश्नकर्ता प्रश्न करे और प्रश्नकर्ता पुरुष हो तो पुत्र उत्पन्न होगा, खाली स्वर की ओर से पूछे तो पुत्री हो। यदि चंद्र स्वर चलता हो और उसी ओर से प्रश्न किया जाय तो पुत्री होगी, बता दें। यदि सूर्य स्वर चलते में चलते स्वर की ओर से ही प्रश्न पूछा जाय तो पुत्र होगा, बता दें। सुषुम्ना स्वर चलते में प्रश्न किया जाय, तो संतान नपुंसक होती है।

यदि प्रश्नकर्ता चंद्र स्वर में हो और उत्तरदाता सूर्य स्वर में और सूर्य स्वर की ओर से ही कोई गर्भ संबंधी प्रश्न करे, तो पुत्र तो होगा, परंतु अल्पायु होगा। यदि उत्तरदाता और प्रश्नकर्ता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों सूर्य स्वर में हों, तो पुत्र दीर्घायु एवं सुख देने वाला होगा ऐसा कहें, यदि उत्तरदाता चंद्र स्वर में हो और प्रश्नकर्ता सूर्य स्वर में, तो पुत्री होगी, परंतु अल्पायु होगी। यदि दोनों चंद्र स्वर में हों, तो कन्या दीर्घायु होगी, बता दें।

यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्व चलता हो, तो गर्भ संबंधी प्रश्न होने पर रूपवान, राजमान्य पुत्र होगा, ऐसा कहें, यदि सूर्य स्वर में जल तत्व चलते समय प्रश्न किया गया हो, तो सुखी धनवान् छः रसों का भोगी पुत्र उत्पन्न होता है। यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी अथवा जल तत्व हों, तो प्रश्नकर्ता को बतायें कि पुत्र जन्म होगा, यदि चंद्र स्वर में यह दोनों तत्व हों, तो कन्या होगी जो बहुत धनवती, रूपवती और षट रस भोगने वाली होगी। अग्नि तत्व में प्रश्न किया गया हो, तो गर्भ गिरने का योग है, यदि संतान हुई भी तो अल्पायु होगी। यदि वायु तत्व प्रश्न करते समय बह रहा हो, तो केवल पिंडाकृति ही निर्मित हुई बतायें जो निकल जायगी। यदि सूर्य स्वर में आकाश तत्व चल रहा हो, तो नपुंसक पुत्र का जन्म होता है और चंद्र स्वर में आकाश तत्व चल रहा हो तो बाँझ पुत्री का जन्म समझ लें। यदि प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों सुपुम्ना स्वर में हों, तो दो कन्याओं की पुष्टि करता है। यदि चंद्र सूर्य दोनों स्वर चलते हों और सूर्य तेजी से चल रहा हो, तो दो पुत्रों का जन्म संभव है, यदि ऐसे में चंद्र स्वर तेज चले, तो दो कन्याओं के जन्म की संभावना है।

तत्वों के आधार पर गर्भ तथा जन्म की बात पर विचार करें तो आप देखेंगे कि—

नारी के पृथ्वी तत्व के समय गर्भ में आने वाला राजमान्य अथवा राजा, बहुत सुखी और रूप लावण्य युक्त होगा। जल तत्व में गर्भ रहे, तो जातक धनवान्, भोगी, सुखी, चतुर, विलक्षण तथा नीतिवान् होगा। अग्नि तत्व में गर्भ में आने वाला अल्पायु होता है यदि जीवित भी रहा, तो दुःखी रहेगा और माता की मृत्यु हो जायगी। वायु तत्व में गर्भ में आने वाला दुःखी, देश भ्रमण करने वाला, विकल चित्त वाला और मूर्ख होगा। आकाश तत्व में गर्भ रहे, तो गर्भ नष्ट होने की संभावना रहती है।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर दी जाय कि गर्भधारण करने का समय ही यहाँ महत्वपूर्ण है अर्थात् वह समय जब गर्भ में कोई आत्मा प्रवेश करती है। गर्भ में आत्मा के प्रवेश के समय को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग संभोग के समय ही आत्मा का प्रवेश गर्भ में होना मानते हैं, तो कुछ कहते हैं कि पुंसवन संस्कार होते समय, कोई तीन मास बाद आत्मा के प्रवेश की बात करते हैं, तो कोई जन्म के समय जातक के शरीर में आत्मा प्रविष्ट होने की विचारधारा वाले हैं। यदि हम मोटी बुद्धि से ही विचार करें, तो इतना तो हम जानते ही हैं कि किसी भी स्त्री के गर्भ में मृत शिशु नहीं ठहर सकता जीवित शिशु ही गर्भ में विकसित हो पाता है और जीवित होने का अर्थ है शिशु में अथवा भ्रूण में आत्मा है। मानव गर्भ पूर्ण विकसित होने में लगभग नौ से दस मास का समय लगता है अतः स्पष्ट है कि नौ-दस माह जीवित भ्रूण ही गर्भ में विकसित हुआ। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गर्भ स्थापन के उपयुक्त मैथुन के समय ही आत्मा का प्रवेश स्त्री के डिंब में हो जाता है, जहाँ पर शुक्र कीट के संयोग से उस डिंब में रासायनिक क्रिया प्रारंभ हो जाती है, जो अंततः गर्भ का रूपधारण कर लेती है। अब चूँकि गर्भ स्थापन करने वाले मैथुन की तिथि निश्चित जान लेना सहज नहीं रहता, इसलिए सामान्यजन प्रायः मासिक स्राव बंद हो जाने वाली तिथि में गर्भ के नौ-दस मास की गणना करने का विधान बनाया गया है। जो संवेदी हैं और ध्यान रख सकते हैं, वे गर्भ स्थापन होते ही स्थिति को भाँप लेते हैं। कुछ महिलाओं को तो आधी-सी श्वास उसी क्षण से प्रतीत होने लग जाती है और वे गर्भ की स्थिति समझ लेती हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब आगे जन्म देते समय तत्वों की स्थिति पर विचार करते हैं—

प्रसव के समय महिला का स्वर पृथ्वी तत्व में प्रवाहित हो रहा हो, तो पुत्र उत्पन्न होता है और जल तत्व हो, तो कन्या होती है। इसे इस प्रकार समझना चाहिए कि यदि पुत्र गर्भ में है, तो प्रसव के समय महिला की श्वास पृथ्वी तत्व में प्रवाहित होती है और गर्भ में कन्या हो तो श्वास जल तत्व में होती है। यह बात स्पष्ट इसलिए करना आवश्यक हो गया कि कोई यह न सोचे कि क्या जन्म के समय लिंग परिवर्तन होता है ? प्रसव के समय वायु तत्व, अच्छा संकेत नहीं देता, पिंडाकृति गलने का अंदेशा है। अग्नि तत्व में भी गर्भ गिर जाता है और आकाश तत्व में उत्पन्न जातक नपुंसक या बांझ हो जाता है।

गर्भ के विषय में स्वर निर्णय पर विचार करें, तो निर्देश है कि स्वर संक्राति अर्थात् स्वर परिवर्तन के समय यदि कोई गर्भ संबंधी प्रश्न करे अथवा स्वर परिवर्तन काल में गर्भाधान हो, तो गर्भ नष्ट हो जाने का योग बनता है।

सूर्य स्वर प्रवाहित पुरुष सुपुम्ना स्वर के समय शुक्रस्खलन करे, तो अंगहीन और कुरूप पुत्र होता है। यदि शुक्रस्खलन से पूर्व सूर्य स्वर चल रहा हो और स्खलन होते ही चंद्र स्वर चलने लगे तो गर्भधारण नहीं होता।

रोग संबंधी भविष्य

महीतत्वे स्वरोमश्च जले च जलमातृ तः।
तेजसि खेटाबाटीस्थ शाकिनी पितृदोषतः।।

पृथ्वी तत्व प्रवाहित होते समय यदि कोई रोग संबंधी प्रश्न करे, तो रोग का कारण पूर्व जन्म के संस्कार समझें। यदि प्रश्न के समय जल तत्व हो, तो जल देव ने रोगी बनाया समझें और यदि अग्नि तत्व के समय कोई पूछे, तो शाकिनी डाकिनी अथवा पितृदोष से रोग की उपस्थिति बता दें।

आदौशून्यगतो दूतः पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि।
मूर्छितोअपि ध्रुवं जीवेद्यदर्थं प्रतिपृच्छति।।

यदि प्रश्नकर्ता शून्य अर्थात् खाली स्वर की ओर बैठे और फिर पूर्ण स्वर की तरफ जा बैठे और रोग संबंधी प्रश्न करे, तो रोगी अवश्य ठीक हो जायगा, ऐसा बोल दें।

यस्मिन्नंगे स्थितो जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति।
तदा जीःवित जीवोअसौ यदि रोगैरुपद्रतुः।।

यदि प्रश्नकर्ता अथवा स्वयं रोगी पूर्ण स्वर की ओर बैठकर प्रश्न पूछे, तो रोग कितना भी भयंकर हो, रोगी जीवित रहेगा।

दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत्।
तदा जीवति जीवोअसौ चन्द्रे समफलं भवेत।।

यदि सूर्य स्वर प्रवाहित हो रहा हो और प्रश्नकर्ता कुछ भयंकर बात कर दे, तो रोगी मरेगा नहीं। केवल चंद्र स्वर का परिणाम सम होता है।

जीवाकरं चवा धृत्वा जीवाकारं विलोक्य च।
जीवस्थो जीवित प्रश्ने तस्यस्याज्जीवितं फलम्।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राण को धारण करके तथा प्राण के स्वरूप को देख करके प्राण के विषय में प्रश्न करने पर रोगी या प्रश्नकर्ता को जीवन प्राप्त होता है।

वामाचारे तथा दक्षे प्रवेशे यत्र वाहने।
तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्नसंशयः।।

यदि प्रश्नकर्ता का प्रश्न चंद्र स्वर में हो, तो रोग पीड़ित रोगी भी उपाय करने पर जी उठेगा, इसमें संशय नहीं है।

प्रश्नचाधः स्थितो जीवो नूनं जीवो हि जीविते।
ऊर्ध्वचार स्थितो जीवो जीवो याति यमालयम्।।

प्रश्नकर्ता यदि नीचे बैठकर प्रश्न करे, तो रोगी जीवित रहेगा और यदि प्रश्नकर्ता ऊपर खड़े-खड़े प्रश्न करे तो बचना मुश्किल है।

विपरीताक्षर प्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्त्रोदये सति।।

यदि प्रश्नकर्ता विपरीत अक्षर में प्रश्न करे और शून्य अथवा खाली नाड़ी की ओर से विषम स्वर में पूछे, तो उत्तर अशुभ ही रहेगा।

चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्यस्थाने तु पृच्छकः।
तदा प्राणवायुक्तो असौ यदि वैद्य शतैर्वृतः।।

यदि चंद्र स्वर में जीव हो और सूर्य की ओर से प्रश्नकर्ता प्रश्न पूछे तो रोगी नहीं बच सकता।

पिंगलायां स्थितो जीवः वामे दूतस्तु पृच्छति।
तदा अपि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः।।

यदि प्रश्नकर्ता बाईं ओर से पूछे और सूर्य स्वर चल रहा हो, तो महेश्वर भी बचायें तो रोगी नहीं बचेगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

13 वशीकरण

वशीकरण कई प्रकार का होता है—स्त्री वशीकरण, राजा वशीकरण, पति वशीकरण, शत्रु वशीकरण आदि। वशीकरण के लिए स्वर योग का उपयोग भी किया जाता है वैसे तंत्र में बीसियों प्रकार के विधान वशीकरण तथा समोहन के लिए बताये गये हैं। स्त्री वशीकरण का उपयोग केवल प्रिया को प्रिया बनाये रखने के लिए ही करना उचित है, परस्त्री पर वशीकरण करना अपराध और पाप दोनों ही हैं। शिव स्वरोदय में वशीकरण की बात भी पति-पत्नी में प्रेम व्यवहार तथा गृह कलह शांत बने रहने तक की ही बताई गई है।

चन्द्र सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीव मंडले।
आजन्मवशगा रामा कथिते यं तपोधनैः।।

बड़े-बड़े तपस्वियों ने ऐसा कहा है कि जो पुरुष स्त्री के चंद्र स्वर को अपने सूर्य स्वर से आकर्षण करके अपने जीव स्वर के मंडल में टिकावे, तो स्त्री जन्मभर उसके वश में रहती है।

इस बात को थोड़ा स्पष्ट कर दिया जाये—जो पुरुष स्त्री के बायें स्वर को अपने दाहिने स्वर से खींचे, अर्थात जब स्त्री का बायाँ स्वर चल रहा हो, तो पुरुष का दाहिना स्वर तब यह क्रिया करे और कुंभक अर्थात् श्वास रोक करके अपनी नाक को स्त्री की नाक से दूर कर ले, फिर श्वास छोड़े। ऐसा कई बार करे, तो क्रिया सफल हो।

रात्र्यन्तयाम वेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने।
ब्रह्म जीवं पिवेद्यस्तु बाला प्राण हरो नरा।।

रात्रि के पिछले प्रहर में जो पुरुष सोती हुई स्त्री के ब्रह्म जीव अर्थात् सुषुम्ना स्वर को पीता है, वह उस स्त्री के प्राणों को वश में करता है।

आचार्यों ने इस योग के साथ अष्टाक्षर मंत्र के उपयोग की बात भी कही है—

अष्टाक्षर जपित्वा तु तस्मिन् काले गते सति।
तत्क्षण दीयते चन्द्रौ मोहमायाति कामिनी।।

उसके पश्चात् जो पुरुष अष्टाक्षर मंत्र का जप करते हुए अपना चंद्र स्वर स्त्री को देता है, तो वह कामिनी उसी क्षण मोह को प्राप्त हो जाती है—

अष्टाक्षर मंत्र विभिन्न आचार्यों ने अलग-अलग बनाये हुए हैं—

ॐ णमो अरहंताणं

ॐ णमो आइरियाणं

ॐ नमो उपाध्यायेभ्यः

ॐ णमो उवज्झायाणं

ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ अर्ध नारीश्वराय

ॐ नमो शक्ति शिवाय

दुर्गा दुर्गति नाशिनी

ॐ नमः काम देवाय

आगे कहा गया है कि शयन करते समय, मैथुन करते समय अथवा युवती को आलिंगन करते समय, जो पुरुष अपने सूर्य स्वर से स्त्री के चंद्र स्वर को पीता है वह पुरुष काम देव के समान स्त्री के मान को मोहता है।

शयने वा प्रसंगे वा युवत्यालिंगने ऽपि वा।
यः सूर्येण पिवेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः।।

आगे कहा गया है—

शिव आलिंग्यते शक्तया प्रसंगे दक्षिणेऽपि वा।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोह्येत्कामिनी शतम्।।

पुरुष (शिव) अपने सूर्य स्वर में स्त्री (शक्ति) के चंद्र स्वर को मैथुन के समय ले ले अथवा स्त्री के सूर्य स्वर में अपना चंद्र स्वर दे दे, तो वह पुरुष सौ कामिनियों को मोह सकता है। स्पष्ट है कि मैथुन अथवा आलिंगन के समय पुरुष अपनी प्रेमिका के स्वर को पहचाने। यदि स्त्री चंद्र स्वर में हो, तो अपने सूर्य स्वर से उसका आकर्षण करे और यदि स्त्री सूर्य स्वर में हो, तो अपने बाएँ स्वर की श्वास उसे पीने दें, इससे स्त्री शीघ्र स्खलित होती है।

वशीकरण का अर्थ आलिंगन हो जाना अथवा मैथुन कर लेना भर नहीं है। यह तो मन का आकर्षण है। यह बात निम्न श्लोक से सिद्ध होती है—

सप्त नव त्रयः पंच वारान् संगस्तु सूर्य भे।
चन्द्रे द्वि तुर्यषट् कृत्वा वश्या भवति कामिनी।।

स्त्री का चंद्र स्वर चलता हो तथा पुरुष का सूर्य स्वर चलता हो, तो इन दोनों स्वरों के मेल से विषम संख्या में तीन, पाँच, सात, या नौ बार मैथुन हो जाय अथवा स्त्री के सूर्य स्वर के समय पुरुष के चंद्र स्वर में सम संख्या में दो, चार, छः, बार संगम हो, तो कामिनी वश में होती है।

एक अन्य विधि के अनुसार सूर्य चंद्र स्वरों का मेल करते हुए वशीकरण की बात भी कही है, ऐसे में स्वर की पहचान करने की भी आवश्यकता नहीं है।

सूर्य चंद्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याऽधरोष्ठयोः।
महापद्म मुखं स्पृष्ट्व वारं वार मिदं चरेत्।।

अपने सूर्य और चंद्र स्वर को सर्प की गति से खींचकर अधरोष्ठों पर स्त्री के मुख से अपना मुख स्पर्श करके बारंबार चंद्र और सूर्य का मेल करे। आगे क्रिया को पूर्ण करने के लिए कहा गया है कि—

आप्राणमिति पद्मस्य यावन्निद्रावशं गता।
पश्चाज्जागृति वेलायां चोप्येते गल चक्षुषी।।

जब तक स्त्री निंद्रा में रहे उक्त प्रकार से स्त्री मुख कमल का पान करे उसके पश्चात् उसके जागने के समय गले और नेत्रों का चुंबन करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञानर्णव प्र० 29 में कहा गया है—

शयनासनेषु दक्षैः पूर्णांगनिवे शितासु योषासु।
ह्रियते चेतस्त्वरितं नातोऽन्यद्वश्य विज्ञानम्।।

प्रवीण पुरुषों के द्वारा भरे स्वर में निवेशित स्त्रियों के चित्त त्वरित ही हर लिए जाते हैं, इससे अन्य वश करने का कोई भी दूसरा उत्तम विज्ञान नहीं है। पुरुष वशीकरण के लिए भी कहा गया है—

जीवेन गृह्यते जीवो-जीवो जीवस्य दीयते।
जीवस्थाने गतो जीवो बाला जीवान्त कारकः।।

स्त्री अपने चलते स्वर (श्वास) से पुरुष के श्वास का आकर्षण करे और पुरुष अपने चलते स्वर से स्त्री के श्वास का आकर्षण करे, तो जीव के स्थान में गया हुआ जीव पुरुष स्त्री में जन्म भर आकर्षण उत्पन्न करता है।

ज्ञानार्णव में एक और वशीकरण प्रयोग किया गया है, जिसके द्वारा राजा, अधिकारी, गुरु, बंधु, वृद्धजन तथा अन्य जनों को अपने अनुकूल बना लिया जाता है—

नृपति गुरु बंधु वृद्धा अपरेऽप्यभिलषित स्त्रीलोकः।
पूर्णांगे कर्तव्या विदुषा वीत-प्रपञ्चेन।।

अर्थ—राजा, गुरु, बंधु, वृद्ध पुरुष तथा अन्य लोगों से भी जो वांछित प्राप्ति चाहते हों, तो प्रपंच रहित विद्वानों को चाहिए कि भरे स्वर की ओर उन्हें बिठाकर वार्तालाप करे, वे अनुकूल रहेंगें।

आगे कहा गया है—

अरि ऋणिक चौर दुष्टा अपरेप्युपसर्ग विग्रहाद्याश्च।
रिक्तांगें कर्तव्या जय लाभ सुखार्थिभिः पुरुषैः।।

अर्थ—शत्रु, ऋण वाला, चोर दुष्ट पुरुष तथा अन्य ऐसे लोगों के वशीकरण हेतु तथा उपसर्ग युद्ध आदि कार्यों में जय लाभ का सुख चाहने वालों को तत्संबंधी वार्तालाप या कार्य रिक्त अंग (खाली स्वर या बंद स्वर) की ओर उन्हें कर के करने चाहिए।

एक और सुंदर वशीकरण है—

अपना मालिक, गुरु अथवा अधिकारी या बुजुर्ग किसी भूल पर क्रोधित होकर दंड देने के लिए बुलावे, तो जाते समय जो स्वर चलता हो उधर का पग पहले उठावे, फिर मालिक आदि के सामने पहुँच कर अपना स्वर देखे—यदि चंद्र स्वर हो तो मालिक के दाहिनी ओर खड़ा होवे और यदि सूर्य स्वर हो, तो मालिक के बाईं ओर खड़ा होवे और उनके प्रश्नों के उत्तर दें, तो कुशलतापूर्वक वापस आये और मालिक का प्यार बढ़े।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

14 मृत्यु और उससे बचाव

स्वरोदयशास्त्र से बहुत से सांसारिक और आध्यात्मिक प्रश्नों के हल निकालते समय काल ज्ञान अर्थात् मृत्यु के समय का ज्ञान जानने की इच्छा व्यक्ति में उद्‌भूत हो जाना स्वाभाविक है। यूँ कहने को तो यहाँ कहा जाता है कि साधक कभी भी अपनी मृत्यु के बारे में जानने की इच्छा न करे, परंतु वास्तविकता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति सर्वप्रथम अपने बारे में ही पहले जानने की इच्छा करता है। इस विषय में स्वरोदय शास्त्र का कथन है कि काल गणना के लिए मास,पक्ष तथा वर्ष के प्रारंभ में वायु के प्रवाह पर ध्यान दें।

मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम्।
क्षयकालं परीक्षेत वायु चार वशात्सुधीः।।

आगे स्वरोदय विज्ञान का मानना है कि यदि शरीर को पंच तत्वों से निर्मित दीपक मान लें, जो शिव स्नेह अर्थात् तेल से सींचा जा रहा है, तो सूर्य की वायु से रक्षित करने से जीव स्थिर रहता है अर्थात् व्यक्ति जीवित रहता है।

जो अपनी प्राण वायु को वश में करके सूर्य स्वर को बाँध लेता है वह अभ्यास करने पर सूर्य स्वर की अनुपस्थिति में भी जीवित रहता है।

मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बंधयते यदि।
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकाले अपिवंचिते।।

शिव स्वरोदय में कहा गया है—

गगनात्स्रवते चंद्रः कायपद्‌मानि सिंचयेत्।
कर्मयोग सदाभ्यासैरमरः शशि सश्रयात्।।

कर्मयोगी अभ्यासी सदैव ऊपर होते हैं चूँकि उन्हें आसमान से चंद्रमा अमृत के द्वारा सींचता है।

शशांक वारयेद्रात्रौ दिवा वार्योदिवाकरः।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः।।

रात्रि में चंद्र स्वर तथा दिन में सूर्य स्वर को रोकने का अभ्यास करने वाला निश्चय ही योगी होता है। इस प्रकार दिन में चंद्र स्वर चलायें और रात्रि में सूर्य स्वर चलाने की सलाह स्वरोयशास्त्र देता है।

काल ज्ञान के विष्य में शास्त्र का मत है कि—

अहो रात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः।
तदा तस्य भवेन्मृत्युः सम्पूर्णे वत्सरत्रये।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस व्यक्ति का एक ही स्वर दिनरात अर्थात् चौबीस घंटे चलता रहे, तो वह तीन वर्ष में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

अहो रात्रद्वयं यस्य पिंगलायां सदा गतिः।
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्व वेदिभिः।।

दो दिन रात अर्थात् अड़तालीस घंटे जिसका सूर्य स्वर चलता रहे, तो उसका जीवन दो वर्ष का तत्व ज्ञानियों ने कहा है।

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः।
तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदंति मनीषिणः।।

तीन रात अर्थात् बहत्तर घंटे जो एक ही स्वर से श्वास ले, वह एक वर्ष तक ही जी पाता है, ऐसा मनीषियों ने कहा है।

रात्रौ चंद्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरंतरम्।
जानीयात्तस्य वै मृत्युःषण्मासाभ्यन्तरे भवेत्।।

जिस व्यक्ति का सूर्य स्वर दिन में और चंद्र स्वर रात्रि में निरंतर बहता है, उसका जीवन छः मास का शेष रहता है।

लक्ष्यं लक्षित लक्षणेन् सलिले भानुर्यदा दृश्यते।
क्षीणो दक्षिण पश्चिमोत्तर पुरः षट्त्रिद्विमासैकतः।।
मध्ये छिद्रमिदं भवेददश दिनं धूमाकुलं तद्दिने।
सर्वज्ञै रपि भाषितं मुनिवरैण्युः प्रमाणं स्फुटम्।।

मृत्यु के विषय में विचार करने के लिए शास्त्र एक युक्ति बताता है कि एक काँसे के पात्र को जल से भरकर उसमें सूर्य का प्रतिबिंब देखें। यदि सूर्य का प्रतिबिंब दक्षिण दिशा की ओर दिखाई दे और कांति क्षीण हो, तो छः मास की आयु शेष जानें। यदि सूर्य का प्रतिबिंब पश्चिम दिशा में दिखाई पड़े, तो व्यक्ति तीन मास में मृत्यु को प्राप्त होता है। जब यह बिंब उत्तर की दिशा में क्षीण आभा वाला दिखे, तो दो मास जीवन शेष जानें और यदि प्रतिबिंब में छिद्र दिखाई दे, तो जीवन दस दिन शेष समझें, प्रतिबिंब पर धुआँ जैसा दिखाई दे, तो शीघ्रता से सभी कार्य निपटा दें चूँकि वही दिन आयु का शेष रहा होता है।

रोगी के बारे में कुछ पूछने आये व्यक्ति का अवलोकन करके रोगी के काल ज्ञान का निर्णय करने की विधि भी शास्त्र में दी है—

दूतः कृष्ण कषायकृष्णवसनो दन्तक्षतो मुण्डितः।
तैलाभ्यक्त शरीर रंजुककरो दीनश्च पूर्णोत्तरः।।
भस्मांगार कपालपाशभु शलो सूर्यो अस्त मायाति यः।
काली शून्य पदास्थितो गदयुतः कालानलास्यावृतः।।

यदि दूत अर्थात् रोगी के बारे में प्रश्न करने वाला लाल, भगवे, काले वस्त्र धारण किये हो, दाँत टूटे हुए हों, मुंडन किया हुआ हो, तेल मालिश किये हुए हो, रस्सी लिए हो, भस्म मले हुए हो, शर, पाश या मूसल लिए हो, समय सूर्यास्त का हो और प्रश्नकर्ता शून्य अर्थात् खाली स्वर यानी बंद स्वर की ओर बैठकर प्रश्न करे, तो रोगी को काल से घिरा हुआ समझकर बात करें।

अकस्माच्चित्त विकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः।
अकस्मादिन्द्रियोत्पातः सन्निपाताग्रलक्षणम्।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि अचानक ही शरीर में कष्ट होने लगे और अचानक ही कष्ट शांत हो जाय, अकस्मात ही इंद्रियों में विकार होने लगे, तो रोगी को सन्निपात से ग्रस्त समझ लें।

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृता भवेत्।
तदरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे।।

जिस रोगी का शरीर ठंडा हो जावे और प्रकृति अर्थात् स्वभाव बिगड़ जावे, तो उसका अरिष्ट होना ही है।

दुष्टशब्देषु रमते शुद्धशब्देषु चाप्यति।
पश्चातापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशय।।

जिस रोगी को दुष्ट शब्द अच्छे लगें तथा अच्छे शब्द बुरे लगते हों, तो ऐसा रोगी पश्चाताप में हाय-हाय करके मरता है।

हुँकारः शीतलो मस्यफूत्कारो बह्नि सन्निभः।
महावैद्यौ भवेत्यस्य तस्य मृत्युभवेद्ध्रुवम्।।

जिस रोगी की हुँकार में ठंडापन हो और फूत्कार अग्नि के समान अर्थात् गर्म हो, तो भले ही महावैद्य को बुला लें, उसकी मृत्यु ध्रुव के समान निश्चित है।

जिह्वां विष्णुपदं ध्रुवं सुरपदं संभातृकामंडल।
भेतान्येवमरुन्धतीममृत गुरु शुक्रं ध्रुवं वाक्षणमु।।
एतेष्वेकमपि स्फुटं न पुरुषः पश्येत्पुरः प्रेषितः।
सौ अवश्यं विशतीह कालवदनं संवत्सरादूर्ध्वतः।।

जिस रोगी को अपनी जीभ न दिखाई दे, जो आकाश न देख सके, ध्रुव तारा न दिखाई दे, देवताओं का मार्ग, अरूंधति, चंद्र, शुक्र, अगस्त तारा भी न देख सके, तो ऐसे रोगी की एक वर्ष के अंदर ही अंदर मृत्यु होनी चाहिए।

अरश्मि बिम्बं सूर्यस्य बहेः शीतांशुमालिनः।
दृष्ट्वैकादशमासायुर्नरश्चोर्ध्वं जीवति।।

जिस रोगी को सूर्य की आभा ही न दिखाई दे, अग्नि की ज्वाला भी न दिखे, तो वह ग्यारह मास तक जीने की आशा कर सकता है।

वाप्यां पुरीष मूत्राणि सुवर्णंरजतं तथा।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति।।

जो रोगी प्रत्यक्ष अथवा स्वप्न में किसी तालाब को देखकर मल-मूत्र विसर्जन कर देता हो अथवा सोना या चाँदी देखता हो, तो दस माह तक जीवित रह सकता है।

क्वचित्पश्यति यो दीपं सुवर्ण च कषान्वितम्।
विरूपाणि च भूतानि नवमासान्न जीवति।।

जिस रोगी को स्वर्ण और दीपक काले दिखाई दें, अन्य प्राणी विरूप दिखाई दें, तो वह नौ मास तक जी पाता है।

स्थूलांगोअपि कृशः कृशोअपि सहसा स्थूलत्वमालभ्यते।
प्राप्तो वा कनकप्रभा यदि भवेत्क्रूरो अपिकृष्णाच्छविः।।
शूरो भीरु सुधीर धर्मनिपुणः शान्तोविकारी पुमान्नित्येव।
प्रकृतिः प्रयाति चलनं मासाष्ठकं जीवति।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि कोई मोटा रोगी अचानक दुबला हो जाय अथवा कोई कृश रोगी मोटा हो जाय, काला व्यक्ति स्वर्ण के समान गोरा हो जाय, शूरवीर डरपोक प्रकृति का हो जाय धार्मिक अधर्मी हो जाय, शांत व्यक्ति अशांत प्रकृति का हो जाय, अर्थात् अचानक प्रकृति परिवर्तन हो जाय, तो उसकी आयु आठ मास की समझनी चाहिए।

पीडाभवेत्पाणितले च जिह्वामूले तथा स्याद्रुधिर च कृष्णम्।
विद्धं न सग्लायति यत्र दृस्ट्या जीवेन्मनुष्यश्च ही सप्तमासम्।।

जिस रोगी की जीभ की जड़ तथा हाथ की तली में पीड़ा हो, रुधिर काले रंग का हो जाय और नुकीली चीजें कष्ट न दें, तो वह सात मास तक जी सकता है।

मध्यांगुलीना त्रितयं न बक्रं रोगं बिना शुष्यति यस्यकंठः।
मुहर्मुहः प्रश्नवशेन जाड़्यात्षड्भिः समाभि प्रलयंप्रयाति।।

यदि हाथ के मध्य की तीन उँगलियाँ टेढ़ी न हो सकें, बिना कारण के कंठ शुष्क हो, मूर्ख के समान बातें करे, तो ऐसे रोगी की आयु छः मास शेष समझें।

न यस्य स्मरणं किंचिद्विद्यते भूतकर्मणि।
सो अवश्यं पंचमे मासि स्कन्धारूढ़ो भविष्यति।।

जो रोगी पूर्व में किये गये कर्मों का स्मरण न कर सके, वह पाँच मास में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

यस्य न स्फुरति ज्योतिः पीड़्यते नयनद्वयम्।
स्मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम्।।

जिस रोगी की आँखों में दर्द रहे और आँखों की चमक भी समाप्त हो जाय, तो उसका जीवन चार मास का समझें।

दन्तश्च वृषणौ यस्य न किंचिदपि पीड़्यते।
तृतीये मासि सोअवश्यं कालाज्ञायां भवेन्नरः।।

जिस रोगी के दाँतों तथा अंडकोष को दबाने पर दर्द होता हो, तो वह तीन मास तक जी सकता है।

कालो दूर स्थितो वापि येनोपादेन लक्ष्यते।
तं वदामि समासेन यथा दिष्टं शिवागमे।।

शिवागम के अनुसार काल की अवधि जानने का उपाय शास्त्र बताता है–

एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वा आदित्यं च पृष्ठतः।
निरीक्षेन्निजच्छायां कंठ देशे समाहितः।।

एकांत जंगल में जाकर सूर्य की ओर पीठ करके खड़े हो जायँ और अपनी परछाई के कंठ देश को निहारें।

ततश्चाकाशमीक्षेत 'ह्नी परब्रह्मणे नमः'।
अष्ठोत्तरशतं जप्त्वा तत पश्यति शंकरम्।।

तब आकाश की ओर देखें और 108 बार 'ह्रीं परब्रह्मणे नमः' मंत्र का जाप करें, तो शंकर जी दर्शन देते हैं।

शुद्ध स्फटिक संकाशं नाना रूपधरं हरम्।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत्।
वर्यद्वयेन तेनाथ कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभिन्न रूपों को धारण किये हुए शिवजी शुद्ध स्फटिक की भाँति शुभ्र हैं ऐसा ध्यान करते हुए छः मास तक उक्त मंत्र का जप करता रहे, तो शिवजी उसे प्रणियों का स्वामी बना देते हैं। जो दो वर्ष तक यही अभ्यास करता रहे, तो वह स्वयं शिव तुल्य बन जाता है।

त्रिकालज्ञत्वमोप्रोति परमानंदमेव च।
सततताभ्यासयोगेन नास्ति किंचित्सुदुर्लभम्।।

जो सतत अभ्यास में लगा रहता है, उसे तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है, वह परम आनंद में रहता है और कोई भी चीज उसके लिए दुर्लभ नहीं होती।

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योमि निर्मले।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः।।

जो व्यक्ति निर्मल स्वच्छ आकाश को काला देखता हो वह छः मास तक ही जी पाता है इसमें संदेह नहीं है।

पीते व्यधिर्भयं रक्ते नीले हानिं विनिर्दिशेत्।
नाना वर्णाऽथचेत्तस्मिन् सिद्धिश्चगीयते महान्।।

उसी प्रकार यदि आकाश पीला देखें, तो आधिव्याधि से पीड़ित होता है, यदि लाल आकाश दिखाई दे, तो भय उत्पन्न होता है, नीला दिखाई दे, तो हानि होती है और यदि रंग-विरंगा दिखाई दे, तो कई प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं।

अपने शरीर की छाया के आधार पर काल ज्ञान के बारे में जाना जा सकता है—

पदे गुल्फे च जठरे विनाशः क्रमशो भवेत्।
विनश्यतो यदा बाहू स्वयं तु म्रियते ध्रुवम्।।

पाँव, गुल्फ, पेट आदि की छाया यदि दिखाई देना बंद हो जाय या दोनों बाहें न दिखाई दें, तो जीवन लीला समाप्त समझनी चाहिए।

बामवाहुस्तया मार्यां नश्यत्येव न संशयः।
दक्षिणेबंधुनाशो हि मृत्यु माप्नोविनिर्दिशेत्।।

बाईं भुजा की छाया न दिखे, तो पत्नी का नाश हो जाता है और दाहिनी भुजा की छाया न दिखे, तो भाई का नाश तथा अपनी की मृत्यु समझ लें।

अशिरो मास मरण विना जंघे दिनाष्टकम्।
अष्टाभिस्कन्धनाशेन छाया लोपेन तत्क्षणात्।।

सिर की छाया न दिखे तो एक मास में मृत्यु जानें, जांध की छाया न दिखे तो आठ दिनों में, कंधों की छाया न दिखे, तो भी आठ दिनों में और यदि शरीर की ही छाया न दिखे, तो उसी क्षण मृत्यु समझ लें।

पुनः स्वर के आधार पर काल निर्णय करने के विषय में स्वरोदय शास्त्र का कथन है—

एकादिषोड़शाहानि यदि भानुर्निरंतरम्।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिकम।।

यदि निरंतर सोलह दिन तक सूर्य स्वर चलता रहे, तो ऐसे व्यक्ति की मृत्यु एक मास में हो जाती है।

सम्पूर्ण वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते।
पक्षेण जायते मृत्युः काल ज्ञानेन भाषितम्।।

यदि सूर्य स्वर ही चलता रहे, एक बार भी चंद्र स्वर न दिखाई दे, तो जीव की मृत्यु पंद्रह दिनों में ही समझें

मूंत्र पुरीषं वायुश्च समकालं प्रवर्तते।
तदासौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम्।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि मल, मूत्र तथा वायु एक साथ ही विसर्जित हो जायँ, तो ऐसे जीव को दस दिन का महमान समझें।

सम्पूर्ण वहते चंद्रः सूर्योनेवं च दृश्यते।
मासेन जायते मृत्युः काल ज्ञानेन भाषितम्।।

काल के ज्ञानियों ने कहा है कि जिस व्यक्ति का चंद्र स्वर ही चले, सूर्य स्वर न चले, उसकी आयु एक मास की समझें

अरुन्धती ध्रुवं चैन विष्णो स्त्रीणि पदानि च।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमंडलम्।।

जिसकी आयु समाप्त होने वाली होती है, उसे अरूंधती, ध्रुव, विष्णु के तीन पैर तथा मातृका मंडल दिखाई नहीं देते।

आगे स्वरोदय अरूंधती ध्रुव आदि के विषय में स्पष्ट करता है।

अरुन्धती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्र मेव च।
भ्रुवौ विष्णुपदं ज्ञेय तारक मातृमंडलम्।।

जिह्वा को अरुंधती, नासिकाग्र की ध्रुव भौहों (भृकुटियों) को विष्णु पद अर्थात् आकाश तथा ताराओं को मातृका मंडल कहा है।

नव ध्रुवं सप्तघोषं पंच तारां त्रिनासिकाम्।
जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम्।।

यदि नाक का अग्रभाग न दिखे तो नौ दिन में, कानों को बंद करने पर अंतः घोष न सुनाई दे तो सात दिनों में, तारा न दिखे तो पाँच दिनों में, नाक न दिखे तो तीन दिनों में और जीभ न दिखे तो एक ही दिन में मृत्यु समझ लें।

कोणावक्ष्णोरंगु लीभ्यां किंचित्पीड्यनिरीक्षयेत्।
यदा न दृश्यते बिंदुर्दशाहेन भवेन्मृतिः।।

यदि आँख के कोने को अँगुली थोड़ा दबाने पर चमकीला बिंदु न दिखाई दे, तो दस दिनों में मृत्यु समझ लें।

आगे स्वरोयशास्त्र मृत्यु से बचने के उपायों की चर्चा करता है। स्पष्ट है कि स्वरोय-शास्त्र मृत्यु को 'निश्चित' नहीं मानता व्यक्ति चाहे तो योग, ध्यान तपस्या आदि के द्वारा मृत्यु को टाल सकता है और टालता रह सकता है—

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च।
जपैर्ध्यानेन योगेन जायते काल वंचना।।

काल से बचने के लिए तीर्थ स्नान, दान तप आदि सुकर्म करें, तथा ध्यान योग आदि करें।

शरीरं नाशयंत्येते दोषा धातुमलास्तथा।
समस्तु वायुर्विज्ञेयो बलतेजो विविर्द्धनः।।

मल दोष शरीर का नाश करते हैं। सभी वायु (प्राणायाम के प्रयुक्त प्राणों से संबंध है) शरीर का पोषण करके बल तथा ते की बृद्धि करती हैं।

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम्।
योगाभ्यासत्वमायांति साध्याजप्यास्तु साध्यताम्।।

असध्याजी वितंघ्नन्ति न तत्रास्ति प्रतिक्रिया धर्म साधना के लिए शरीर की रक्षा करनी चाहिए। शरीर के दोष रोग आदि का निराकरण योगभ्यास के द्वारा करें अन्यथा यह रोग दोष शरीर का नाश कर देते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

15 तत्व उपचार ऊर्जा

भारतीय मतानुसार क्षिति जल पावक गगन समीर अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु नामक पाँच तत्वों से संपूर्ण सृष्टि तथा शरीर के निर्माण की बात सभी ने सुनी है। चीन के लोग भी पाँच तत्वों का चर्चा करते हैं। चीनी उपचार पद्धति फेंग शुई (Feng Shui) इन तत्वों को एक अलग रूप मे मानकर कार्य करती है। शमानिज्म (Shamanishm) जादू (Magic) होम्योपैथी (Homeopathy) तथा फेंगशुई (Fengshui) निश्चित ही प्रभावी है और क्रियात्मक है इसीलिए समय के साथ विकासित हो रही है। फेंग शुई की तत्व उपचार पद्धति यह मानकर चलती है कि जो शक्ति रोग का उपचार कर सकती है, वह पर्यावरण और घर का भी उपचार कर सकती है।

सर्वप्रथम अपना Architectual front door way ज्ञात करो चाहे वह उपयोग में आ रहा हो या नहीं। यदि आप किसी एपार्टमेंट में हैं, तो आपका आर्कीटेक्चुरल फ्रंट डोर वे बिल्डिंग का डोर वे नहीं है अपितु आपका अपने घर का दरवाजा है। दरवाजा चाहे सामने वाली दीवार के बाईं ओर हो या दाहिनी ओर हो, आप यह मानकर चलें कि सामने वाली front wall दीवार के मध्य में **जल तत्व** है। अब बाहर आकर घर या आफिस की ओर मुँहकर के सामने की दीवार के मध्य में खड़े हों, तो आपके बाईं ओर **लकड़ी** (Wood) तत्व है। घर के पीछे की दीवार (back

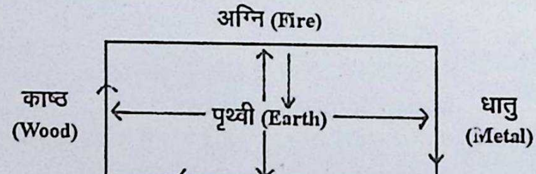

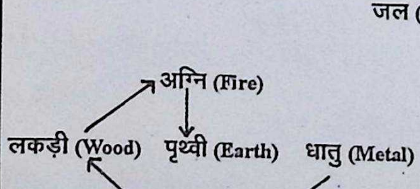

धनात्मक उत्पत्ति चक्र
(Positive creative cycle)

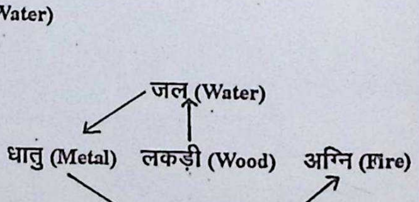

शोषक (विनाशक) चक्र
(Destructive cycle)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

wall) के मध्य में **अग्नि तत्व** है। मकान के मध्य केंद्र में **पृथ्वी तत्व** हैं दाहिनी ओर की दीवार के मध्य में (जब तुम बाहर से अपने घर की ओर देख रहे हो) **धातु तत्व** (Metal) है। इन पाँच तत्वों का धनात्मक विकास अथवा उत्पत्ति चक्र इस प्रकार बनता है—लकड़ी से आग उत्पन्न होती है, धातु से जल की उत्पत्ति है और जल से लकड़ी की उत्पत्ति होती है। इन तत्वों का विनाश चक्र (destructive cycle) इस प्रकार बनता है—धातु लकड़ी का शोषण (absorbs) करती है, लकड़ी पृथ्वी का शोषण करती है, पृथ्वी जल का शोषण करती है, जल अग्नि का शोषण करता है, अग्नि धातु का शोषण करती है। अतः जब भी आप देखें कि कोई विनाशक तत्व दूसरे तत्व के क्षेत्र में आ रहा है, तो बीच के गायब तत्व (Missing element) की पूर्ति कर दो अन्यथा समस्यायें उत्पन्न हो जायेंगी।

सामान्यत समस्याएँ इस प्रकार की होती हैं जैसे पीछे की दीवार के साथ 'जल' है चाहे वह सिंक हो टब हो, टायलेट हो या तालाब हो (यदि पीछे की दीवार से लगा तालाब हो, तो यह समस्याएँ देगा। घर की पिछली दीवार के साथ प्रतिष्ठा और यश (Fame & Reputation) का संबंध होता है। पीछे की दीवार अग्नि तत्व वाली होती है अैर जल अग्नि का बुझा देता है अतः घर के पीछे की दीवार से लगा जल आपकी यश की ज्वाला को बुझा सकता है और आपकी प्रतिष्ठा पर पानी फेर सकता है। यह आँखों को भी नुकसान पहुँचाता है

इसका निदान यह नहीं है कि मिस्त्री बुलाकर घर में तोड़ फोड़ करों या मजदूर बुलाकर तालाब में सीमेंट भरो। इसका उपचार इस पद्धति में बड़ा सहज और सरल है, आप पीछे दिये गये चक्रों पर ध्यान दें और गायब तत्व की पूर्ति कर दें। जल और अग्नि के बीच में लकड़ी (काष्ठ) है अतः कोई हरी या लकड़ी की वस्तु जलमग्न वस्तु सिंक या जल भरे पात्र के मध्य रख दें। इसी प्रक्रिया के कुछ लोग टायलेट के पीछे चावल भरी कटोरी रख देते हैं जो कि उसके ऊपर पोटपूरी (Potpourri) रख कर बदली जा सकती है।

एक और उदाहरण लें—एक घर के मध्य में आँगन है, जिसमें पेड़ लगे हैं। आप जानते हैं लकड़ी पृथ्वी का शोषण करती है। पृथ्वी और लकड़ी के बीच (चक्रों के अनुसार) अग्नि तत्व है जो कि गायब है। अब बीच में Barbecue gril ग्रिल (अंगीठी) लगाना तो अनुपयुक्त ही नहीं भयावह भी रहेगा, लाल रंग यह काम दे सकता है। यदि बाईं ओर की दीवार पर धातु लगी है जहाँ लकड़ी भी लगी है। आप जानते हैं धातु लकड़ी का शोषण करती है, समस्याएँ पैरों से संबंधित हो सकती हैं। यह स्वास्थ्य और परिवार की दीवार है अतः पारिवारिक उलझनें तथा स्वास्थ्य विकार हो सकते हैं। इस मामले में गायब तत्व जल है चूँकि इसका स्थान चक्र के अनुसार धातु और लकड़ी के बीच में है। इसका निदान है कि बीच में जल तत्व लगा दें चाहे वह मछली घर (Fish tank) हो, कोई फोटो पेटिंग या ड्राइंग या चित्र हो, जिसमें जल दिखता हो। यदि यह मीन हो तो काला रंग, काला कार्बन आदि बीच में लगा दें। यदि सामने की दीवार के सहारे पौधे लगे हों या सामने की दीवार पत्थर की हो, तो यह आपके Career जीवन क्रम/उद्यम को हानि दे सकती है या कानों पर प्रभाव दे सकती है, आप जानते हैं पृथ्वी जल का शोषण करती है। पृथ्वी और जल के मध्य धातु है, अतः इस समस्या के निदान के लिए गायब तत्व 'धातु' को सामने दीवार पर लगायें या सफेद रंग लगवा दें। यदि दाहिनी ओर की दीवार से लगी कोई Fireplace अँगीठी या रसोई घर है, तो आपको मुख संबंधी रोग हो सकते है। अग्नि धातु का शोषण करती है, जो आपके बच्चों आपकी श्वास और प्रेरणा (Inspiration) को प्रभावित कर सकती है गायब तत्व पृथ्वी है, जो कि आग और धातु के मध्य होनी चाहिए। कोई चट्टान पौधे या पीला रंग लगाने से समाधान हो जायगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रत्येक तत्व की शक्ति अलग-अलग ग्रहों से संबंधित रहती है—लकड़ी बृहस्पति (Jupiter) से, अग्नि मंगल (Mars) से, पृथ्वी शनि (Saturn) से, धातु शुक्र (Venus) से, जल बुध (Mercury) से पर्वत और इमारतें (Buildings) अपने आकार के आधार पर तत्वों ग्रहों (Planets) की चारित्रिक विशेषतायें प्रकट करते हैं। जब कभी आप प्राकृतिक अथवा मानवकृत आकृतियों को देखें जो एक दूसरे से अलग हों और दो अलग-अलग तत्वों को विनाशक रूप में प्रकट करती हो, तो एक गायब तत्व को उनके बीच मे लगाने का प्रयत्न करें।

अग्नि और मंगल ♂

सीधी चढ़ाई वाले बड़े पर्वत जिनके शिखर तीखे हों। लंबी नोकदार इमारतें।

ऐसे स्थलों पर ऊर्जा से संबंधित कार्य व्यापार अच्छे चलते हैं।

पृथ्वी और शनि ♄

पठार वाले पहाड़, पुरानी भारी इमारतें, विशेषकर पत्थर सगमरमर या दूसरे पृथ्वी के द्रव्य से बनी, बडी कोलोनियों के घर तथा चौड़ी छत वाले निर्माण। ऐसे स्थलों पर अधिकतर व्यापार अच्छे चलते हैं।

धातु और शुक्र ♀

गोलाकार शिखर वाले पर्वत (चर्च जिनमें गोलाकार गुंबद तथा क्रोस लगा हो शुक्र ग्रही निर्माण होते हैं धनी और सजावटी इमारतें। इनमे बड़े व्यापार बैंक आदि अच्छे चलते हैं।

जल और बुध ☿

ऐसे पर्वत जो कप जैसे शिखर वाले हों (Cupola shalped top) छत बाहर को निकली हुई (Projecting roofs) या (Scall oped) वाली इमारतें इनमें स्कूल, पुस्तकालय संचार तथा परिवहन (Transportation & Communication) के व्यापार अच्छे चलते हैं।

लकड़ी (काष्ठ) और बृहस्पति ♃

बड़े पर्वत जिनकी चोटी सीधी हो और ऊपर टूटकर चौरस और तंग हो गई हो, गुरु निर्माण ऊँचे सीधे होते है, जिनकी ऊपरी भाग चौरस हो। स्कूल, पुस्तक भंडार तथा दर्शनशास्त्र संबंधी व्यापार अच्छे चलते हैं।

यहाँ भी विनाशक चक्र का ध्यान रखना है। धातु लकड़ी का शोषण करती है। यदि दो इमारतें जिनमें एक धातु तत्व अर्थात् शुक्र ग्रही आकार की हो और दूसरी काष्ठ तत्व अर्थात् गुरू ग्रही हो तो गायब तत्व जल का प्रबंध बीच में कर दें जलप्रपात (Water Fountain) या काला रंग दोनों इमारतों के मध्य रखवा दें। यदि एक इमारत काष्ठ तत्व अर्थात् बृहस्पति या गुरु ग्रही हो और दूसरी पृथ्वी तत्व या शनि ग्रही की बनावट में हो तो गायब तत्व अग्नि का प्रबंध कर दें अन्यथा लाल रंग तो करा ही सकते हैं। यदि एक पास वाली इमारत पृथ्वी तत्व या शनि ग्रही हो और दूसरी जल तत्व अर्थात् बुध ग्रही हो, तो गायब तत्व धातु का प्रबंध करें। काँसे (Bronze) की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मूर्ति बीच में रखने या सफेद रंग कराने से समाधान हो जायगा। यदि इमारत जल तत्व बुध ग्रही हो और दूसरी अग्नि तत्व मंगल ग्रही हो, तो गायब तत्व काष्ठ है तो कोई हरी और लकड़ी की चीज बीच में कर दें या पेड़ लगवा दें। इससे प्रकृति की ऊर्जा भी मिलती है। यदि एक अग्नि तत्व मंगल ग्रही इमारत के पास धातु तत्व या शुक्र ग्रही इमारत हो, तो गायब तत्व पृथ्वी की पूर्ति के लिए बड़ी चट्टान, बीच में रखवा दें, या पत्थर की दीवार के पीछे फूलों का बगीचा बना दें अथवा पीला रंग करा दे।

सामान्यत, कोई भी सीधी रेखायें (सड़के या नालियाँ) जो सीधी जाती हों, खड़ी ढाल वाली हों या तीखे मोड़ वाली हों, भयानक ऊर्जा उत्पन्न करती हैं। यह और भी अधिक भयावह हो जाती हैं यदि यह किसी इमारत की ओर जा रही हों। यही हाल उस इमारत का होता है, जिसमें बड़ा लंबा हॉल हो या तीन या अधिक के क्रम में दरवाजे लगे हों। ऐसे में पीछे के आँगन में पेड़ लगा दें और सामने जल का फब्बारा लगा दें। अंदर हाल में बहुत से क्रिस्टल्स से निर्मित झाड़ लगा दें हाल की लंबाई के आधार पर एक से अधिक झाड़ भी लगा सकते हैं। अच्छे घुमावदार मोड़ प्राकृतिक स्थितियाँ एवं दृश्य आदि सजावट तो देते ही हैं, शहरों में प्रकृति को वापस ले आते हैं, जिससे शहर के व्यापार में वृद्धि होती है, न्ययार्क जैसा धनी उत्पादक शहर अपने पार्कों और बगीचों के लिए प्रसिद्ध है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्चस्तरीय, प्रामाणिक

गहन अध्ययन हेतु विशिष्ट पुस्तकें

- क्रियात्मक कुण्डलिनी तन्त्र-सहज अष्टांग योग सहित — महर्षि 'यतीन्द्र'
- कुंडलिनी तन्त्र रहस्य-साधना प्रक्रिया एवं प्राग्वेद महत्त्व — महर्षि 'यतीन्द्र'
- धर्म वज्र के अद्भुत प्रश्नोत्तर-रहस्यात्मक प्रश्नों के वैज्ञानकि उत्तर — महर्षि 'यतीन्द्र'
- **Kundalini Yoga (A Scientific Approach)** — *Maharshi 'Yatindra'*
- बौद्ध तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- तान्त्रिक मुद्रा विज्ञान — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- हस्तरेखाएँ—आपका जीवन दर्शन — पं० विजय आनन्द 'लोहट'
- हिन्दू तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- जैन तन्त्र शास्त्र — पं० यतीन्द्र कुमार जैन एवम् आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- शावर तन्त्र शास्त्र — ज़नाव असगर अली
- श्री यन्त्रम् साधना-सिद्धि — आचार्य वागीश शास्त्री
- परम सिद्ध 121 चमत्कारी यन्त्र — तान्त्रिक औझा बाबा
- कौतुक रत्न भाण्डागार-वृहद प्राचीन इन्द्रजाल — तान्त्रिक ओझा बाबा
- सम्पूर्ण दस महा विद्या तन्त्र महा शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- काली तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- तारा तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- त्रिपुर सुन्दरी (षोड्सी) तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- भुवनेश्वरी एवं छिन्नमस्ता तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- भैरवी एवम् धूमावती तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- बगलामुखी एवम् मातङ्ग तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- कमलात्मिका (लक्ष्मी) तन्त्र शास्त्र — आचार्य पं० राजेश दीक्षित
- शतक त्रयम्-भृर्तहरि रचित श्रृंगार, नीति, वैराग्य शतक मूल, गद्य-पद्य रूपान्तर — गंगा सहाय 'प्रेमी'
- क्रियात्मक वास्तु शास्त्र-बिना तोड़-फोड़ वास्तु निदान — जितेन्द्र गहराना, अर्चना कुलश्रेष्ठ
- इन्टरनेशनल एक्यूप्रेशर — डॉ० वाई० डी० गहराना
- रेकी (Reiki) स्पर्श चिकित्सा — डॉ० या-टिन्ड्रा, डॉ० वाई० डी० गहराना
- स्वर विज्ञान-स्वयम् सिद्ध विद्या — डॉ० वाई० डी० गहराना

पुस्तकें प्राप्ति स्थल

दीप पब्लिकेशन

हॉस्पीटल रोड, आगरा - 282 003

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्चस्तरीय प्रामाणिक साहित्य

प्रत्येक पुस्तक पर डाक खर्च अलग।

दीप पब्लिकेशन हॉस्पीटल रोड, आगरा-3

Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal